काव्य विवेचन

: लेखक :
विपिन बिहारी त्रिवेदी
एम० ए०, डी० फिल०
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय
तथा
उषा गुप्ता
एम० ए०, पी-एच० डी०
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

● प्रकाशक

प्रकाशन केन्द्र,
अमीनाबाद, लखनऊ

● सस्करण

प्रथम संस्करण जनवरी १९६१

● *मूल्य : ४ रुपया*

● आवरण सज्जा

श्री हिम्मतराय, हिमसन्स, लखनऊ

● मुद्रक

स्वदेश प्रेस,
गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ

श्रद्धेय गुरुदेव

आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

को

सादर

विषय सूची

द्वितीय अध्याय

(हिंदी साहित्य में विविध रस ८७-१८३)

तृतीय अध्याय

(अलंकार १८४-२१६)

चतुर्थ अध्याय

(छंद या वृत्त २२०-२३६)

दो शब्द

विविध कलायें पहले प्रादुर्भूत हुई बाद में उनका विवेचन और ज्ञान कराने वाले शास्त्र बने। यह अवश्य है कि शास्त्र भावक-विवेचक का निर्माण करके कला विशेष का पारखी बना सकते है और आंशिक रूप में कलाकार का मार्ग-दर्शन कर सकते है परन्तु बहुधा उन्मुक्त कला के सृजन में उनकी परिपाटी बाधक भी हो सकती है। असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियो को भले ही शास्त्र ज्ञान की, अपनी कला विशेष की निष्पन्नता में उतनी अपेक्षा न हो परन्तु साधारण व्यक्ति को विविध कलाओ के परिज्ञान हेतु उनका शास्त्रोक्त ज्ञान होना अनिवार्य है।

प्रस्तुत ग्रंथ काव्यशास्त्र का साधारण ज्ञान कराने के प्रयत्न में उस अभाव की पूर्ति है जो बी० ए० (हिंदी) कक्षा के विद्यार्थियो को खटकता है। १ दिसम्बर १९४८ ई० को लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक पद की नियुक्ति के साथ बी० ए० की श्रेणियों को काव्यशास्त्र पढ़ाने का भार विभागाध्यक्ष डा० दीनदयालु जी गुप्त ने दिया था। उस समय से अब तक वह उत्तरदायित्व पूरा किया जा रहा है। संस्कृत और हिंदी के आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक लब्धप्रतिष्ठ ग्रंथ अपने भाष्य और कारिकाओ सहित सामने थे परन्तु विद्यार्थी को उन्हें समझने योग्य बौद्धिक स्तर प्रदान करने वाले एवं निर्धारित पाठ्यक्रम की पूर्ति करने वाले ग्रंथ सुलभ न थे।

यह पढ़ने-पढ़ाने का क्रम सम्भवत: अपनी पूर्व गति से ही चलता रहता यदि मेरी प्रिय शिष्या और अब सहयोगिनी डा० उषा गुप्ता ने अपने स्वाभाविक दुर्निवार आग्रह से इस अध्ययन को प्रकाशित करने योग्य स्थिति में लाने के लिए विवश न कर दिया होता। मेरी स्वीकृति मिलने के उपरांत उनका आग्रह शब्दों मात्र तक ही सीमित न रहा वरन् वह ग्रंथ लेखन कार्य में पूर्ण सहायता लेकर भी आया।

मालवीय पुस्तक केन्द्र के संचालक बंधु हम लोगो के पीछे पड़ गए और उन्होने इस ग्रंथ को समाप्त करवा के ही साँस ली। स्वदेश प्रेस के प्रबंधक

श्री बजरगशरण तिवारी जी के निर्देश में उनके प्रेस कर्मचारियो ने दत्तचित्त होकर शीघ्र मुद्रण कार्य सम्पन्न किया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष पूज्यपाद् गुरुदेव स्वर्गीय आचार्य ललिता प्रसाद जी सुकुल के अनुग्रह एव स्नेह अविस्मरणीय है। कोई शिष्य अपने गुरु ऋण से कभी मुक्त नही हो सकता। जिनकी सतत् प्रेरणा हिंदी जगत् में कार्य करने के लिए खीच लाई, उनकी पावन स्मृति को शतश प्रणाम करते हुए प्रस्तुत ग्रथ उन्हे सादर सर्मापित है।

सहायक प्रोफेसर,
हिंदी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय।

विपिन बिहारी त्रिवेदी

काव्य विवेचन

अध्याय | १

काव्य, उसका आदर्श एवं उसका प्रयोजन

वह शब्दार्थ जो अवगुण रहित तथा गुण एव अलकार सहित (अथवा कहीं अलकार-रहित भी) हो काव्य कहलाता है ।

काव्यादर्श को लेकर संस्कृत के प्राचीन आचार्यो ने पर्याप्त विचार किया है । काव्य-प्रणयन के प्रेरणात्मक रहस्य का मनोवैज्ञानिक अवगाहन करके उन्होने अनूठे सत्यो का उद्घाटन किया है तथा आनद और कीर्ति को काव्य-रचना का प्रयोजन बताने मे वे प्राय एक मत है । ससार मे अवतरित हुए व्यक्ति के लिये सर्वोत्तम धर्म-मगल[1] है जिसे जैनधर्म मे अहिंसादि से भी अधिक उत्कृष्ट माना गया है। काव्य-प्रयोजन के सबध मे विविध निष्कर्ष निकालते हुए आचार्य भामह[2] का कथन था कि उत्तम काव्य रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूप चारो पुरुषार्थो को उत्पन्न करती है जिसका प्रतिपादन आचार्य कुन्तक[3] ने भी किया है ।

काव्य के भेद

ध्वनि, गुणीभूतव्यग्य और अलकार–काव्य के ये तीन भेद है। जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ मे अधिक चमत्कार होता है वह ध्वनि कहलाता है । जहाँ पर व्यग्यार्थ मे वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कार नही होता उसे

१. धम्मो मंगल मुक्किट्ठी अहिंसा संयमो तवो ।

२ काव्यालकार सूत्र, श्लोक १-२;

३ वक्रोक्तिजीवित, श्लोक ३;

गुणीभूत व्यग्य कहते है, और जहाँ व्यग्यार्थ के बिना शब्द-रचना या वाच्यार्थ मे ही चमत्कार होता है वह अलकार कहलाता है ।

ध्वनि के दो मुख्य भेद है–(१) लक्षणामूला और (२) अभिधामूला। लक्षणामूलाध्वनि को अविवक्षित ध्वनि (वाच्यार्थ की विवक्षा की अनुपस्थिति) कहते है। अभिधामूला ध्वनि को 'विवक्षितअन्यपरवाच्य, ध्वनि (वाच्यार्थ की विवक्षा की वांछना) कहते है। इसके दो भेद है–(१) असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि (जहा वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ का पौर्वापर्य क्रम भली भाँति न प्रतीत होता हो), (२)–सलक्ष्यक्रमध्वनिव्यग ध्वनि (जहाँ वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ का पौर्वापर्य क्रम सलक्ष्य अर्थात् भली प्रकार प्रतीत होता हो) । असलक्ष्य क्रम व्यंग्य के आठ प्रकार है–रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशाति, भावो-दय, भावसधि और भाव शबलता ।

रस

'रसात्मक वाक्य काव्य' अर्थात् जिस वाक्य मे रस है वही काव्य है। वाक्विदग्धता या अभिव्यजना कौशल का प्राधान्य होने पर भी रस ही काव्य की आत्मा है। रस के क्षेत्र मे अपना और पराया विस्मृत हो जाता है। उस अपरिमित भावोन्मेष से जो सर्वसाधारण एव समस्त सबधातीत होता है सभी सहृदय जन रस प्राप्त करते हैं। जब रसास्वादन होने लगता है तब विषयान्तर की अनुभूति भी नही होती। यह रस अलौकिक चमत्कारी होता है–'रसे सार चमत्कार'। अस्तु चमत्कार को रस का प्राण कहना उचित होगा।

किसी सफल काव्य रचना हेतु केवल शब्द समूह ही पर्याप्त नही होता। इसके लिए इसमे हृदयस्पर्शी चमत्कार की उपस्थिति एक अनिवार्य तत्व है। यह चमत्कार ही रस है। काव्य का शरीर शब्द और अर्थ द्वारा निर्मित है। परन्तु रस को उसका प्राण जानना चाहिए।

इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की गवेषणा मे आचार्यो को कितना समय लगा होगा इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। रसशास्त्र की गौरवमय देन विशुद्ध भारतीय है। योरोपीय काव्यशास्त्रो मे रस सम्बन्धी विवेचन अनुपस्थित है यद्यपि वह अन्य अनेक मनोवैज्ञानिक गवेषणाओ के रूप मे अन्य विषयो मे अनुशीलन-परिशीलन के प्रयोजन हेतु अपने ढंग विशेष मे प्रकट हुआ है परन्तु साहित्य मे उसका उपयोग नही किया जाता।

आचार्य भरत के आधार पर हम महामना द्रुहिण को रसशास्त्र का अनु-सन्धानकर्ता मान सकते हैं। अपने नाट्यशास्त्र मे भरत ने शृगार, रौद्र, वीर, वीभत्स को आदि रस माना है तथा हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक को

क्रमशः पूर्व रसो से उत्पन्न बताया है[1] । इन रसो के वर्ण और देवता आचार्य ने इस प्रकार बताये है--

रस	वर्ण[2]	देवता[3]
शृ गार	श्याम	विष्णु
हास्य	श्वेत	प्रमथ
करुण	कपोत	यम
रौद्र	रक्त	रुद्र
वीर	गौर	महेन्द्र
भयानक	कृष्ण	काल
वीभत्स	नील	महाकाल
अद्‌भुत	पीत	ब्रह्मा

नाट्यशास्त्र मे नवे शान्त रस का भी उल्लेख है। कविराज विश्वनाथ ने वात्सल्य रस को भी पृथक् स्थान दिया है। हिन्दी के आधुनिक विद्वानो ने भक्ति रस को मिलाकर ग्यारह रस मनोनीत किये है।

आचार्य भरत का कथन है कि विभाव, अनुभाव और सचारी भाव के सयोग मे रस की निष्पत्ति होती है[4] । ये प्रत्येक रस मे भिन्न-भिन्न होते है।

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र मे आठ रसो का शास्त्रोक्त उल्लेख किया है। उद्‌भट ने सर्वप्रथम नाटक मे शान्त रस की अवतारणा की है। रुद्रट ने

---

१. शृगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रस. ।
वीराच्चैनाद्‌भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानक ॥ ४४
शृगारानुकृतिर्यातु स हास्यस्तु प्रकीर्तित ।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म स ज्ञेय करुणो रसः॥ ४५
वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्‌भुत· परकीर्तितः ।
वीभत्स दर्शन यत्र ज्ञेय स तु भयानक. ॥ ४६ –(नाट्यशास्त्र)

२. श्यामो भवति शृ गार सितो हास्य प्रकीर्तितः ।
कपोत. करुणश्चैव रक्तो रौद्र प्रकीर्तित : ॥ ४७ ॥
गौरो वीरस्तु विज्ञेय कृष्णश्चैव भयानक. ।
नील वर्णास्तु वीभत्सः पीतश्चैवाद्‌भुतः स्मृत. ॥ ४८ ॥

३. शृ गारो विष्णुदेवत्ये हास्य प्रथम दैवतः ।
करुणो यम दैवत ॥ ४९ ॥
वीभत्सस्य महाकाल कालदेवो भयानक ।
वीरो महेन्द्र देवः स्याद्‌भुतो ब्रह्मदैवत· ॥ ५० ॥

४ विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति. ।

इन सब रसो के अतिरिक्त 'प्रेमान' रस भी माना है। भोज ने उदात्त और उदत्त इन दो रसो को भी स्थान दिया है। विश्वनाथ ने वत्सल नामक एक नये रस का उल्लेख किया है। रूपगोस्वामी तथा मधुसूदन सरस्वती ने अपने समय तक शान्त रस के अन्तर्गत विवेचित किये जाने वाले भक्ति रस की स्वतत्र स्थापना की है। अभिनवगुप्त ने आद्रता-स्थायिक स्नेह और गन्धस्थायिक लौक्य रस की कल्पना की है। रसतरगिणी मे मौया रस भी माना गया है। सगीतसुधाकर मे वाह्य, सभोग और विप्रलभ नामक तीन अन्य रसो का उल्लेख है। उद्भट की दृष्टि मे सभी भाव रस रूप धारण कर सकते है। मधुसूदन-सरस्वती, नमिसाधु तथा मानसशास्त्र के अनुसार मानव-जीवन की समस्त चित्र-वृत्तियाँ परिपुष्ट होने पर रसावस्था को प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार रस-सख्या के निर्धारण मे विभिन्न मत है परन्तु अधिकाश विद्वानो और आचार्यो मे विशेषत: अभिनवगुप्त एव मम्मट ने नव ही रस माने है।

विभाव

रति आदि स्थायी भावो की उत्पत्ति के जो कारण निमित्त अथवा हेतु होते है उन्हे विभाव कहते है। अति सूक्ष्मता से हृदय मे वास करनेवाले भावो को ये विभावन करते है–अस्वाद के योग्य बनाते है।

विभाव दो प्रकार के होते है–(१) आलम्बन (२) उद्दीपन। प्रत्येक रस के आलम्बन और उद्दीपन विभाव भिन्न-भिन्न होते है।

१ आलम्बन विभाव

जिन पर आलम्बित होकर स्थायी भाव उत्पन्न होते है उन्हे आलम्बन विभाव कहते है। आलम्बन के अभाव मे काव्य की सृष्टि सम्भव नही है।

आलम्बन विभाव दो प्रकार के होते है–विषयालम्बन और आश्रयालम्बन। जिसके उद्देश्य से रति आदि स्थायी भाव जागृत होते हैं वह रति आदि स्थायी भावो का विषय या आलम्बन है तथा उन रति आदि भावो का जो आधार है वह आश्रय है। यथा–

देखते ही रौद्र मूर्ति वीर पृथ्वीराज की
चीख उठा राजा ज्यो सहसा पथिक के
सामने भयानक मृगेन्द्र कूदे काल सा। –वियोगी हरि

इसमे पृथ्वीराज की रौद्र मूर्ति जयचन्द के भय का विषय है क्योकि उसी को देखकर राजा का भय जागृत होता है। स्थायी भाव भय का आधार जयचन्द है अस्तु वही आश्रय है। इस प्रकार उपर्युक्त छन्द मे दोनो आलम्बन वर्तमान है।

आधुनिक काव्य मे दोनो आलम्बनो की योजना कर सकना सम्भव सा नही है। कही-कही आलम्बन को गौण रूप देकर माध्यम के द्वारा भाव व्यक्त किये जाते है फलत अन्योक्ति-प्रणाली का सहारा आवश्यक हो जाता है। कही आलम्बन की प्रतीति कठिन हो जाती है और कही उसका पता ही नही लगता।

१— मेरा आहत प्राण न देखो,
टूटा स्वर सन्धान न लेखो,
लय नें वन-वन दीप जलाये, मिट मिटकर जलजात खिलाये।

२— अश्रु मेरे माँगने जब
नींद में वह पास आया।
स्वप्न सा हँस पास आया।
हो गया दिव की हँसी से
शून्य में सुरचाप अंकित,
रश्मि रोमो में हुआ
निस्पंद तम भी सिहर पुलकित :

—महादेवी

२ उद्दीपन विभाव

रति आदि स्थायी भावो को जो उद्दीप्त करते है उन्हे उद्दीपन विभाव कहते हैं। ये स्थायी भाव के उत्पादक कारण नही होते वरन् उन्हे उद्दीप्त करते हैं। जिस प्रकार उत्पन्न अकुर को जल न मिलने से वह नष्ट हो जाता है उसी प्रकार उत्पन्न स्थायी भाव यदि इनके द्वारा उद्दीप्त न हो तो वह नष्ट हो जाता है।

प्रत्येक रस के उद्दीपन विभाव पृथक् होते हैं। जैसे सखा, सखी, दूती, षट्ऋतु, वन, उपवन, चन्द्र, चाँदनी, पुष्प, चित्र, नदी-तट आदि शृंगार रस के उद्दीपन विभाव हैं।

नायिका की सखी के चार प्रकार है—१ हितकारिणी, २ व्यग्यविदग्धा, ३ अन्तरगिणी और ४ बहिरगिणी। नायिका से हास-विनोद-आलाप करना, उसके साथ खेलना-कूदना, उसे शिक्षा-सलाह आदि देना तथा विभूषित करना आदि उसके कार्य हैं।

१— अलि कैसे उनको पाऊँ।
वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलको के बन्धन में, मैं बांध बाँध पछताऊँ।

—महादेवी

२— मुसकाता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?

—महादेवी

आधुनिक ढग से प्रस्तुत वर्षा ऋतु का उदाहरण—

जागी किसकी वाष्पराशि, जो सूनें में सोती थी ?
किसकी स्मृति के बीज उगे ये, सृष्टि जिन्हें बोती थी?
अरी वृष्टि ऐसी ही उनकी दया दृष्टि रोती थी ?
विश्व-वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी ?

—गुप्त जी

ज्योत्स्ना का उदाहरण—

१— कालिमा घुलने लगी घुलने लगा आलोक,
इसी निभृत अनन्त में बसने लगा अब लोक,
इस निशामुख की मनोहर सुधामय मुस्कान,
देखकर सब भूल जायें दुःख के अनुमान।

—प्रसाद

२— नीचे दूर दूर विस्तृत था
ऊर्मिल सागर व्यथित अधीर।
अंतरिक्ष में व्यस्त उसी सा
रहा चन्द्रिका-निधि गंभीर।

—प्रसाद

सखी द्वारा नायिका को विभूषित करने का उदाहरण—

माँग सँवारि सिगारि सुबारनि बेनी गुही जु छवानि लौं छावै।
त्यौं 'पद्माकर' या विधि और हू साजि सिगार जु स्याम को भावै।
रीझे सखी लखि राधिका को रंग, जा अंग जो गहनो पहिरावै।
होत यो भूषित भूषन गात ज्यों डाँकत ज्योति जवाहिर पावै।।

उद्दीपन के प्रकार—

उद्दीपन विभाव विषयगत और आश्रयगत दोनो प्रकार का होता है। विभिन्न रूप वाले होने के कारण शृ गार रस मे प्रेमी और प्रेमिका दोनो की ओर से उद्दीपन होना अनिवार्य है। यथा—

श्यामा सराहति श्याम की पागहिं श्याम सराहत श्यामा की सारी।
एक ही दर्पन देखि कहे तिय नीके लगौ पिय प्यौ कहै प्यारी।

यहाँ दोनो की चेष्टाये उद्दीपन का कार्य करती है।

उद्दीपन विभाव के दो भेद होते हैं—

विषयगत (पात्रस्थ) और बहिर्गत (वाह्य)। पात्र के गुण, पात्र की

चेष्टायें–हाव-भाव आदि और पात्र के अनकार विषयगत उद्दीपन हैं और चन्द्र, चाँदनी, पवन, उपवन, ऋतु आदि बहिर्गत उद्दीपन विभाव हैं।

काव्यगत पात्र ही आलम्बन विभाव होते हैं और परिस्थिति विशेष को हम उद्दीपन विभाव कह सकते है। आलम्बन विभाव के रति आदि स्थायी भावो को जागृत करके उद्दीपन विभाव उनकी वृद्धि के कारण होते है।

अनुभाव

भाव के अनु (पीछे) अर्थात् विभावो के उपरान्त जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हे अनुभाव कहते है।[१] ये भावो के कार्य है अर्थात् ये उत्पन्न हुए स्थायी भाव का अनुभव कराते है। इनके चार भेद हैं (१) कायिक, (२) मानसिक, (३) आहार्य, (४) सात्विक। जैसे शृगार रस मे नायिका आलम्बन, चन्द्रोदय आदि नायक मे रति उत्पन्न करते है किन्तु उसे प्रकट करने वाले कटाक्ष, भ्रूक्षेप, हस्त-सचालन आदि के द्वारा ही उसका ज्ञान हो सकता है।

१—गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रूलता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदम्ब सा था भरा गद्गद् बोल।

–प्रसाद (कामायनी)

कायिक–भ्रूभग, कटाक्ष आदि अंगो की कृत्रिम चेष्टाओ को कायिक अनुभाव कहते हैं। यथा–

२– बहुरि बदन विधु अचल ढांकी। पियतनु चितै भौंह करि बांकी।
खजन मजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हिं सिय सैननि ।।

–तुलसी (मानस)

मानसिक–अन्त.करण की वृत्ति से उत्पन्न हर्ष, मोद, प्रमोद, व्याकुलता, सकोच आदि मानसिक अनुभाव कहे जाते है। यथा–

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।
पचवटी सो गइ एक बारा। देखि विकल भइ जुगल कुमारा ।।

–तुलसी (मानस)

आहार्य–बनावटी या आरोपित वेष रचना आहार्य अनुभाव कहलाती है। यथा–

---

१. अनुभावो भावबोधक., अनुभावयन्ति इति अनुभाव. ;

सोभा सींव सुभग दोउ बीरा । नील पीत जल जाभ सरीरा ।
मोरपंख सिर सोहत नीके । गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ।।
–तुलसी (मानस)

सात्विक–शरीर के स्वाभाविक अग-विकार सात्विक अनुभाव कहलाते है । यथा–

देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ।
थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हि हूँ परिहरीं निमेषें ।।
–तुलसी (मानस)

सात्विक अनुभाव

सत्व के योग से उत्पन्न भावो को सात्विक कहते है । ये आठ प्रकार के होते है–

१ *स्तम्भ*–हर्ष, भय, रोग, विस्मय, विषाद, लज्जा, रोषादि से शरीर के अगो का संचालन रुक जाना स्तम्भ है । इसमे खडा रह जाना, निष्कम्प, निस्सज्ञ, शून्यता, जडता आदि होना अनुभाव होते है । यथा–

१– **छूट्यो गेह काज लोक लाज मन मोहिनी को ,**
भूल्यो मन मोहन को मुरली बजाइबो ।
देखो दिन द्वै में 'रसखान' बात फैलि जैहै ,
सजनी कहाँ लौं चन्द हाथन दुराइबो ।
कालि हू कलिन्दी तीर चितयो अचानक ही ,
दोऊन को दोऊ मुरि मृदु मुसिकाइबो ।
दोऊ परैं पइयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ, उन्हैं–
भूलि गईं गइयाँ इन्हें गागरि उठाइबो ।।
–रसखान

२– **अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।।**
–तुलसी (मानस)

२ स्वेद–क्रोध, केलि, भय, हर्ष, श्रम, दुख, लज्जा, रोग, उपघात तथा व्यायाम आदि से यह उत्पन्न होता है । पसीना आना आदि इसके अनुभाव है । यथा–

ऊँची अटा पै अकेली हुती अलबेली खरी करि रूप उँजारो ।
एड़िन छ्वै छहरात हुतो 'हरिऔध' छुट्यो कच घूघुर वारो ।
औचक आइ दोऊ अँखियाँ इतनेहि मै मूँदि लियो पिय प्यारो ।
भेद भरो मन ऊबि छरो गयो सेद में डूबि गयो तन सारो ।
–हरिऔध

३. *रोमांच*–हर्ष, श्रम, शीत, स्पर्श, क्रोध आदि से यह उत्पन्न होता है। शरीर का कटकित, पुलकित तथा रोमाचित होना इसके अनुभाव है। यथा–

बूझि भली विधि कीजै कछू अलि काज उतावली के नहि नीके ।
चौगुनी चंचल होति चलै 'हरिऔध' कथानक केलि-थली के ।
धीर धरे हूँ बनैगी न वीर जो कामिनी क्यो हूँ परी कर पी के ।
नेक ही नैन लरे सिगरे-तन-रोम खरे ह्वै गये रमनी के ।।

४ *स्वरभग*–भय, हर्ष, क्रोध, मद, वृद्धावस्था, रोगादि से यह उत्पन्न होता है। स्वर का गद्गद होना, स्वाभाविक ध्वनि का परिवर्तित हो जाना आदि इसके अनुभाव होते है। यथा–

जाती हुती निज गोकुल को हरि आयौ तहाँ लखि कै मग सूना ।
ता सो कह्यो पदमाकर यो अरे साँवरे बावरे तै हमै छू ना ।।
आज धौं कैसी भई सजनी उत वा विध बोल कढ्योई कहूँ ना ।
आनि लगायो हियो सो हियो भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना ।।

–पद्माकर

५ *वैवर्ण्य*–मोह, शीत, क्रोध, भय, श्रम, रोग, ताप आदि से यह उत्पन्न होता है। मुख का रग बदल जाना, मुख पर चिन्ता की रेखा का व्याप्त होना आदि इसके अनुभाव होते है। यथा–

कहि न सकत कछु लाज तें, अकथ आपनी बात ।
ज्यो-ज्यो निशि नियरात है, त्यों-त्यों तिय पियरात ।।

–पदमाकर

६ *बेपथु (कंप)*–क्रोध, भय, शीत, आनन्द, श्रम, रोग, ताप आदि से यह उत्पन्न होता है। कम्प आदि इसके अनुभाव होते है। यथा–

साजि सिंगारनि सेज पै पारि भई मिस ही मिस ओट जिठानी ।
त्यों 'पदमाकर' आइ गो कन्त इकन्त जबै निज तन्त में जानी ।।
सो लखि सुन्दरि सुन्दर सेज तें यो सरकी थिरकी थहरानी ।
बात के लागे नही ठहरात है ज्यों जलजात के पात पै पानी ।।

–पद्माकर

७ *अश्रु*–आनन्द, भय, शोक, क्रोध, अमर्ष, धुआँ, जँभाई, शीत, निर्निमेष देखने आदि से यह उत्पन्न होता है। आँसू गिरना, पोछना आदि इसके अनुभाव होते है। यथा–

भेद बिन जाने एती वेदन विसाहिबे कों,
आज हौं गई ही बाट बसीवट वारे की ।
कहै 'पदमाकर' लटू ह्वै लोट पोट भई,
चित्त मैं चुभी जो चोट चाय चटवारे की ।

बावरी लौं बूझति विलोकति कहा तू,
वीर जानै कहा कोऊ पीर प्रेम हटवारे की ।
उमड़ि उमड़ि बहै बरखै सु आँखिन ह्वै,
घट में बसी जो घटा पीत पटवारे की ।।

–पद्‌माकर

८ *प्रलय*–श्रम, मोह, मद, निद्रा, मूर्छा, अभिघात आदि से यह उत्पन्न होता है। निश्चेष्ट होना, श्वास का रुक जाना, पृथ्वी पर गिर जाना, अपनत्व भूल जाना आदि इसके अनुभाव होते है। यथा–

१– ये नँदगाँव ते आये इहाँ उत आई सुता वह कौन हू ग्वाल की ।
त्यों 'पदमाकर' होत जुराजुरी दोउन फाग करी यहि ख्याल की ।।
डीठि चली उनकी इन पै इनकी उन पै चली मूठि उताल की ।
डीठि सी डीठि लगी उनको इनके लगी मूठि सी मूठि गुलाल की ।।

–पद्‌माकर

२– पाय कुंज एकान्त में भरी अंक ब्रजनाथ ।
रोकन को तिय करत पै कह्यो करत नहि हाथ ।।

उपर्युक्त आठो भेदो के उदाहरण निम्न छन्द मे वर्तमान है–

ह्वै रही अडोल, घहरात गात बोलै नाहिं बदल गई है छटा बदन सँवारे की ।
भरि भरि आवै नीर लोचन दुहूँन बीच सराबोर स्वेदन में सारी रंग तारे की ।
पुलकि उठे है रोम, कछुक अचेत फेरि कवि 'लछिराम' कौन जुगुति विचारे की ।
बानक सो डगर अचानक मिल्यौ है लगी नजर तिरीछी कहूँ पीत पटवारे की ।।

नायिका के २८ अनुभाव

यौवनागम पर स्त्रियो मे २८ प्रकार के अनुभाव प्रसूत होते है जो आचार्यों द्वारा अलकार माने गये है। इनके भी तीन भेद है–

(१) अगज, (२) अयत्नज और (३) स्वभावज ।

(१) अग से उत्पन्न होने के कारण–(१) भाव (प्रथम लक्षित राग), (२) हाव (अल्पसलक्षित विकारात्मक भाव) और (३) हेला (अत्यन्त स्फुट विकार वाला भाव) नामक तीन अलकार अग से उत्पन्न होने के कारण अगज है।

भाव का उदाहरण–

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।।
सो सबु कारन जान विधाता । फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ।।

–तुलसी (मानस)

हाव का उदाहरण–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहनि हँसै देन कहै नटि जाय ।।
–बिहारी

हेला का उदाहरण–

फाग के भीर अभीरन में गहि गोविंदै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पदमाकर' ऊपर नाइ अबीर की झोरी।
छीन पितम्बर कमर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर आइयौ खेलन होरी ।।
–पद्माकर

(२) कृत्रिम न होने के कारण–१ शोभा (शारीरिक सौन्दर्य), २ कान्ति (विलास से प्रवर्द्धित सौन्दर्य), ३ दीप्ति (अति विस्तृत कान्ति), ४ माधुर्य, ५ प्रगलभता, ६ औदार्य और ७ धैर्य नामक सात अलकार अयत्नज है।

पुरुष सौन्दर्य का चित्र देखिये–

अवयव की दृढ़ मांस पेशियाँ,
उर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिनमें संचार ।
–प्रसाद (कामायनी)

स्त्री सौन्दर्य–

बाँधा था विधु को किसने,
इन काली जंजीरो से।
मणि वाले फणियो का मुख,
क्यों भरा हुआ हीरों से ।।
–प्रसाद (आँसू)

दीप्ति का उदाहरण–

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रग ।।
–प्रसाद (कामायनी)

(३) कृति साध्य होने के कारण–१ लीला, २ विलास, ३ विच्छिन्ति (शृगाराधायक अल्प वेश रचना), ४ विव्वोक (गर्व की अधिकता के कारण इच्छित वस्तु का अनादर), ५ किलकिंचित् (प्रिय वस्तु की प्राप्ति आदि के हर्ष से हास, अभिलाष आदि कई भावो का सम्मिश्रण), ६ मोट्टायित (प्रिय-सबधी बातो मे अनुराग द्योतक चेष्टा), ७ कुट्टमित (अग स्पर्श से आतरिक

हर्ष होने पर भी निषेधात्मक कर, सिर आदि का सचालन), ८ विभ्रम (जल्दी मे वस्त्राभूषण का विपरीत धारण करना), ९ ललित (अगो की सुकुमारता का प्रदर्शन), १० मद, ११ विहृत (लज्जावश समय पर भी कुछ न कहना), ११ तपन, १३ मौग्ध्य, १४ विक्षेप (अकारण इधर-उधर देखने आदि से बहलाना), १५ कुतूहल, १६ लसित, १७ और १८ केलि नामक अठारह स्वभावज अलकार है।

विच्छित्ति का उदाहरण–

मानो मयंकहि के पर्यक निसंक लसै सुत बक मही को।
त्यों पदमाकर जागि रह्यो जनु भाग हिये अनुराग जु पी को।
भूषण भार सिंगारन सो सजि सौतिन को जु करै मुख फीको।
ज्योति को जाल विसाल महा हिय भाल पै लाल गुलाल को टीको।

कुट्टमित का उदाहरण–

अंचल के ऐंचे चल करती दृगंचल कों,
चचला ते चंचल चलै न भजि द्वारे को।
कहै 'पदमाकर' परै सी चौंकि चुम्बन मे,
छलनि छपावै कुच कुंभनि किनारे को।
छाती के छुये पै परै राती सी रिसाइ,
गलबाही के किये पै नाहिं-नाहियै उचारे को।
ही करति सीतल तमासे तुंग ती करति,
सी करति रति में बसी करति प्यारे को।

किलकिंचित् का उदाहरण–

ऐसी है गोकुल के कुल की जिनि दच्छिन नैन किये अनुकूले।
खंजन से मनरंजन 'केसव' हास विलास लता लगि झूले।
बोलें झुकौ उझकौ अनबोलें फिरौ बिझुके से हिए महि फूले।
रूप भये सबके विष ऐसे ह्वै कान्ह कहौ रस कौन के भूले।।–केशव

सचारी या व्यभिचारी भाव

अस्थिर मनोविकारो अथवा चिन्ता आदि चित्तवृत्तियो को सचारी या व्यभिचारी भाव कहते है। ये स्थायी भाव के सहकारी होकर सभी रसो मे सचरण करते है इसीलिए इन्हे सचारी भाव कहा जाता है। ये स्थायी भाव की तरह रस की सिद्धि तक स्थिर नहीं रहते वरन् अवस्था विशेष मे पैदा होकर और स्थायी भाव को उचित सहायता देकर लुप्त हो जाते है। जल के बुलबुले या मेघ माला की सौदामिनी के सदृश प्रकट और लुप्त होने वाले इन सचारी भावो की सख्या तेंतीस है।

(१) *निर्वेद*—वैराग्य, दारिद्र्य, व्याधि, अपमान, आक्षेप, आपत्ति, इष्ट-वियोग, तत्वज्ञान आदि के कारण अपने को धिक्कारने को निर्वेद कहते है। जब निर्वेद वैराग्य या तत्वज्ञान से उत्पन्न होता है उस समय यह शान्त रस का स्थायी भाव होता है किन्तु जब अन्य उपर्युक्त कारणो से कुछ क्षणो के लिए हृदय पर प्रतिबिबित होता है तब यह अन्य रसो मे व्यभिचारी रहता है। निर्वेद व्यभिचारी मे दीनता, चिन्ता, अश्रुपात, दीर्घोच्छ्वास, विवर्णतादि अनुभाव होते है। यथा—

१— यौं मन लालची लालच में लगि लोभ तरगन में अवगाह्यो।
त्यौं पदमाकर देह के गेह के नेह के काज न काहि सराह्यो॥
पाप किये पै न पातकी पावन जानि के राम को प्रेम निबाह्यो।
चाह्यो भयो न कछू कबहूँ जमराज हू सो वृथा बैर बिसाह्यो॥

२— कारज सीस को होत सबै पद पंकज की रज को अपनाये।
स्वारथ होत हैं नैन दोऊ छवि साँवरी सूरत की दिखराये॥
पातकी कान पुनीत बनें 'हरिऔध' की प्यारी कथान सुनाये।
पावन होति है जीह अपावन भावन सों हरि के गुन गाये॥

(२) *ग्लानि*—मानसिक ताप अथवा श्रम, भूख, प्यास आदि व्याधि शारीरिक कष्ट के कारण मन की मलिनता, खिन्नता, तथा अगो के कान्तिहीन हो जाने को ग्लानि कहते है। इसके कार्य मे अनुत्साह आदि अनुभाव होते है। यथा—

१— शापित सा मैं जीवन का यह
ले कंकाल भटकता हूँ,
उसी खोखलेपन में जैसे
कुछ खोजता अटकता हूँ।
—प्रसाद (कामायनी)

२— शिथिल गात काँपत हियो, बोलत बनै न बैन।
करी खरी विपरीत कहुँ, कहत रँगीले नैन॥
—बिहारी (सतसई)

३— यह महाभारत वृथा, निष्फल हुआ,
उफ! ज्वलित कितना गरलमय व्यग्य है।
पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से
हो गया सहार पूरे देश का॥
—दिनकर (कुरुक्षेत्र)

(३) *शंका*—अनिष्ट की आशका होने को शका कहते है। इसमे मुख वैवर्ण्य, स्वरभग, कम्प, अधर तथा कठ का सूखना आदि अनुभाव होते है। यथा—

१— मोहि लखि सोवत बिथोरि गो सु बेनी बनी,
तोरिगो हिये को हार छोरि गो सु गैया को।
कहैं 'पदमाकर' त्यों घोरिगो घनेरो दुख,
बोरिगो बिसासी आज लाज ही की नैया को।
अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास यहै,
सोचत खरी मैं परी जोवत जुन्हैया को।
बूझेंगे चबैया तब कैहौं कहा दैया, इन
पारिगो को मैया मेरी सेज पै कन्हैया को।

(४) *असूया*—दूसरे की उन्नति, उत्कर्ष, ऐश्वर्य आदि को देखने या सुनने से उत्पन्न जलन को असूया कहते है। इसमे अनादर, भौहे चढाना, निन्दा करना, दूसरे के दोषो को प्रकट करना आदि अनुभाव होते हैं। यथा—

१— यह जलन नहीं सह सकता मैं
चाहिए मुझे मेरा ममत्व;
इस पचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।
—प्रसाद (कामायनी)

२— कद्रू विनतहिं दीन दुख तुम्हहिं कौसिला देब।
भरत बदिगृह सेइहहि लखनु राम के नेब॥
—तुलसी (मानस)

इसमे मन्थरा ने कैकेयी के चित्त मे असूया उत्पन्न कर दी है।

३— जैसे को तैसो मिलै तबही जुरत सनेह।
ज्यों त्रिभंग तन श्याम को कुटिल कूबरी देह॥ —प्राचीन

(५) *मद*—वह अवस्था जिसमे बेहोशी और आनन्द का सम्मिश्रण हो, वही मद है। यह मद्यपान आदि से उत्पन्न मस्ती, अल्हडपन आदि अनुभावो की उत्पादिका है। यथा—

१— छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झपत भौंर झौर मधु अन्ध॥ —बिहारी

यहाँ फूलो के रस के मद से मतवाले भौरो के समूह का झौरना-झपना आदि सचारी है।

२— तैसो लसै रंग इंगुर सो अंग तैसी दोऊ अँखियाँ रतनारी।
तैसे पके कुंदुरू सम ओठ उरोज दोऊ उमँगै छवि न्यारी।
तैसे ही चंचल 'बेनी प्रबीन' तू अंचल दै वृषभानु दुलारी।
जोबन रूप की माती सदा मधुपान किये ते भई अति प्यारी।
—बेनी प्रबीन

(६) *श्रम*–मार्ग चलने, व्यायाम, जागरण आदि से उत्पन्न खेद का नाम श्रम है। मुख सूख जाना, अँगडाई, जँभाई, दीर्घ श्वास लेना कार्यों मे अरुचि आदि इसके अनुभाव है। यथा–

१– पुर ते निकसीं रघुबीर बधू धरि धीर हिये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
सिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै।।

–तुलसी (कवितावली)

२– कै रतिरग थकी थिर ह्वै परजक में प्यारी परी सुख पाइ कै।
त्यों पदमाकर स्वेद के बुंद रहे मुकताहल से तन छाइ कै।
बिन्दु रचे मेंहदी के लसै कर, ता पर यों रह्यो आनन आइ कै।
इन्दु मनो अरबिन्द पै राजत इन्द्र बधून के वृन्द बिछाइ कै।।

–पद्माकर

(७) *आलस्य*–गर्भ, जागरण, श्रम, व्याधि आदि के कारण कार्य करने से विमुख होना आलस्य है। अँगडाई, एक ही स्थल पर स्थिर रहना आदि इसके अनुभाव है। यथा–

१– केतकी गर्भ सा पीला मुँह,
आँखो में आलस भरा स्नेह,
कुछ कृशता नई लजीली थी,
कंपित लतिका सी लिये देह।

–प्रसाद (कामायनी)

२– गोकुल में गोपिन गोविंद संग खेली फाग,
राति भर प्रात समै ऐसी छबि छलकें।
देहैं भरी आलस कपोल रस रोरी भरे,
नींद भरे नयन कछूक झंपें झलकें।
लाली भरे अधर बहाली भरे मुख वर,
कवि पदमाकर बिलोकै कौन सलकें।
भाग भरे लाल औ सुहाग भरे सब अँग,
पीक भरी पलकें, अबीर भरी अलकें।।

(८) *दैन्य*–दुःख, दारिद्र्य, मनस्ताप, दुर्गति आदि से उत्पन्न अपने अपकर्ष (दुर्दशा) के वर्णन मे दैन्य भाव होता है। मलिनता आदि इसमे अनुभाव होते है। यथा–

१– मानत न मन मनमानी ही करत नित,
तन हूँ हमारो नाहि बस मैं हमारे है।

बहु दुख बार-बार दुखित बनावत हैं,
दादिर-दमामो दीह बाजत दुआरे है।
'हरिऔध' मान मदनीयता को देत नाहिं,
मति कमनीयता ते रहति किनारे है।
दीनबंधु तो सो दीनबंधु कौन दूसरो हैं,
दीनता हमारी दीन बंधुता सहारे है।
—हरिऔध (रसकलस)

२— कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत बितीतत जो सिसिआत तो हौं हठती पै तुम्हे न हठौती।
जौ जनती न हितू हरि सो तो मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर तें कबहूँ न गयो पिय टूटो तवो अरु फूटी कठौती॥
—नरोत्तमदास (सुदामाचरित)

(९) *चिन्ता*—इष्ट वस्तु की अप्राप्ति अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न चित्तवृत्ति ही चिन्ता है। सन्ताप, चित्त मे सूनापन, कृशता, अधोमुख, ऊँची साँस लेना इसके अनुभाव है। यथा—

१— ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली।
—प्रसाद (कामायनी)

२— झिलत झकोर रहै जोवन को जोर रहै,
समद सरोर रहै सोर रहै तब सों।
कहै पदमाकर तकैयन के मेह रहै, नेह
रहै नैननि न मेह रहै दब सों।
बाजत सुबैन रहै, उनमद नैन रहै,
चित में न चैन रहै चातकी के रव सों।
गेह में न नाथ रहै द्वारे ब्रजनाथ रहै,
कौ लों मन हाथ रहै साथ रहै सब सो।
—पदमाकर (जगद्विनोद)

(१०) *मोह*—प्रिय-वियोग, भय, व्याधि, दुख, चिन्ता आदि से उत्पन्न चित्त विक्षेप के कारण यथार्थ ज्ञान का ज्ञान न रहना ही मोह है। चित्त-भ्रम, चेतनाहीन होना, चिन्ता, भ्रम, सामने की वस्तु को भी न देखना आदि इसके अनुभाव है। यथा-

१– दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावत गीत सबै मिलि सुन्दरि वेद जुवा जुरि विप्र पढाहीं।
राम को रूप निहारत जानकि ककन के नग की परछाहीं।
या तें सबै सुधि भूलि गई, कर टेक रही पल टारति नाहीं।।
–तुलसी (कवितावली)

यहाँ पर सुख से उत्पन्न मोह व्यजित है।

२– औरो कहा कोऊ बाल बधू है नयो तन जोबन तोहि जनायो।
तेरेई नैन बड़े ब्रज में जिनसो बस कीन्हो जसोमति जायो।
डोलत है मनो मोल लियो कवि देव न बोलत बोल बुलायो।
मोहन को मन मानिक सो गुन सों गुहि तैं उर सो उरझायो।।
–देव

(११) स्मृति–पूर्व अनुभव किये हुए सुख एव दुख आदि विषयो का स्मरण स्मृति है। इसमे भौहो का चढना आदि अनुभाव होते है। यथा–

१– ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं,
हंससुता की सुन्दर कगरी अरु कुंजन की छाहीं।
वे सुरभी वे वच्छ दोहिनी खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं।
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नन्द निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन गहि, यह कहि कहि पछिताहीं।

२– राधा-मुख मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम-रत्नाकर हियँ यो उमगत है।
त्योही विरहातप प्रचण्ड सौं उमंडि अति,
ऊरध उसास कौ झकोर यौं जगत है।
केवट विचार कौ बिचारौ पचि हारि जाति,
होत गुनपाल ततकाल नभ-गत है।
करत गंभीर धीर-लंगर न काज कछू।
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है।।
–रत्नाकर (उद्धवशतक)

(१२) धृति–लोभ, मोह, भय आदि उत्पन्न होने वाले उपद्रवो को दूर करने वाली चित्त-वृत्ति धृति है। इसमे प्राप्त, अप्राप्त और नष्ट वस्तुओ का शोक न करना, सतृप्ता, सानन्द वचन, मधुर स्मृति, स्थिरता आदि अनुभाव है। यथा–

१– जबते दरसे मनमोहन जू तब तें अँखियाँ ये लगी सो लगीं ।
कुल कानि गई सखि वाही घड़ी जब प्रेम के फंद परीं सो परीं ।
कवि 'ठाकुर' नैन के नेजन की उर में अनि आनि खगी सो खगीं ।
तुम गाँवरे नाँवरे कोऊ धरो, हम साँवरे रंग रँगीं सो रँगी ।।
–ठाकुर

२– क्यो संतापित हिय करौ भगि भगि धनिकन द्वार ।
मो सिर पर राजत सदा प्रभु श्री नन्द कुमार ।।

(१३) *व्रीड़ा*–नारी के पुरुष को देखने से तथा पराजय, प्रतिज्ञाभग एव अनुचित कार्य करने आदि मे लज्जा होना व्रीडा है। अधोमुख, विवर्णता, सकुचित होना आदि इसके अनुभाव है। यथा–

१– संकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजती खड़ी रही ।
भाषा बन भौंहो की काली रेखा सी भ्रम में पड़ी रही ।
–प्रसाद (कामायनी)

२– मोहन आपुनो राधिका को विपरीत कौ चित्र विचित्र बनाइ कै ।
दीठि बचाय सलोनी की आरसी पै चिपकाय गयौ बहराइ कै ।
घूमि घरीक में आइ कह्यो कहा बैठी कपोल में बिन्दु लगाइ कै ।
दर्पन त्यों तिय चाह्यो नहीं मुसकाइ रही मुख मोरि लजाइ कै ।।

३– लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिं ।
ए मुँहजोर तरग लों ऐंचत हू चलि जाहिं ।
–बिहारी

(१४) *चपलता*–प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, अमर्ष, मात्सर्य आदि से चित्त का अस्थिर होना ही चपलता है। दूसरो को धमकी देना, कठोर शब्दो का उच्चारण, अविचारपूर्वक उच्छृखल आचरण इसके अनुभाव होते है। यथा—

१– कौतुक एक लख्यौ हरि ह्याँ 'पदमाकर' यौं तुम्हें जाहिर की मैं ।
कोऊ बड़े घर की ठकुराइनि ठाढी निघाति रहै छिन की मैं ।
झाँकति है कबहूँ झँझरीन झरोखनि त्यौं सिर की सिरकी में ।
झाँकति ही खिरकी मै फिरै थिरकी थिरकी खिरकी खिरकी मैं ।
—पदमाकर (जगद्विनोद)

२– चकरी लौं सँकरी गलिनु छिन आवति छिन जाति ।
परी प्रेम के फन्द में बधू बितावति राति ।।

(१५) *हर्ष*–इष्ट की प्राप्ति, अभीष्ट जन के समागम आदि से उत्पन्न आनन्द ही हर्ष है। मन की प्रफुल्लता, रोमाच, गद्‌गद्‌ वचन, स्वेद आदि अनुभाव है। यथा–

१– उदित उदयगिरि मच पर रघुबर बाल पतंग ।
निकसे सन्त सरोज उर हरषे लोचन भृग ।।
–तुलसी (मानस)

२–बैठी ही सुन्दरि मदिर में पति को पथ पेखि पतिब्रत पोखे ।
तौ लगि 'आये री' आय कह्यो दुरि द्वार तें देवर दौरि अनोखे ।
आनंद मैं गुरु की गुरुताउ गनी गुन गौरि न काहु के ओखे ।
नूपुर पॉइ उठे झनकाइ सु जाइ लगी धनि धाम झरोखे ।।–देव

(१६) आवेग–प्रिय या अप्रिय घटना के श्रवण से उत्पन्न चित्त की घबड़ाहट अथवा उत्तेजित हो जाने को आवेग कहते है । विस्मय, स्तम्भ, स्वेद, शीघ्र गमन, वैवर्ण्य, कम्प, रोमाच आदि अनुभाव है । यथा–

१– सुनि आहट पिय पगनि की भभरि भगी यो नारि ।
कहुँ ककन कहुं किंकिनी कहूँ सू नूपुर डारि ।।

२– देखन दौरीं सबै व्रजबाल सु आए गुपाल सुने ब्रज भूपर ।
टूटत हार हिये न सम्हारती छूटत बार न किंकिणि नूपुर ।
भार उरोज नितंबन को न सहै कटि औलटिबो दृग दूपर ।
'देव' सु दै पथ आई मनो चढ़ि धाई मनोरथ के रथ ऊपर ।।

(१७) जड़ता–इष्ट अथवा अनिष्ट को देखने-सुनने से किकर्त्तव्यविमूढ हो जाना पडता है । अपलक देखना, गुमसुम रहना आदि इसके अनुभाव हैं । यथा–

१– कालिंदी तट काल्हि भटू कहुँ ह्वै गई दोउन भेटें भली सी ।
ठौर ही ठाढ़े चितौत इतौत न तंकऊ एक टकी टहली सी ।
'देव' को देखती देवता सी वृषभान लली न हली न चली सी ।
नद के छोहरा की छवि सों छिनु एक रही छवि छैल छली सी ।।

२– हलें दुहूँ न चलें दुहूँ दुहुन बिसरिगे गेह ।
इकटक दुहुन दुहूँ लखें अटकि अटपटे नेह ।।

३– आई संग आलिन के ननद पठाई नीठि,
सोहत सुहाई सीस ईंडुरी सु पट की ;
कहै पदमाकर गँभीर जमुना के तीर,
लागी घट भरन नबेली नई अटकी ।
ताही समै मोहन सु बाँसुरी बजाई, तामें
मधुर मलार गाई ओर वंशीवट की ;
तान लगे लटकी रही न सुधि घूंघट की,
घाट की न औघट की बाट की न घट की ।।
–पदमाकर (जगद्विनोद)

(१८) *गर्व*—रूप, धन, बल, विद्या आदि का अभिमान ही गर्व है। उपेक्षावृत्ति, अविनय, अनादर आदि इसके अनुभाव है। यथा—

१— भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। विपुल बार महि देवन दीन्ही।
सहसबाहु भुज छेदन हारा। परसु बिलोकि महीप कुमारा॥
—तुलसी (मानस)

२— करती तू निज रूप का गर्व किन्तु अविवेक।
उमा रमा शचि शारदा तेरे सदृश अनेक॥

३— भौर ज्यों भ्रमत भूत वासुकी गनेस जूथ,
मानो मकरद बुन्द भाल गंगाजल की।
उड़त पराग पट नाल सी विसाल बाहु,
कहा कहौं केसौदास सोभा पल पल की।
आयुध सघन सर्वमंगला समेत सर्व,
पर्वत उठाय गति कीन्ही है कमल की।
जानत सकल लोक लोकपाल दिकपाल।
जानत न बान बात मेरे बाहुबल की॥
—केशवदास

(१६) *विषाद*—पराजय, भय, इष्टहानि, अभीष्ट कार्य की असिद्धि, असहाय अवस्था आदि के कारण निरुत्साह होना विषाद है। दीर्घ निश्वास लेना, सन्ताप, व्याकुलता, सहायान्वेषण, पछतावा आदि इसके अनुभाव है। यथा—

१— एकै सग धाये नंदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगनि गये जू भरि आनँद मढ़ै नहीं।
धोइ धोइ हारी 'पदमाकर' तिहारी सौंह,
अब तौ उपाय एकौ चित्त पै चढ़ै नहीं।
कैसी करौं, कहाँ जाऊँ, का सों कहौं, कौन
सुनै, कोऊ तौ निकासौ जासों दरद बढ़ै नहीं।
ए री मेरी बीर जैसे तैसे इन आँखिन तें,
कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं॥

२— का सुनाइ विधि काह सुनावा। का दिखाइ यह काह दिखावा॥
—तुलसी (मानस)

(२०) *औत्सुक्य*—इष्टकार्य की तात्कालिक सिद्धि की इच्छा औत्सुक्य है। मन का सन्ताप, शीघ्रता, पसीना छूटना, निःश्वास आदि इसके अनुभाव हैं। यथा—

१— कैधौं हमारी ही बार बड़ो भयो, कै रवि को रथ ठौर ठयो है।
भोर ते भानु की ओर चितौति घरी पलते गनते ही गयो है।

आवत छोर नहीं छिन को दिन को नहीं तीसरो जाम छयो है।
पाइये कैसे कै सांझ तुरन्त हि देखुरी द्यौस दुरन्त भयो है।।
—देव

(२१) *निद्रा*—परिश्रम, मद (नशा) के कारण वाह्य विषयो से निवृत्त होना ही निद्रा है। इसके जँभाई, अँगडाई, आँखो का मिचना, उच्छ्वास आदि अनुभाव होते है। यथा—

१— चहचहीं चुभकें चुभी हैं चौक चुंबन की,
लहलही लाँबी लटें लपटी सुलक पर।
कहै 'पदमाकर' मजानि मरगजी मंजु,
मसकी सु आँगी है उरोजन के अंक पर।
सोई सरसार यों सुगंधनि समोई, स्वेद
सीतल सलोने लोने वदन मयंक पर।
किन्नरी नरी है कै छरी है छविदार परी,
टूटि सी परी है कै परी है परजंक पर।।
—पदमाकर (जगद्विनोद)

२— परे कब नहीं कूप में अपनो रूप बिसारि।
कब बरबस खोये नहीं सोये पाँव पसारि।।
—हरिऔध

(२२) *अपस्मार*—वियोग, शोक, वेदना, आघात, भय, जुगुप्सा, भूतावेश आदि के कारण उत्पन्न एक व्याधि को अपस्मार (मृगी रोग) कहते हैं। गिर पडना, कँपकँपी आना, मुँह से झाग निकलना आदि इसके अनुभाव होते हैं। यथा—

१— जा छिन ते सुनि साँवरे रावरे लागे कटाच्छ कछू अनियारे।
त्यों पदमाकर ता छिन ते, तिय सों अंग-अंग न जात सँभारे।।
ह्वै हिम हायल घायल सी धन घूमि गिरी परी प्रेम तिहारे।
नैन गये फिरि फैन बहैं मुख चैन रह्यो नहिं मैन के मारे।।
—पदमाकर (जगद्विनोद)

२— कै दुख-बस महि परि कँपति फेन तजति अकुलाति।
कै मिरगी मुँह में परी है मृगदृगी दिखाति।।
—हरिऔध

(२३) *स्वप्न*—निद्रानिमग्न व्यक्ति के विषयानुभव का नाम स्वप्न है। कोप, आवेग, भय, ग्लानि, सुख, दुख आदि इसके अनुभाव होते है। यथा—

१— श्रद्धा काँप उठी सपने में सहसा उसकी आँख खुली,
यह क्या देखा मैंने ? कैसे वह इतना हो गया छली ?

स्वजनस्नेह में भय की कितनी आशंकायें उठ आतीं,
अब क्या होगा इसी सोच में व्याकुल रजनी बीत चली।
श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह सत्य बना था,
इड़ा संकुचित उधर प्रजा में क्षोभ घना था।

—प्रसाद (कामायनी)

२— पौढ़ी हुती पालिका पर मैं निसि ज्ञान रु ध्यान पिया मन लाये।
लागि गईं पलकें पलसो पल लागत ही पल में पिय आये।
ज्यो ही उठी उनके मिलिबे कहँ जाग परी पिय पास न पाये।
'मीरन' और तो सोइ कै खोवत मैं सखि पीतम जागि गवाये॥

(२४) विबोध—अविद्या या अज्ञान नाश अथवा निद्रा दूर होने के बाद चैतन्यलाभ होना विबोध है। जम्हाई, अँगडाई, मुख पर आलोक, शान्ति आदि इसके अनुभाव होते है। यथा—

१— कुंज भवन तजि भवन को चलिये नंदकिशोर।
फूलति कली गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर॥

—बिहारी

यहाँ गुलाब की कली चटकने से नवोढा के जागरण की सूचना दी गई है।

२— वीर जन वीरता वसुन्धरा विबोधिनी है,
साहसी ही साहस दिखाइ होत आगे हैं।
सबल के साथ में सरोवर पयोनिधि है,
सावधान सामने धरनि धुरे धागे हैं।
'हरिऔध' सारी सिद्धि तिनकी सहोदरा है,
सिद्धि साधना में सच्ची साधना के पागे हैं।
भाग जागे भूमें कौन भोग भोग पाये नहीं,
जाग गये जग में न काके भाग जागे है॥

—हरिऔध (रसकलस)

३— अधखुली कचुकी उरोज अध आधे खुले,
अधखुले बैस नख रेखन की झलकैं।
कहै 'पदमाकर' नवीन अध नीवी खुली,
अधखुले छहरि छराके छोर छलकैं।
भोर जगि प्यारी अध ऊरध इतै की ओर,
झाँखी झिखि झिरकि उघारि अध पलकैं।
आँखें अधखुली अधखुली खिरकी है खुली,
अधखुले आनन पै अधखुली अलकैं॥

—पदमाकर (जगद्विनोद)

(२५) अमर्ष–निन्दा, अपमान, आक्षेप, मानहानि के कारण उत्पन्न चित्त की चिढ या असहिष्णुता ही अमर्ष है। नेत्रो का लाल होना, भ्रू-भग, गर्जन-तर्जन, शिर-कम्प, सन्ताप, प्रतिकार के उपाय आदि इसके अनुभाव होते है। क्रोध की कोमलावस्था (पूर्वावस्था) अमर्ष तथा उत्कट अवस्था क्रोध है। यथा–

१– गरब सुअंजन ही बिना कजन को हरि लेत।
खंजन मद भजन अरथ अंजन अँखियन देत।।

–पदमाकर

यहाँ कजन और खजन पर अमर्ष है क्योकि वे कमल के सौन्दर्य और काजल डालने पर खजन का मान मर्दन करना चाहते है।

२–खुले केस रजस्वला सभा बीच दुसासन,
लायो सो पुकार रही सारे सभाचारी कौं।
आदि आयो हार्‌यो किधौं आदि मोकौ हार्‌यो नृप,
करन बिगारी बात विकरन सुधारी कौं।
भीम कहै ऐंच्यो चीर तेई भुज ऐंचै जैहै,
दिखावै है जंघा सो दिखै हौं तोरि डारी कौं।
द्रुपद दुलारी ! खुली लटै कर देहौं सारी,
एक नृप नारी ना अनेक नृप नारी कौं।।

यहाँ चीर हरण पर भीम का अमर्ष दिखाया गया है।

(२६) अवहित्था–भय, गौरव, लज्जा आदि से उत्पन्न हर्षादि के भावो को चतुरता से छिपाना ही अवहित्था है। मुख नीचा कर लेना, अन्य दिशा की ओर देखने लगना, बातचीत को पलट देना, किसी वहाने से दूसरे कार्य मे सलग्न हो जाना इसके अनुभाव है। यथा–

१– चढ़त घाट बिचल्यौ सु पग भरी आय इन अंक।
ताहि कहा तुम तकि रही या मे कौन कलंक।।

–बिहारी

२– निरखत ही हरि हरषि कै रहे सु आँसू छाय।
बूझत अलि केवल कह्यो लाग्यो धूमहि धाय।।

–पदमाकर

३– भोर जगी जमुना जल धार में धाइ धँसी जल केलि की माती।
त्यौं 'पदमाकर' पैंग चलै उछले जब तुग तरंग विघाती।
टूटे हरा छरा छूटै सबै सरबोर भई अँगिया रँगराती।
को कहतो यह मेरी दसा गहतो न गोबिंद तो मैं बहि जाती।।

–पदमाकर (जगद्विनोद)

(२७) *उग्रता*-अपमान, दूषित व्यवहार, वीरता आदि से उत्पन्न होने वाली निर्दयता ही उग्रता है। घुड़कना, डाँटना, भर्त्सना, बध आदि इसके अनुभाव होते है। अमर्ष व उग्रता मे यह अन्तर होता है कि अमर्ष मे निर्दयता रूप नही होता किन्तु उग्रता मे होता है। यथा -

१- और इड़ा पर यह क्या अत्याचार किया है ?
इसीलिए तू हम सबके बल यहाँ जिया है ?
आज वदिनी मेरी रानी इड़ा यहाँ है ?
ओ यायावर ! अब तेरा निस्तार कहाँ है ?

—प्रसाद (कामायनी)

२- मातु पितहि जिन सोचबस करसि महीश किसोर,
गरभन के अरभक दलन परसु मोर अति घोर।

—तुलसी (मानस)

३- सिन्धु के सपूत सुत सिंधु तनया के बंधु,
मन्दिर अमंद सुभ सुन्दर सुधाई के।
कहैं 'पदमाकर' गिरीस के बसे हौ सीस,
तारन के ईस कुल कारन कन्हाई के।
हाल ही के बिरह बिचारी ब्रजलाल ही पैं,
ज्वाल से जगावत जुआल-सी जुन्हाई के।
ए रे मतिमंद चद आवति न तोहि लाज,
ह्वै के द्विजपाल काज करत कसाई के।

—पदमाकर (जगद्विनोद)

(२८) *मति*—तर्क एव शास्त्रादि के विचार से किसी तथ्य का निर्णय कर लेना ही मति है। सन्तोष- आत्मतृप्ति, ढाढस बँधना आदि इसके अनुभाव होते है।

१- अपनहि नागर अपनहि दूत। से अभिसार न जान बहूत।
की फल तेसर कान जनाय। आनब नागर नयन बझाय।

—विद्यापति

२- बादहि बाद बदी के बकै मति बोरि है बंज विषै बिष ही को।
मानि लै या पदमाकर की कही जो हित चाहति आपने जी को।
संभु के जीव की जीवन मूरि सदा सुखदायक है सब ही को।
रामहि राम कहै रसना कस ना तु भजै रसनाम सही को।

—पदमाकर (जगद्विनोद)

(२९) *व्याधि*—रोग, वियोग आदि मे उत्पन्न मन मे सन्ताप को व्याधि कहते है। प्रस्वेद, कम्प, ताप, लेटे रहना आदि इसके अनुभाव है।

१— औंधाई शीशी सुलखि बिरह जरी बिललात।
बीचहि सूखि गुलाब गो छीटो छुओ न जात ॥
—बिहारी

गुलाबजल का बीच मे ही सूख जाना नायिका की व्याधि का सूचक है।

२— दूर ही ते देखत बिथा में वा वियोगिनि की,
आई भले भाजि ह्याँ इलाज मढ़ि आवैगी।
कहे 'पदमाकर' सुनो हो घनश्याम, जाहि
चेतन कहूँ जो एक आह कढ़ि आवैगी।
सर-सरितान को न सूखत लगैगी देर,
एती कछु जुलमिनि ज्वाला बढ़ि आवैगी।
ता के तन-ताप की कहौं मैं कहा बात मेरे,
गातहिं छुओ तौ तुम्हें ताप चढि आवैगी।
—पदमाकर (जगद्विनोद)

३— सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी कोऊ थानहिं थिरानी हैं।
कहे 'रत्नाकर' रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं।
कोऊ सेद सानी, कोऊ भरि दृग पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं।
—रत्नाकर (उद्धवशतक)

(३०) *उन्माद*—भय, शोक, त्रास, काम आदि से चित्त का भ्रमित होना ही उन्माद है। अकारण हँसना, रोना, गाना, विचारशून्य शब्दो का उच्चारण आदि ही इसके अनुभाव होते है। यथा—

१—लछमन समझाये बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती।
हे खग! मृग! हे मधुकर! सैनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥
—तुलसी (मानस)

२—आपहि आप पै रूसि रही कबहूँ पुनि आपुहि आप मनावै।
त्यों 'पदमाकर' ताल तमालनि भेटिबे को कबहूँ उठि धावै।
जौ हरि रावरो चित्र लखे तौ कहूँ कबहूँ हँसि हेरि बुलावै।
व्याकुल बाल सुआलनि सौ कह्यो चाहै कछू तौ कछू कहि आवै ॥
—पदमाकर (जगद्विनोद)

३–नाहिन नंद को मन्दिर ये वृषभानु को भौन कहा जकती हौ।
हौं ही अकेली तुही कवि देव जू घूँघट कै किहि कौं तकती हौ।
भेंटती मोहि भटू किहि कारन कौन सी धौं छवि सौं छकती हौ।
काह भयो है, कहा कहौ, कैसी हौ कान्ह कहाँ है, कहा बकती हौ।

–देव

(३१) *त्रास*–प्रबल विरोध, भयानक वस्तु के दर्शन, बिजली की कडक उल्कापात आदि प्राकृतिक उत्पात के कारण चित का व्यग्र होना त्रास सचारी है। देहकम्प, चीखना, चिल्लाना, पसीना आना आदि इसके अनुभाव है। यथा–

१–सखि परबोधि सयन तल आनी।
पिय हिय हरख धयल निज पानी।
छुइते राइ मलिन भै गेली।
विधु करे कुमुदिनी मलिन भेली।।

–विद्यापति

२–श्री वृषभानु लली मिलि कै जमुना जल केलि को हेलिनि आनी।
रोमवली नवली कहि 'देव' सु सोने से गात अन्हात सुहानी।
कान्ह अचानक बोलि उठे उर बाल के व्यालबधू लपटानी।
धाय के धाय गही सँसवाय दुहू कर झारत अंग अयानी।।

–देव

३–उतरि पलग तें न दियो है धरा पै पग,
तेऊ सगबग निसिदिन चली जाती हैं।
अति अकुलाती मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सोहातीं बोले अति अनखाती हैं।
भूषन भनत सिंह साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुने अरि नारी बिललाती हैं।
जोन्ह में न जाती ते वै धूपै चली जातीं,
पुनि तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती है।।

(३२) *वितर्क*–सदेह के कारण हृदय मे उत्पन्न ऊहापोह या तर्क ही वितर्क सचारी है। भ्रू चलना, शिर कम्प, ऊँगली उठाना आदि इसके अनुभाव होते है। यथा–

१–कैधों मोर सोर तजि गए री अनत भाजि।
कैधों उत दादुर न बोलत है ए दई।
कैधों पिक चातक महीप काहू मारि डारे,
कैधों बग पाँति उत अंत गति ह्वै गई।

'आलम' कहै हो प्यारी अजहूँ न आए प्यारे,
कैधो उत रीति विपरीतै विधि ने ठई।
मदन महीप की दुहाई फिरिबे ते रही,
जूझि गये मेघ कैधौं बीजुरी सती भई।

२–कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है कि,
श्याम घन मंडल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि,
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है।
'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है कि,
तेज ने तिमिर के हिए में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि,
ढाल पर खाँड़ा कामदेव का दुधारा है।

–नाथूराम 'शंकर' शर्मा

(३३) *मरण*–मृत्यु के समान कष्ट की अनुभूति ही मरण है। मरण का वर्णन ऐसे ढग से किया जाना चाहिए कि जिससे शोक की उत्पत्ति न हो। यथा–

१–राधिकै बाढ़ी वियोग की बाधा, सुदेव अडोल अबोल डरी रही।
लोगनि की वृषभान के भौन में भोर ते भारी यै भीर भरी रही।
वाके निदान कै प्रान रहे कढ़ि औषधि भूरि करोरि करी रही।
चेति मरू करि कै चितयी जब चारि घरी लौं मरी सी परी रही।

–देव

२–जानकी कौ सुनि आरत-नाद सु जानि दसानन की छलहाई।
त्यों पदमाकर नीच निसाचर आइ अकास में आड़्यो तहाँई।
रावन ऐसे महारिपु सों अति जुद्ध कियो अपने बल ताईं।
सोहत श्री रघुराज के काज पै जीव तजै तौ जटायु की नाईं।

–पदमाकर (जगद्विनोद)

मन के विकार होने के कारण भावो का सबसे स्वाभाविक और अनिवार्य सम्बन्ध है। कहा भी है–'विकारो मानसो भाव:'। यह ध्यान मे रखने का विषय है कि अपने सारे उपकरण लेकर भी सचारी स्थायी भाव की बराबरी नही कर सकता। रति आदि स्थायी भाव जब रस की अवस्था को नही पहुँचते तब उन्हे भाव मात्र ही कहा जाता है। जब स्थायी भाव अन्य रसो मे प्रवेश करते है तो सचारी बन जाते है। अपने आधार भूत रस मे इनकी जो आस्वाद्य योग्यता रहती है वह रसान्तर मे पहुँचने पर नही वर्तमान रहने पाती। स्थायी भावो के सहायक होकर न आने पर सचारी भाव स्वतत्र रूप से अभिव्यक्त

होते है और उन्हे भाव सज्ञा प्राप्त होती है। तेंतीसो सचारी भाव सभी रसो मे उदित और अस्त होते रहते है। इन तेंतीस मनोवृत्तियो या चित्त-वृत्तियो के अतिरिक्त भी जो अनेक भाव शेष है वे प्राय· इन्ही मे अन्तर्भुक्त हो जाते है।

स्थायी भाव

आचार्य भरत का कथन सर्वोपरि है कि कवि के अन्तर्गत भाव की भावना करने से भाव की सज्ञा है।[1] स्थायी और अस्थायी(सचारी) दोनो प्रकार के भावो मे स्थायी भाव की प्रधानता है। रस की अवस्था तक स्थायी भाव ही पहुँच सकते है दूसरे भाव नही। कोई भी अस्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव, और सचारियो से पुष्ट होकर भी स्थायी भाव के समान रस की अनुभूति नही करा सकता। इसका कारण यह है कि प्रधानता सचारी की ही मानी जावेगी जिसका स्थायित्व ही कभी नही हो पाता।

चित्त मे उद्बुद्ध होनेवाले नाना प्रकार के वृत्तियो रूपी भावो मे से जो अधिक व्यापक विस्तृत और अधिक देर तक ठहरनेवाले है उन्हे पृथक् करके स्थायी भाव नाम से विभूषित किया गया है। आस्वाद के मूल होने एव बहुलता से प्रतीत होने के कारण ही ये स्थायी भाव कहे गये है। रति आदि ऐसे ही स्थायी भाव है। इन स्थायी भावो की यह विशेषता है कि अन्य भाव इसे मिटा नही सकते वरन् विरुद्ध होने पर भी इन्ही के द्वारा आत्मसात कर लिए जाते है। स्थायी भाव मूल-भूत एव सहजात होते है। अस्तु हम कह सकते है कि वासनात्मक होकर जो भाव मन मे चिर समय तक स्थिर रूप मे रहता है वही स्थायी भाव है। अपने मे अन्य भावो को लीन कर लेने वाला, सजातीय और विजातीय भावो से नष्ट न होने वाला, आस्वाद का मूलाधार बन कर स्थित रहनेवाला तथा विभाव, अनु-भाव और सचारी भावो द्वारा पुष्ट होकर रस विशेष मे परिणत होनेवाला स्थायी भाव ही होता है।

उपर्युक्त चारो गुण केवल नौ भावो मे ही पाये जाते है जो स्थायी भाव के भेद है। निम्न विवेचन उन्हे स्पष्ट कर देगा—

१ रति

अनुकूल विषय की ओर मन का अनुराग रति कहलाता है।

सहायक सामग्री से परिपुष्ट होकर व्यजित होनेवाले स्थायी भाव की रस मे परिणति हो जाती है। जैसे वीर रस मे उत्साह स्थायी भाव होता है और शृगार मे रति। जहाँ परिपोषक सामग्री का अभाव होता है वहाँ स्थायी भाव ही स्वतत्र रूप से ध्वनित होता है। यथा—

---

१. कवेरतर्गत भावं भावयन भाव उच्यते। नाट्शास्त्र।

१–एक झिटका सा लगा सहर्ष
निरखने लगे लुटे से, कौन–
गा रहा यह सुन्दर संगीत ?
कुतूहल रह न सका फिर मौन।

यहाँ श्रद्धा के मधुमय गुंजार करनेवाले शब्दो ने मनु के मन को लूट कर रति भाव परिपुष्ट कर दिया।

२–हीरामन जो कँवल बखाना। सुनि राजा होइ भँवर भुलाना॥

इसमे हीरामन सुए द्वारा पद्मावती रूपी कमलिनी के रूप का वर्णन करने पर राजा के मन का भ्रमर रूप मे उसमे भूलना रतिभाव का व्यजक है।

२ हास

सहृदय के मन को विकृत वाणी, कार्य और रूप-विन्यास से जो हर्ष उत्पन्न होता है, वही हास है। यथा–

१–अति उदार करतूतिदार सब अवधपुरी की बामा।
खीर खाय पैदा सुत करतीं पति कर कछु नहिं कामा।
सखी बचन सुनतै रघुनंदन बोले मृदु मुसकाते -
आपन चलन छिपावहु प्यारी कहहु आन की बातें।
कोऊ नहिं जन्मै मात-पिता बिन बँधी वेद की नीती।
तुम्हरे तौ महि ते सब उपजै अस हमरे नहिं रीती॥

इस विनोद में स्थायी भाव हास्य की ही व्यजना है।

२– टूट चाप नहिं जुटहि रिसाने। बैठिय होइहिं पाँय पिराने॥
जो अति प्रिय तो करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई॥

इसमे भी हास्य की परिपूर्णता न होकर व्यजना मात्र है।

३ शोक

इष्ट पदार्थो एव वैभव के विनाश आदि कारणो से उद्भूत चित्त की व्याकुलता ही शोक है। (प्रेमी और प्रेमिका की जीवितावस्था मे परस्पर वियोग जनित वातावरण मे चित्त की व्याकुलता मे स्थायी भाव शोक की स्थिति नही समझनी चाहिए, वहाँ पर शोक वियोग-शृंगार का सचारी भाव हो जाता है) यथा—

१– भौंरन को लैकै दच्छिन समीर धीर,
डोलति है मद अब तुम धौं कितै रहे।
कहै कवि 'श्रीपति' हो प्रबल बसन्त मति–
मंत मेरे कंत के सहायक जितै रहे।

लागत विरह-जुर जोर तै पवन ह्वैकै,
परे घूमि भूमि पै सम्हारत नितै रहे ।
रति को विलाप देखि करुना अगार कछु–
लोचन को मूँदि कै त्रिलोचन चितै रहे ।।

इसमे 'कछु' शब्द शोक भाव का द्योतक है और करुण रस का परिपाक नही होने पाता ।

२– **कहा मनु ने, "नभ धरणी बीच,**
बना जीवन रहस्य निरुपाय ।
एक उल्का सा जलता भ्रान्त,
शून्य में फिरता हूँ असहाय ।"

इसमे मनु की असहायता और विवशता शोक भाव की व्यजना करती हैं।

४ क्रोध

असाधारण अपराध (जैसे गुरु एव बधुजनो का वध आदि)। कलह, विवाद और उत्तेजना पूर्ण अपमान आदि से प्रभूत मनोविकार क्रोध कहलाता है । (जहाँ पर साधारण अपराध के फलस्वरूप क्रूर वाक्यो का प्रयोग होता है वहाँ सचारी भाव 'अमर्ष' होता है ।) यथा—

१– **बोले चितय परशु की ओरा । रे शठ सुनेसि प्रभाव न मोरा ।।**
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं । विपुल बार महि देवन्ह दीन्हीं ।।
सहसबाहु भुज छेदन हारा । परशु बिलोकि महीप कुमारा ।।
–तुलसी (मानस)

यहाँ पर क्रोध की ही अभिव्यक्ति है रौद्र रस की पुष्टि नहीं होती ।

२– **सुनि अस लिखा उठा जरि राजा । जानहुँ देव तड़पि घन गाजा ।।**
का मोहि सिंघ देखावसि आई । कहौं तौ सारदूल धरि खाई ।।

बादशाह अलाउद्दीन का पत्र मिलने पर राजा रत्नसेन के क्रोध की व्यजना यहाँ दिखाई गई है ।

५ उत्साह

धैर्य और शौर्य के कारण किसी कार्य के करने के लिए उत्पन्न आवेश को उत्साह कहते है । यथा–

१– **इत कपि रीछ उत राछसनहीं की चमू,**
डंका देत बंका गढ़ लंका ते कढ़ै लगी ।
कहै पदमाकर उमंड जग ही के हित,
चित्त में कछूक चोप चाप की चढ़ै लगी ।

बानन के बाहिबे को कर में कमान कसि,
धाई धूरधान आसमान में मढ़ै लगी।
देखतै बनी है दुहूँ दल की चढ़ाचढ़ी मैं,
राम दृग हू पै नेक लाली जो चढ़ै लगी॥

इसमे उत्साह की व्यजना है वीर रस का परिपाक नही।

६ भय

हिंसक जतुओ के दर्शन, किसी बलवान का अपराध या विरोध करने पर उत्पन्न मन की व्याकुलता भय है। यथा–

१– तीनि पैग पुहुमी दई, प्रथमहि परम पुनीत।
बहुरि बढ़त लख बामनहिं, भे बलि कछुक सभीत॥

'कुछक सभीत' के कारण भय की व्यजना है और भयानक रस का परिपाक नही हो पाया है।

२– काली हृद काली लख्यौ बनमाली ढिंग आतु।
मद मद गति भीत ज्यों चलन लग्यो विकलात॥

यहाँ भी 'भीत ज्यो' कहने से भय मात्र ही व्यजित होता है।

३– चितै चितै चारों ओर चौंकि चौंकि परै, त्योही
जहाँ-तहाँ जब-तब खटकत पात हैं।
भाजन सो चाहत, गँवार ग्वालिनी के कछू,
डरनि डराने से उठाने रोम गात हैं।
कहै 'पदमाकर' सु देखि दसा मोहन की,
सेष हु महेस हु सुरेस हु सिहात हैं।
एक पाय भीत एक पाय मीत काँधे धरे,
एक हाथ छीको एक हाथ दधि खात हैं।

इस छन्द मे भी भयानक रस की परिपुष्टि नही है, केवल भय की व्यजना हुई है।

७ जुगुप्सा या ग्लानि

घृणात्मक वस्तु या दृश्य को देखने आदि से घृणा की उत्पत्ति जुगुप्सा कहलाती है। यथा–

१– सूपनखा को रूप लखि स्रवत रुधिर विकराल।
तिय सुभाय सिय हटि कछुक मुख फेर्यौ तिहिं काल॥

यहाँ 'कछुक मुख फेरयो' मे जुगुप्सा भाव व्यजित है। इसमे वीभत्स रस का परिपाक नही हुआ है।

२– आवत गलानि जो बखान करौं ज्यादा यह,
मादा मल मूत और मज्जा की सलीती है।
कहै 'पदमाकर' जरा तौ जागि भीजी तब,
छीजी दिन रैन जैसे रेनु ही की भीती है।
सीतापति राम के सनेह-बस बीती जो पै,
तौ तो दिव्य देह जम-जातना में जीती है।
रीती राम नाम ते रही जो बिन काम तौ, या
खारिज खराब हाल खाल की खलीती है।

यहाँ शरीर को 'मादा मल मूत और मज्जा की सलीती' तथा 'खाल की खलीती' कहकर ग्लानि व्यजित की गई है और वीभत्स रस का परिपाक नही हुआ है।

८ आश्चर्य (विस्मय)

अलौकिक वस्तु के देखने, सुनने या स्मरण करने से उत्पन्न मनोविकार आश्चर्य कहलाता है। यथा–

१– तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर॥
चकित चितै मुद्रिक पहचानी। हर्ष विषाद हृदय अकुलानी॥

इसमे आश्चर्य स्थायी भाव मात्र है। अद्भुत रस की पुष्टि नही हो पाई है।

२–देखत क्यों न अपूरब इदु में द्वै अरविंद रहे गहि लाली।
त्यो 'पदमाकर' कीर वधू इक मोती चुगै मनौ ह्वै मतवाली।
ऊपर ते तम छाइ रह्यो रवि की दबि तें न दबै खुलि ख्याली।
यो सुनि बैन सखी के विचित्र भये चित चक्रित से बनमाली।

यहाँ वनमाली का चकित रह जाना विस्मय भाव का व्यजक मात्र है। अद्भुत रस का परिपाक नही होने पाया है।

३– सुर नर सब सचकित रहे पारथ कौ रन देखि।
पै न गिन्यौ जदुनाथ अति करन पराक्रम पेखि।

इसमे 'पै न गिन्यो' के कारण अर्जुन का रण कौशल विस्मय की व्यंजना करके रह गया और अद्भुत रस का परिपाक नही हो पाया है।

९ निर्वेद अथवा शम

नित्य और अनित्य वस्तु के तत्वज्ञान से सांसारिक विषयों में विराग की उत्पत्ति शम या निर्वेद कहलाती है। यथा–

१– काम से रूप, प्रताप दिनेस ते, सोम से सील गनेश से माने।
हरिचंद से साँचे बड़े विधि से मघवा से महीप विषै सुख साने।

शुक से मुनि शारद से बकता चिर जीवन लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भये तौ कहा 'तुलसी' जु पै राजिव लोचन राम न जाने।

सब कुछ होने पर भी मानव-जीवन राम के भजन के बिना तुच्छ है, इस उक्ति मे निर्वेद भाव की व्यजना है।

२— **'पदमाकर' हौं निज कथा, का सों कहौं बखान।**
जाहि लखौं ताहै परी, अपनी-अपनी आन॥

सब अपने स्वार्थ निरत है, कोई भी दूसरे की सुनने वाला नही है, यही भावना निर्वेद की व्यजक है परन्तु इससे शान्त रस का परिपाक नही हो पाया है।

जहाँ पर इष्ट के वियोगादि से निर्वेद की उत्पत्ति होती है, वहाँ केवल सचारी होता है।

हिन्दी के कतिपय विद्वानो ने वात्सल्य और भक्ति को पृथक् स्थायी भाव की सज्ञा दी है। सस्कृत के आचार्यो मे कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्य-दर्पण मे वात्सल्य की स्वतत्र सज्ञा घोषित की है अन्यथा अन्य आचार्यो ने वात्सल्य और भक्ति को शृगार के अन्तर्गत ही स्थान दिया है। यह बात नही है कि वात्सल्य और भक्ति सम्बन्धी रचनाये हिन्दी युग मे ही हुई है, सस्कृत साहित्य मे भी इनका विपुल भडार है और यह सब देखते, सुनते तथा समझते हुए भी सस्कृत के आचार्यो ने सभवतः रस की कोटियो की सख्या बढाना समीचीन नही समझा। जो भी रहा हो हिन्दी मे विचारको ने विशेषकर सूर और तुलसी द्वारा विरचित वात्सल्य भाव वाले पदो और कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा प्रभृति सन्तो के भक्तिपूर्ण उद्गारो से प्रभावित होकर वात्सल्य और भक्ति की स्वतत्र सत्ता मनोनीत की है। अस्तु हमारा इन पर भी विचार कर लेना वाछित है।

१० वात्सल्य या स्नेह

पुत्र-पुत्री और माता-पिता भाई-बहन आदि का परस्पर जो प्रेम होता है उसे वात्सल्य या स्नेह कहा जाता है। यथा—

१— **मइया कबहिं बढ़ैगी चोटी,**
इती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।

२— **जो मिसरी मिछरी कहै कहै खीर सो छीर।**
नन्हो सो सुत नंद को हरै हमारी पीर॥

इसमे नन्द के नन्हे नन्दन कहने से श्रोताओ मे केवल वात्सल्य भाव जगता है।

११ भक्ति

परमात्मा के प्रति प्रेम भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। सस्कृत के आचार्यों ने

भक्ति को भाव सज्ञा देकर श्रृंगार के अन्तर्गत ही मनोनीत किया है। यथा—

१— **राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्वान।**
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥

यहाँ राम के चरणो मे भक्ति करने की व्यजना है।

२— **जो जन तुम्हारे पद-कमल के असल मधु को जानते।**
वे मुक्ति को भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते॥

इसमे मुक्ति से भक्ति की श्रेष्ठता दिखाते हुए भक्ति-भाव व्यजित हुआ है। भक्ति रस का परिपाक नही होने पाया है।

साधारणीकरण

भावना या भावकत्व का व्यापार भट्टनायक के अनुसार साधारणीकरण है। भाव-तादात्म्य पाठक या दर्शक की उस दशा का अभिव्यक्तीकरण है जिसमे कुछ समय के लिए वह व्यक्तिगत आत्मचेतनता खोकर किसी कहानी, उपन्यास, सिनेमा या नाटक के पात्र के साथ आत्मीयता स्थापित कर लेता है। यह आत्मविभोर करने वाली दशा भावकत्व व्यापार से बार-बार की विभावना (चितना या कल्पना) से उत्पन्न होती है। इसका परिणाम यह होता है कि स्थायी भाव एव विभाव आदि साधारण रूप से अनुभूत होने लगते है अर्थात् किसी विशिष्ट व्यक्ति मे उत्पन्न रति आदि स्थायी भाव व्यक्ति विशेष के न होकर सामान्य रूप धारण कर लेते है। सीताराम, राधाकृष्ण, पार्वतीमहेश्वर, शकुन्तला-दुष्यत सामान्य दम्पति प्रतीत होते है और उनका प्रेम व्यक्तिगत सम्बन्ध त्याग कर सर्वसाधारण का हो जाता है। विभावादिको का सामान्य रूप मे परिवर्तित हो जाना ही साधारणीकरण है।

श्रृगार रस

श्रृगार को आदि रस अथवा रसराज भी कहा जाता है। इसके अनेक कारण है। (१) मानव जीवन मे श्रृगार की प्रधानता ही नही अन्य रसो की अपेक्षा प्रमुखता भी है। प्रेम और युद्ध मानव-जीवन मे इतने घुले-मिले और व्यापक है कि विश्व साहित्य मे यदि इनका औसत निकाला जाय तो प्रेम सम्बन्धी रचनाये सर्वाधिक मात्रा मे मिलेगी और उसके उपरान्त गणना मे आयेगी वीरोन्मादी भावों से ओतप्रोत युद्ध-प्रेरक आत्मरक्षार्थ अथवा आक्रामक परस्वहर्ता पुष्ट स्थायी विचारधाराये। (२) श्रृगार का क्षेत्र असीम है। बालक-युवा-वृद्ध, सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, साक्षर-निरक्षर सभी मे यह व्याप्त है। जाति, वर्ग, धर्म, देश और वर्ण की सकीर्णता की परिधियो को मिटाकर यह सबको प्रभावित करता है। मनुष्येतर प्राणियो मे भी रतिभाव की प्रबलता देखी जाती है।

सयोग और विप्रलम्भ सदृश भेद जैसे शृगार मे है अन्य रसो मे नही पाये जाते। भारतीय दर्शन के अनुसार 'एकोह् बहुस्यामि' अर्थात् ब्रह्माण्ड का यह सारा प्रसार उसी एक आदि सत्ता का प्रतीक है। फिर यह स्वाभाविक ही है कि बिछुडे हुओ मे मिलन की तडप है। इस शाश्वत मिलन की चिरतन चाह के फलस्वरूप ही रति की भावना का उद्रेक होता है। वियोग से छटपटाकर मिलन की आतुरता इस पृष्ठभूमि मे साधारणतः समझ ली जा सकती है।

मानव मन को रतिभाव से उसी प्रकार का पोषण प्राप्त होता है जिस प्रकार विश्व को विष्णु से। इस रतिभाव के स्थायित्व ने जगत मे किसी को परम साधक, उपासक और भक्त बना दिया, किसी को अथाह सागर की गहराई की माप करने के लिए प्रेरित किया, किसी को लावा फेकते हुए ज्वालामुखी के अन्तराल का रहस्य लाने के लिए बढावा दिया, किसी को पक्षियो की भॉति आकाश मे उडकर वायुयान का आविष्कार कराने का गौरव दिया तथा किसी को प्राणो के सौदे पर विविध विषो के स्वाद जानने के लिए प्रोत्साहित किया। रति-क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे शेष रसो के मूलाधार प्रेम ने कभी महात्मा दधीच को अपनी अस्थियाँ जीवितावस्था मे ही वृत्रासुर दानव के सहार द्वारा विश्वत्राण हेतु देवराज को अर्पित कराई, किसी सत्यवादी हरिश्चन्द्र को अपने वचनो की पूर्ति हेतु राज-पाट देकर अपनी रानी और कुमार को बेचकर श्मशान मे डोम का कार्य कराया, किसी दानवीर कर्ण से दान करवा दिये, किसी मोरध्वज से अपने पुत्र के मस्तक पर आरा चलवा दिया, किसी शिवि को न्याय की तुला पर अपने शरीर का मास काट-काट कर चढवा दिया, किसी राम की पग-पग पर जीवनाहुति दिलाकर उन्हे विश्व के समक्ष आदर्श रूप मे उपस्थित किया और किसी कृष्ण द्वारा आततायी उत्पीडको का समूलोच्छेदन करके 'धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे' का घोष कराया। प्रेम की इसी चिनगारी ने कभी बुद्ध को अपना शरीर मृग की रक्षार्थ व्याध के सामने रखकर, 'अगुलिमाला' जैसे नर पिशाचो को सन्मार्ग दिखाकर तथा 'आम्रपाली वेश्या' को सद्धर्म-दीक्षित करके 'अहिंसा परमोधर्म.' की वैजयन्ती विश्व मे फहरा दी, कभी मानवता की रक्षार्थ क्रास पर कीलो से जड़े हुए ईसु द्वारा अपने प्राण लेने वालो को क्षमा दान कराया और कभी हरा की कन्दरा मे सोनेवाले मुहम्मद को बॉग देकर अन्धविश्वास और कुरीतियो मे खोये हुए अरबवासियो को जगाने के लिए उठा दिया। रतिभाव ने कभी शीरी की प्राप्ति हेतु फरहाद द्वारा टॉकियो से पहाड खुदवाने का अभूतपूर्व साहस और दृढता का परिचय विश्व को दिलाया और कभी लैली से मिलन-परिणय हेतु मजनू की वियोगी स्वर लहरियो से मरुभूमि के कण-कण को स्पदित ही नही किया वरन् हिंसक जन्तुओ को भी अहिसक बना दिया। यही कारण है कि

आचार्यो ने प्रत्येक भाव मे कूटस्थ रति को लक्ष्य किया और श्रृगार को रस-राज का सिंहासन प्रदान किया। निर्दिष्ट उत्सर्गो और अलौकिक कृत्यो ने स्वभावत: ही समय-समय पर भावुक हृदयो को प्रेरित करके साहित्य को प्रेम सम्बन्धी मौलिक उद्भावनाओ से आपूर कर दिया।

श्रृगार मे लगभग समस्त सचारियो का प्रयोग होता है। यह सच है कि तेतीस सचारियो मे से मरण, जुगुप्सा और उग्रता का प्रयोग सभोग मे नही किया जाता परन्तु विप्रलम्भ मे उनका भी समावेश हो जाता है। अन्य रसो मे से किसी मे भी इतने सचारी प्रयुक्त नही होते। इसी से काव्यशास्त्र मे यह रस महिमान्वित होकर रसराज की श्रेणी प्राप्त कर सका है।

श्रृगार रस की इसी महत्ता, व्यापकता तथा माधुर्य आदि गुणो को लक्ष्य करके ध्वन्यालोक मे कहा गया है–

'श्रृंगाररसो हि ससारिणां नियमेन अनुभवविषयत्वात सर्वरसेभ्य कमनीयतया प्रधानभूत ।"

(अर्थात् ससारिको को नियमतः श्रृगार रस की अनुभूति होती है तथा अपनी-अपनी कमनीयता के कारण यह सब रसो मे प्रधान है।)

और महाराज भोज तो श्रृगार को ही एक रस मानते है–

श्रृगारवीर करुणाद्भुतरौद्रहास्य वीभत्स वत्सल भयानक शान्त नाम्नः ।
आम्नासिषुदर्श रसान्सुधियो वयं तु श्रृगारमेव रसनाद्रसमाम नाम. ॥

–श्रृंगारप्रकाश

कविवर देव का कथन है–

नव रसनि मुख्य सिंगार जहँ उपजत विनसत सकल रस ।
ज्यो सूक्ष्म स्थूल कारन प्रगट होत महा कारन विवश ॥

और मतिराम भी कहते हैं–

जो बरनत तिय पुरुष को कवि कोविद रति भाव ।
तासों रीझत हैं सुकवि सो सिंगार रस राव ॥

श्रृगार [= श्रृग (= सीग) + आर (√ऋ = गमन)] का अर्थ है सीगो का निकलना। पशुओ के सीगो का आगमन उनके यौवनकाल के प्रस्फुटन का द्योतक होता है। उसी प्रकार युवक-युवतियो मे काम की वृद्धि की प्राप्ति होने पर तदनुकूल क्रियाये, प्रतिक्रियाये, चेष्टाये आदि श्रृंगार रस के अन्तर्गत आती है।

प्रेमी-प्रेमिका के मन मे सस्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम रस की अवस्था को प्राप्त होकर जब आस्वादनीय हो जाता है तब वह श्रृंगार रस कहलाता है।

विभावादि

आलबन—नायक और नायिका। इनके निम्न भेद है—

१—पति।

२—उपपति—जो अन्य नायिका मे अनुरक्त हो।

३—वैशेषिक—व्यभिचारी।

पति चार प्रकार के होते है—

१—अनुकूल—अपनी पत्नी से प्रीति रखनेवाला।

२—दक्षिण—अनेक नायिकाओ से स्वभावत समान अनुराग रखने वाला।

३—धृष्ट—अपराध करने पर अत्यन्त तिरस्कृत होकर नायिका से विनय करनेवाला।

४—शठ—अपराधी होने पर भी नायिका को ठगने मे चतुर।

नायिकाओ के निम्न प्रकार है—

इनको हम इस प्रकार समझ सकते है—

स्वकीया (पतिव्रता) तेरह है। उनके भेद—

१—मुग्धा—अकुरित यौवना अर्थात् जिसमे यौवन अकुरित हो रहा हो।

६—मध्या—जिसमे लज्जा और काम समान हो।

३—ज्येष्ठा—जिस पर पति का अधिक प्रेम हो।

४ धीरा—अन्यासक्त नायक पर परिहासपूर्वक वक्रोक्ति से क्रोध प्रकट करने वाली।

अधीरा–अन्यासक्त नायक को कठोर वचन कहने वाली।

धीराधीरा–अन्यासक्त नायक के सामने रोकर अपना क्रोध प्रकट करने वाली ।

३–कनिष्ठा–जिस पर पति का प्रेम कम हो। इसके तीन भेद धीरा, अधीरा और धीराधीरा के लक्षण ज्येष्ठा के भेदो के समान ही है।

६–प्रौढा–केलि-कलाप-प्रगल्भा अर्थात् रति-क्रीडा की क्रियाओ मे विदग्ध ।

ज्येष्ठा–

धीरा—अन्यासक्त नायक का बाहर से आदर परन्तु भीतर से उदासीन ।

अधीरा—अन्यासक्त नायक की ताडना करने वाली।

धीराधीरा—अन्यासक्त नायक को वक्रोक्ति द्वारा क्लेश पहुँचाने वाली।

३–कनिष्ठा

इसके तीन भेद धीरा, अधीरा, धीराधीरा के लक्षण ज्येष्ठा के समान है ।

१–परकीया–गुप्त रूप से पर पुरुष से प्रेम रखने वाली ।

ऊढा (या परोढा)–अन्य पुरुष की विवाहिता ।

अनूढा–अविवाहिता (जिसकी रति पिता भाई आदि के आश्रित होने से पराधीन होती है।)

१–सामान्या-वेश्या ।

निर्दिष्ट सोलह प्रकार की नायिकाये अवस्था भेद के अनुरूप आठ प्रकार की होती है। यथा–

प्रोषितपतिका–जिसका पति प्रवासी हो ।

खडिता–परस्त्री-ससर्ग के चिह्नो से नायक को चिह्नित देखकर ईर्ष्यालु ।

कलहान्तरिता–प्रार्थी नायक का अपमान करके पश्चात्तापपूर्ण ।

विप्रलब्धा–नियत स्थान पर नायक के न आने से अपमानिता ।

उत्का या उत्कठिता–सकेत करने पर भी नायक के कारणवश न आने से चिंतित होने वाली।

वासकसज्जा–नायक के आने का निश्चय होने पर शृ गार आदि से सुसज्जित होने वाली।

स्वाधीनपतिका–जिसके गुणो से अनुरक्त होकर नायक आज्ञाकारी होता है ।

अभिसारिका–काम से आतुर होकर नायक के पास जाने वाली अथवा स्वय उसे अपने पास बुलाने वाली ।

इन आठ के अतिरिक्त दो अवस्थाये और है–

प्रवत्स्यत्प्रेयसि (जिसका नायक परदेश जा रहा हो) और आगतपतिका

(नायक के प्रवास से आगमन पर हर्षित होने वाली)। परन्तु इन दोनो मे विशेष भेद नही है ।

इस प्रकार नायिकाओ के १२८ भेद हुए। इनके भी प्रकृति (स्वभाव) के अनुसार तीन-तीन भेद और है—

उत्तमा—अन्यासक्त होने पर नायक की हितैषिणी ।

मध्यमा—नायक के हितकारी या अनहितकर्त्ता होने पर उसी के समान ।

अधमा—हित करने वाले नायक के लिए सदैव अहित करने वाली ।

निर्दिष्ट सोलह नायिकाओ—१३ स्वकीया, २ परकीया और १ सामान्या—के स्वभावानुसार और तीन भेद होते है—

अन्य संभोग दुःखिता—अपने नायक के साथ रमण करके आई हुई अन्य नायिका को देखकर दुःख करने वाली ।

वक्रोक्ति गर्विता—अपने रूप और नायक के प्रेम का गर्व रखने वाली ।

मानवती—अन्यासक्त नायक पर क्रोध करने वाली ।

मुग्धा के चार भेद और किये गये हैं—

ज्ञात यौवना—जिसे यौवन के आगमन का ज्ञान हो ।

अज्ञात यौवना—जिसे यौवनागम का ज्ञान न हो ।

नवोढा—लज्जा और भय ने जिसकी रति को पराधीन कर दिया हो ।

विश्रब्ध नवोढा—नायक पर जिसको कुछ विश्वास हो ।

क्रिया के अनुसार प्रौढा के दो भेद और होते हैं—

रतिप्रिया—सभोग मे प्रीति रखने वाली ।

आनदसम्मोहिता—रति के आनन्द से सम्मोहित होने वाली ।

क्रिया के अनुसार परकीया के ६ भेद और किये गये है ।

गुप्ता—भूत, वर्तमान और भावी प्रेम-व्यापार को छिपाने वाली ।

विदग्धा—वचन और क्रिया की चतुराई से नायक को सकेत करनेवाली ।

लक्षिता—जिसका प्रीति व्यापार सखियो ने जान लिया हो ।

अनुशयना—१—सकेत विघट्टना—सकेत स्थान के नष्ट हो जाने से दुःखी ।

२—भावी सकेत विघट्टना—भावी सकेत स्थान हेतु चितित ।

३–रमणगता—किसी कारणवश सकेत स्थान पर न पहुँच सकने वाली।

कुलटा–अनेक पुरुषो मे आसक्त।

मुदिता–मनचाही बाते सुनकर प्रसन्न होने वाली।

उद्दीपन विभाव–

१–नायिका की सखी–इनके कार्य–मडन, शिक्षा, उलाहना और परिहास आदि।

२–नायक के सहायक सखा–

१–पीठमर्द–कुपित नायिका को प्रसन्न करने की चेष्टा करने वाला।

२–विट–कामतत्र की कला मे निपुण।

३–चेट–नायिका और नायक को मिलाने मे दक्ष।

४–विदूषक-अगो की विकृत चेष्टाओ द्वारा हँसाने वाला।

३–दूती–इनके चार भेद है–उत्तमा, मध्यमा, अधमा और स्वयदूतिका।

४–देशकाल आदि–षट्ऋतु, वन, उपवन, नदीतट, सरोवर, कमनीय, लतामडप, चन्द्र, ज्योत्स्ना, पुष्प, पराग, भ्रमर, कोकिल, पक्षियो का गुजार व निनाद, मधुर गीत, काव्य, वाद्य सगीत आदि।

अनुभाव–अनुरागपूर्ण परस्पर अवलोकन, प्रेमपूर्ण आलाप, भृकुटि-भग, हस्त-सचालन, आलिंगन, रोमाच, स्वेद, कम्प आदि अनेक कायिक, वाचिक और मानसिक अनुभाव है।

संचारी—मरण, उग्रता और जुगुप्सा को छोडकर शेष तीसो सचारी प्रयोग मे आते है।

स्थायी भाव—रति

जब स्त्री और पुरुष परस्पर अपने को एकात्म भाव से ग्रहण करते है, तभी उनके प्रकाशित भावो का आस्वादन रति कहलाता है।

अलौकिक शृ गार आत्मा–परमात्मा के प्रगाढ प्रेम-तत्वो को लौकिक दाम्पत्य के आदर्शो से जोडता है। हिन्दी मे इसका प्राचीन रूप अपने को **'राम की बहुरिया'** भी कहने वाले सन्तो की वाणियो मे दृष्टव्य है। यथा—

आई गवनवाँ की सारी उमरि अबहिं मोरि बारी।
साज समाज पिया लै आये और कहरवा चारी।
बम्हना बेदरदी अँचरा पकरि कै जोरत गँठिया हमारी।
सखी सब गावत गारी॥

यहाँ मृत्यु से मिलन परमात्मा से मिलन है अस्तु उसे गौने की विदा का रूप दिया गया है और स्वभावत ही यह परम आनन्द का उत्सव बन गया है। इसे हम आध्यात्मिक सभोग शृगार का उदाहरण भी कह सकते है।

जायसी ने अपने पदमावत मे मिलन और विरह के बड़े सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है जिनमे लोक-पक्ष को लेकर वास्तव मे अलौकिक पक्ष उद्घाटित हुआ है। देखिए—

नहिं पावस ओहि देसरा नहिं हेवन्त बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा जेहि सुनि आवहिं कंत॥

वियोगिनी नागमती दुख मे विदग्ध है। उनके प्रियतम राजा रत्नसेन परदेश मे नही लौटे। वे कह बैठती हैं कि जिस देश मे राजा है वहाँ वर्षा, हेमन्त और वसन्त ऋतुयें नही होती अन्यथा उन्हे देख-सुनकर कान्त आ जाते। सत्य ही है कि ब्रह्म के शून्य देश मे ऋतुओ और पक्षियो का अभाव है। उस के पास तो आत्मा को ही प्रयास करके पहुँचना होगा।

आधुनिक छायावादी कवियो ने उस अलौकिक शृगार को निम्न रूप दिया है—

कैसे कहते हो सपना है अलि, उस मूक मिलन की बात।
भरे हुए अब तक फूलो में मेरे आँसू उनके हास॥

—महादेवी

उत्कृष्ट और निकृष्ट शृगार मे इतना अन्तर समझ लेना चाहिए कि जहाँ पर आसक्ति या वासना की तीव्रता या प्रबलता हो वहाँ निकृष्ट शृगार जान लिया जाय।

सभोग शृगार

नायक-नायिका की सयोगावस्था मे जो पारस्परिक रति रहती है वही सभोग शृगार कहलाता है इसमे सयोग का अर्थ सभोग सुख की प्राप्ति होगा। यहाँ इतना यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सयोग मे वियोग और वियोग मे

भी सयोग सम्भव है यथा मान की अवस्था में सयोग मे वियोग है और स्वप्न समागम में वियोग मे सयोग है।

१—सुन्दरता पय पावक जावक पीक हिये नख-चन्द नए हैं।
चन्दन चित्र सुधा विष अजन, टूटि सबै मनिहार गए हैं।
केसव नैननि नीद मई मदिरा मद घूमत मोहमए हैं।
केलि कै नागर नागरी प्रात उजागर सागर भेष भए हैं।
—केशव

२—और एक फिर व्याकुल चुंबन रक्त खौलता जिससे,
शीतल प्राण धधक उठता है तृषा तृप्ति के मिस से।
दो काठो की संधि बीच उस निभृत गुफा मे अपने,
अग्निशिखा बुझ गई, जागने पर जैसे सुख सपने।

सयोग शृगार हम उसे कह सकते है जहाँ नायिका की सयोगावस्था मे पारस्परिक रति तो है परन्तु सभोग-सुख सुलभ नही है। यथा—

एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर सहज नीचे गिरे।
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ किया मानों प्रणय संबन्ध था।

विप्रलम्भ शृंगार

नायक और नायिका का वियोग होने पर भी जहाँ पारस्परिक प्रेम बना रहे वहाँ विप्रलम्भ या वियोग शृगार होता है। यथा—

जो मह्तु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसतेण।
ताण गणन्तिएँ अगुलिउ जज्जरिआउ नहेण॥

अर्थात्—प्रवास काल मे प्रियतम द्वारा दिए गये दिनो की गणना नखो से करते-करते प्रोषितपतिका की अँगुलियाँ जर्जरित हो गई।

जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्ड करीसु।
पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वगें पइसीसु॥

अर्थात्—यदि किसी प्रकार मै अपने प्रिय को पा जाऊँ तो अलौकिक कृत्य करूँगी। नये दीपक मे जैसे जल प्रवेश करता है वैसे ही मै भी उसके सर्वागो मे प्रवेश कर जाऊँगी।

मै पठई मति लेन सखी सु रही मिलि कै मिलिबे कहँ आनै।
जाइ मिले दिन ही दृग-दूत दयाल सों देह दसा न बखानै।
प्रेरत पैज किए तन प्राननि जोग के और प्रयोग निदानै।
लाज तें बोलन पाऊँ न केसव ऐसें ही कोऊ कहा दुख जानै॥ —केशव

इसके चार भेद है–१ पूर्वराग, २ मान, ३ प्रवास और ४ करुण ।

१–पूर्वराग–

मोहिं तजि मोहनै मिल्यौ है मन मेरो दौरि,
नैन हू मिले है देखि-देखि साँवरो सरीर ।
कहै पद्माकर त्यौं तानमय कान भये,
हौं तो रही जकि थकि भूली सी भ्रमी सी बीर ।
ये तो निरदयी दई उनको दया न दई,
ऐसी दशा भई मेरी कैसे धरौं तन धीर ।
होतो मन हू के मन नैयन के नैन जो पै,
कानन के कान तो पै जानतो पराई पीर ।।

यहाँ मोहन आलबन, साँवरे शरीर से मन का दौडकर मिल जाना उद्दीपन है, भूलना भ्रम मे पडना अनुभाव है तथा चिन्ता और विषाद सचारी है । श्याम शरीर के दृष्टिपथ मे आने के कारण राधा की अन्तर्वेदना ही पूर्वानुराग है ।

दर्शन के चार भेद है–प्रत्यक्ष-दर्शन, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन और श्रवण-दर्शन । स्वप्न-दर्शन का एक उदाहरण लीजिए—

माई म्हाणो शुपणा मा परण्यां दीनानाथ ।
छप्पण कोट्या जणा पधार्यां दूल्हो सिरी व्रजनाथ ।
शुपणां मां तोरण बंध्या री शुपणां मां गह्या हाथ ।
शुपणां मां म्हारो परण गया पाया अचड़ सुहाग ।
मीरा रो गिरधर मिड्या पुरब जमण रो भाग ।।

२—मान

रे मन आज परीक्षा तेरी ।
सब अपना सौभाग्य मनावें
दरस परस निःश्रेयस पावें ।
उद्धारक चाहे तो आवें,
यहीं रहे यह चेरी ।
—गुप्त जी

इसमें यशोधरा आलम्बन है, उद्धारक गौतम के प्रति यह भाव कि वे चाहे तो आवे उद्दीपन है, मन को समझाना और उद्‌बोधन अनुभाव है तथा इसमे गोपा का प्रणयमान है । मति, वितर्क और अमर्ष सचारी है ।

३—प्रवास–शाप, भय और कार्य–ये तीन प्रवास के कारण बताये गये है । भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीन भेद कार्यवश प्रवास के और किये गये हैं । देखिये–

ईर्ष्या से आर्त मनु का प्रवास–

लो चला आज मैं छोड़ यहीं, सचित सवेदन भार पुंज।
मुझको काँटे ही मिलें धन्य, हो सफल तुम्हें ही कुसुम कुज।
कह, ज्वलनशील अन्तर लेकर मनु चले गये, था शून्य प्रांत।
"रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही !" वह कहती रही अधीर श्रांत।

तथा आगे के छन्द भी दृष्टव्य है। –**प्रसाद (कामायनी)**

इसमे प्रवास का वर्तमान से सम्बन्ध होने के कारण वर्तमान प्रवास है।

करुण—

यहाँ करुण से विप्रलम्भ जनित करुण शृ गार समझना चाहिए। करुण रस मे नायक-नायिका मे किसी की मृत्यु-वश अथवा अन्य किसी कारण वश मिलन की समाप्ति हो जाती है और करुण विप्रलभ मे मरणातक दशा पहुँच कर भी मृत्यु नही होती और भविष्य मे मिलन की पूर्ण आशा रहती है। देखिये–

कालिय काल महा विष ज्वाल जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिन।
ऊरध के अध के उबरे नहि जाकी बयारि बरै तँह ज्योतिन।
ता फनि की फन फाँसिन में फँदि जाय फँस्यौ-उकसै न अजौं छिन।
हा ब्रजनाथ सनाथ करौ हम होती है नाथ अनाथ तुम्है बिनु।

इस छन्द मे गोपियो की उक्ति करुण विप्रलभ शृ गार की द्योतक है।

वियोग मे काम की दस दशाये होती है--अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और स्मृति। इनमे चिन्ता, स्मरण, उन्माद, व्याधि, जडता और मरण सचारी से सादृश्य रखते है। शेष चार से दो के उदाहरण देखिये–

काम दशा मे अभिलाषा–

ऐसी मति होति अब ऐसी करौ आली,
बनमाली के सिंगार में सिंगारिबोई करिये।
कहै पदमाकर समाज तजि काज तजि,
लाज को जहाज तजि डारिबोई करिये।
घरी घरी पल-पल छिन-छिन रैन दिन,
नैनन की आरती उतारिबोई करिये।
इन्दु तें अधिक अरबिंद तें अधिक, ऐसो,
आनन गोविन्द को निहारिबोई करिये।।

२–काम दशा मे गुण कथन–

चोरिन गोरिन में मिलिकै इतै आई ही हाल गुवाल कहाँ की।
को न विलोकि रह्यो पदमाकर वा तिय की अवलोकनि बाँकी।

बीर अबीर की धूंधुरि में कछु फेर सो कै मुख फेरि कै झांकी।
कै गई काटि करेजन के कतरे-कतरे पतरे करिहाँ की॥

श्लील और अश्लील

बहुधा श्रृ गार रस के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य मे श्लील (प्रशसनीय) और अश्लील का प्रश्न उठता रहता है। वास्तव मे यदि देखा जाय तो श्लील और अश्लील अपनी भावना पर अवलम्बित होता है। जैसे किसी सुन्दरी के शरीर को डाक्टर रोग के निदान हेतु, कलाकार उसके अगो-प्रत्यगो मे कलात्मक सौदर्य गवेषणा हेतु और कामी अपनी काम-वासना-पूर्ति हेतु देखते है वैसे ही साहित्यिक रचनाओ के अध्ययन-अध्यापन मे अपनी भावना ही प्रमुख होती है।

विद्यापति की श्रृगारिक पदावली का गान करते हुये अपने आराध्य के माधुर्य भाव के चित्रो मे आत्मविभोर होकर चैतन्यदेव मूर्च्छित हो जाते थे और सूर ने अपने आराध्य के लीला-गान मे भक्ति-श्रृ गार की जो मदाकिनी बहाई उससे परवर्ती कवियो को श्रृगार की सुराधारा प्रवाहित करने की प्रेरणा मिली--इससे हमारा यही निष्कर्ष है कि श्लील और अश्लील अपनी भावना पर ही वस्तुत आधारित है।

हास्य रस

विकृत आकार, वाणी, वेश और चेष्टा आदि को देखने से हास्य रस उत्पन्न होता है। हास्य रस का विकास आचार्यो ने श्रृगार से मनोनीत किया है और श्रृगार का स्थायी भाव रति होने के कारण हास्य की जडे प्रेम मे स्थित है। इसकी प्रकृति चित्र-विचित्र रगवाली होती है तथा हृदय शुद्ध होता है।

आलम्बन– विकृत या विचित्र वेशभूषा आकार आदि, व्यग्यपूर्ण वाक्य, निर्लज्जता, मूर्खताभरी चेष्टाओ का देखना या सुनना आदि।

उद्दीपन– हास्यजनक चेष्टाये आदि।

अनुभाव– कपोल, नासिका तथा ओठो का स्फुरण, आँखो का मिचना, मुख का विकसित होना, पेट का हिलना, व्यग्य भरे वचन कहना, आँसू आना, काँपना आदि।

सचारी– अवहित्था, रोमांच, असूया आदि।

स्थायी भाव–हास।

देवता– प्रमथ।

वर्ण– श्वेत।

आचार्यों ने हास्य के दो भेद किये है—(१) आत्मस्थ और (२) परस्थ। जो हँसी स्वय अपने मन से उद्‌भूत होती है वह आत्मस्थ औ जो दूसरे को हँसता देखकर पैदा होती है वह परस्थ कहलाती है।[1] प्रकारातर से इसके छै भेद और किये गये है—(१) स्मित, (२) हसित, (३) विहसित, (४) अवहसित, (५) अपहसित और (६) अतिहसित। परन्तु इन भेदो का आधार हास्य की न्यूनाधिकता मात्र है जो कोई विलक्षणता नही है। यहाँ स्मित का अभिप्राय नेत्रो के ईषद् विकास किवा अधर स्पदन (ओठो के कुछ-कुछ फडक उठने) का है। हसित वह हास्य है जिसमे कुछ दाँत भी दिखाई पड जाये। विहसित वह है जिसमे साथ ही साथ मधुर शब्द भी निकल पडे। अवहसित वह है जिसमे कन्धे और सिर काँपने लगे। अपहसित का अभिप्राय उस हँसी से है जिसमे आँखो मे आँसू तक आ जाये और अतिहसित वह हँसी है जिसमे हाथ पैर भी उठाये पटके जाया करे।

हास्य के अतिरिक्त अट्‌टहास का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इसकी पृष्ठभूमि मे प्रबल आत्मविश्वास (Absolute confidence), आवश्यकताओ का अभाव (Want of wants) तथा उपेक्षा (Contempt or dısregard) निहित होते है। पुराणो मे वर्णित ताडव नृत्यकर्ता भगवान शकर का अट्‌टहास सुपरिचित है। दानवो और राक्षसो का अट्‌टहास भी विदित ही है। जहाँ और जब उपर्युक्त तीन पूर्तियाँ होगी उनके स्तर एव उनकी स्थिति के अनुरूप अट्टहास का स्तर ऊँचा या नीचा होगा।

प्रो० शिवाधार पाण्डे[2] ने हँसी के तीन भेद किये है—(१) दिव्य (जो अपने हर्ष से उत्पन्न हो और सबको मुदित करे), (२) किन्नरी—(जिस हँसी मे कौतुक हो और सबको हँसावे) तथा (३) विद्याधरी—(जो हँसी समझाने-सुधारने के लिए दूसरे की हँसी उडावे और सबको अच्छी लगे)। हँसी के ये तीनो भेद सात्विक है, उनका हृदय शुद्ध है तथा वे दूसरो का दिल नही दुखाते। हर्ष, कौतुक व सुधार उनके मूल मत्र है और यही उनकी परीक्षा है। आमोद, प्रमोद और आह्लाद इनके गुण है।

श्री जगन्नाथ जी की काष्ठ मूर्ति का दर्शन अथवा विचार करके सस्कृत कवि की अनोखी मेधा और प्रज्ञा ने किन्नरी हास्य का अद्‌भुत ठाट बाँध दिया है। देखिये—"एक बकवादिनी स्त्री (सरस्वती), दूसरी चचल (लक्ष्मी), भुवन

---

१. आत्मस्थौ द्रष्टुरुत्पन्नौ विभावैं क्षणमात्रतः।
हसतमपर दृष्ट्वा विभावश्चोपजायते।
योऽसौ हास्यरसस्तज्ज्ञै परस्थ· परिकीर्तित·॥

—रस गगाधार

२. चेतना, वर्ष १, सवत् २००६, अक १०।

विजेता पुत्र मन्मथ, शेष पर शय्या, उदधि मे शयन और गरुड का वाहन पाकर विरोध, अशान्ति और विडंबना के घात-प्रतिघात द्वारा आक्रान्त हो विष्णु काठ के हो गये–

एका भार्या प्रकृति मुखरा चचला च द्वितीया।
पुत्रश्चैको भुवन विजयी मन्मथो दुर्निवार ।।
शेष शय्या शयनमुदधौ वाहनं पन्नगारि ।
स्मार-स्मार स्वगृह चरितं दारुभूतौ मुरारि ।।

बारहवी शती मे आविर्भूत होने वाले 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक प्राकृत-काव्य के प्रणेता सोमप्रभ ने दस मस्तक और एक शरीर वाले रावण के जन्म पर उसकी माता कैकसी की चिन्ता और विस्मय का चित्रण कर किन्नरी हास्य को साकार कर दिया है–

रावण जायहु जहि दिअहिं दह मुह एक सरीरु ।
चिंताविय तइयहि जणणि कवणु खियावहुँ खीरु ।।

विद्याधरी हास्य के लिए सस्कृत कवि की निम्न उक्ति अति सार्थक है जिसमे ससुराल की समता स्वर्ग से करते हुए उसे स्थायी आवास बनाने वालो को युक्ति चातुरी से सावधान किया गया है–

श्वसुर गृह निवासो स्वर्ग तुल्यो नराणां ।
वसति यदि विवेकी पंच षट् वा दिनानि ।।

हास्य के ये प्रकार भी बताये गये है—हास्य (Humour), वाक्चातुरी (Wit), व्यग्य (Irony) और वक्रोक्ति (Satire)।

हास्य समस्त अनुभूति-देश को विकम्पित करने की शक्ति रखता है। इसमे प्रशस्त आनन्द की ज्योति जगमगा उठती है। व्यग्य के विषैले वाण इसमें सम्मिलित नही होते। तीक्ष्ण बुद्धि और कल्पना पटु तथा शब्द कौशल पर अधिकार रखने वाला लेखक ही विट की सृष्टि करने मे समर्थ हो सकता है। विट को हम हाजिर जवाबी भी कह सकते है। जैसे एक बार प्रिवी कौसिल मे किसी अग्रेज ने कहा–हिन्दुस्तानी बडे झूठे है। इस पर गोखले ने कहा–और अग्रेज़ झूठों के बादशाह है।

व्यंग्य विद्रूपकारी लेखक किसी पक्ष का अवलबन नही करता। वह एक परोक्ष भाव का निर्देश कर देता है। जैसे 'सुना जाता है कि सारे सरकारी घूसखोर अफसर हट रहे है।' दूसरे शब्दो मे सारे सरकारी विभाग बन्द कर दिये जावेगे।

वक्रोक्ति (Satire) के दो भेद है—(१) काकु (Hightened) तथा (२) श्लेष (Fun)। जैसे, काकु—मित्र ने कहा कि मेरी सरलता आप जानते

ही है। उत्तर मिला—जी हाँ आप पूरे महात्मा है। श्लेष—भाई मै बेकार हूँ। उत्तर—तो एक कार क्यो नही खरीद लेते ?

अंग्रेज लेखक एडीसन (Addison) का कथन है कि मनुष्य ही सृष्टि मात्र मे हँसी विनोद करता है। उससे ऊपर के जीव अपना मुँह नही बिगाडते, न पशु न देवता। जिन बातो पर मनुष्य को हँसी लगती है देवताओ को दया लगती है या रोष आता है। परन्तु एडीसन के विचारो मे वाछित गहराई नही है। पशु चाहे न हँसते हो—न लकडबग्घे, न सिआर, न लोमडी परन्तु देवता अवश्य हँसते है। हिन्दू त्रिमूर्ति पर हँसी का साम्राज्य है। नारायण मुस्कुराते रहते है। और शकर का अट्टहास सर्वविदित है। व्यग्य मे प्रवीण असुरो ने जब नाट्यशास्त्र चुरा लिया तब देवताओ ने उसका उद्धार किया। अब वह सबके लिए सुलभ है और हास्य उसमे एक प्रधान अश है। मार्क ट्वेन (Mark Twain) का कथन है कि स्वर्ग मे हँसी नही है, वह नरक मे होनी चाहिए। परन्तु इस कथन की विचारशून्यता तत्काल ही अपना पता दे देती है। नरक की कल्पना चाहे वह हिन्दू हो, मुस्लिम हो और चाहे ईसाई हो उसमे समाज व्यवस्था को तोडने वाले पापियो द्वारा उनके कर्मानुसार विभिन्न प्रकार की दारुण यत्रणाये भोगने का चित्र अकित किया गया है अस्तु नाना प्रकार के क्लेश पाने वाले नरक के प्राणियो को आमोद-प्रमोद और आह्लाद की कौन सी शुभ प्रेरणा हँसा सकती है, यह भोले मार्क ट्वेन ने नही सोचा। दु ख भोगनेवाले नारकीयो की हँसी का प्रश्न तो बहुत दूर है, दिल बहलाने वाले उनके घोर कष्ट नरक के दूतो को भी सम्भवत हँसाने की क्षमता कम ही रखते है क्योकि यम के अनुशासन और कर्तव्य की पाबन्दी वे करते है न कि अपना अपराध किये जाने पर वे बदियो को दण्ड देते है। दूसरो को अकारण सताकर और उनके आर्तनाद पर स्वभावतः प्रसन्न होने वाले राक्षस और दानव अथवा उन सदृश घोर तामसिक वृत्ति वाले व्यक्ति ही ऐसी परिस्थितियों मे हास्य के आश्रय या आलबन बन सकते है।

हिन्दी साहित्य मे दिव्य, किन्नरी और विद्याधरी हास्य के उदाहरण पा सकना प्रायः असम्भव सा ही है परन्तु यह स्वाभाविक है। प० रामदहिन मिश्र ठीक ही लिखते है—हास्य समस्त अनुभूति को आदोलित करता है। इससे प्रशस्त आनन्द फूट पडता है। इसमे व्यग्य वाण का आघात नही रहता। करुण रस मे जब इसका परिपाक होता है तो इसकी गभीरता और बढ जाती है। हिन्दी मे उच्च और गम्भीर हास्य रस का प्रायः अभाव सा है।[1] पराधीन भारत के हिन्दी साहित्य मे व्यग्य के अच्छे उदाहरण सुलभ है।

विशुद्ध हास्य के लिए देश काल की अपेक्षित परिस्थितियो के बधन व्यग्य

---

१. काव्यदर्पण—पृ० २६७

पर लागू नही होते क्योकि सब देशो और सब कालो मे तथा सभी परिस्थितियो मे व्यक्ति असतुष्ट हो सकता है। यही कारण है कि यूरोपीय और भारतीय प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यो मे हमे देश-काल और परिस्थिति के बधनो से उन्मुक्त व्यग्य के दर्शन होते है। हँसी सीधी होती है, वह किसी का दिल नही दुखाती, व्यग्य टेढा, चुभनेवाला, काट खाने वाला, और मर्मा तक तक को पीडित करने की प्रबल शक्ति से पुजीभूत होता है। प्रो० ललिता प्रसाद सुकुल ने लिखा है—"अपने मूल रूप और शुद्ध रूप मे हास्य रस का उद्रेक शारीरिक और मानसिक तुष्टि और उसके द्वारा अनुप्राणित प्रफुल्लता से ही सम्भव होता है। इसे आचार्यों ने मोद और विनोद की कोटि का माना है। यही शुद्ध हास्य का प्रधान रूप है। किन्तु असतुष्टि और द्वद्वात्मक होड की परिस्थितियो मे रसात्मक उद्रेक व्यग्य का रूप ले लेता है और इसके विविध प्रादुर्भूत रूप हास्य न रह कर उपहास अथवा परिहास की कोटि के हो जाते है। जीवन मे इसका उपयोग और इसके रूप सामयिक परिस्थितियों और व्यक्तिगत योग्यताओ के अनुसार देश-विदेशो मे प्राय: सभी कालो मे होते ही रहे है।"[1]

यूरोपीय साहित्य मे हमे व्यग्य के भेद-प्रभेदो का साक्षात्कार विशेष रूप से होता है। वहाँ के साहित्यकारो ने इसका विशेष रूप से विश्लेषण करके विवेचना की है। प्रो० शिवाधार पाण्डे ने व्यग्य के पाँच भेदो का विशद उल्लेख किया है—(१) गूढ (Irony) (२) प्रत्यक्ष (Satire)। (३) वैयक्तिक (Saracasm), (४) दार्शनिक (Sardonism) और (५) आसुरी (Diabolical)।

गूढ व्यग्य (Irony) का उद्देश्य सुधार है, क्षेत्र समाज है, हृदय शुद्ध या अशुद्ध दोनो हो सकते है तथा इसके अनत भेद है।

प्रत्यक्ष व्यग्य (Satire) का उद्देश्य भी सुधार है, समाज या उसके वर्ग इसके क्षेत्र है, इसका हृदय शुद्ध होता है, और अशुद्ध हृदय होने से इसमे खुनस आ जाती है।

वैयक्तिक व्यंग्य (Saracasm) का उद्देश्य निराकरण करके नीचा दिखाना है, उपस्थित समाज ही इसका क्षेत्र है और इसका हृदय अशुद्ध है।

दार्शनिक या नास्तिक व्यग्य (Sardonism) के दो भेद चार्वाकी और अघोरी है। इसका उद्देश्य केवल निराकरण ही नही वरन् सम्पूर्ण आध्यात्मिक बल व विश्वास का विनाश है, जिसे बुद्धि-विकास व अतरात्मा द्वारा उद्धार कहा गया है। चार्वाकी भाव Epicurian सदृश स्वार्थी थे परन्तु Sardo-

१. काव्य चर्चा, उपोक्ति (व्यग्य) काव्य का मनोवैज्ञानिक आधार, पृ० ६९

nism की प्रकृति यथार्थ थी जिसे हम (Cynic) द्वेषी या कुटिल कह सकते है। उपस्थित तथा अनुपस्थित समाज ही इसका क्षेत्र है तथा इसका शुद्ध या अशुद्ध हृदय स्वार्थी होता है। अघोरी व्यग्य का उद्देश्य अपने ही सकीर्ण पथ द्वारा उद्धार है और उसके लक्षण चार्वाकी व्यग्य के अनुरूप है।

आसुरी या शैतानी (Diabalical) व्यग्य निराशावादिता से विषाक्त हो जाता है। इसका उद्देश्य सर्वनाश है। हृदय इसका विद्वेषी है और मनुष्य मात्र इसका क्षेत्र है। दानवी और राक्षसी इसके दो भेद है। बल प्रधान हो तो दानवी और छल प्रधान हो तो राक्षसी कहलाता है।

यूरोपियन व्यग्य के लकडदादे यूनानी आर्कीलौकस का विवाह उसके दासी पुत्र होने के कारण रुक गया और वह विषैले वाणो की वर्षा करने लगा। अग्रेज जोनाथन स्विफ्ट को लदन के विशप का पद न मिला तथा अन्य असतोषप्रद घटनाये घटी और 'टेल आफ ए टब' तथा 'गुलिवर्स ट्रैवेल्स' आदि व्यग्यात्मक रचनाओ की उसने सृष्टि की। यूरोपियन व्यग्य का क्षेत्र अधिकाशत समाज रहा है। सामाजिक कुरीतियो का खाका बहुधा सुधार के उद्देश्य से खीचा गया है।–

शार्लट गिलमन की 'बेजोड ब्याह' शीर्षक कविता दृष्टव्य होगी--

"आ हो जा मेरी बीबी मुर्गी से बोला गिद्ध
आराम किया कर घर बैठी मैं उड़ने में परसिद्ध"
"है शौक नहीं है शक्ति नहीं उड़ने की मुझमें प्यारे"
मुर्गी बोली, "तुम उड़ा करो गगनों में पख पसारे नयनो के मेरे तारे"
बे ब्याहे बोले, "अहाहा, यह प्रेम महा अलबेला"
मुर्गी बैठी अंडे सेती उड़ता था गिद्ध अकेला ॥१॥
"मेरी बीबी हो जाओ कुछ जरा तरस तो खाओ
तू सीधी है तू भोली है, मैं नाहर हूँ खूँखार है गहरा मेरा प्यार।"
मिमियायी भेड़, "मेरे राजा पछियाओ हन हन खाओ
मैं करती नही न कर सकती कुछ बुरा मेरे दिलदार"
बे ब्याहे बोले, "अहाहा यह प्रेम महा अलबेला"
चरती थी भोली भेड़ शिकारी था वह शेर अकेला ॥२॥
"आ हो जा मेरा स्वामी," मछली घोंघे से बोली.
"मैं चलती फिरती सिधु सरित तू घोघा है घर घुसना"
"रम ताल नदी तू सागर" बोला घोघा घर घुसना
"मैं रुसना हूँ घर घुसना हूँ चहता चुलबुली ठठोली"
बे ब्याहे बोले "आहाहा यह प्रेम महा अलबेला"
मछली तो गहरे तैर चली घोंघा घर घुसा अकेला ॥३॥

श्रीमती मिलोमाट काग्रेव के 'पाश्चात्य विवाह' की निम्न पवितयाँ उक्त प्रथा के खोखलेपन की अच्छी खिल्ली उडाती है–

बस हम दोनों रहें अछूते जैसे बहुत दिनों के व्याहे।
शिष्ट सभ्य आचरें हमेशा जैसे बिलकुल कभी न व्याहे ।।
(अनु०–प्रो० शिवाधार पांडे)

इलियट की "पोले नरचोले" (बुढऊ को छिदहा पैसा) शीर्षक निम्न कविता मे व्यग्य के छीटे स्पष्ट है–

मानव
हम पोले
हम ठुँसे ठँसे है भुस
बस सधे बधे आपुस
खुस खुस खुस खुस
सुनसान निरर्थक
सूखी घासों सुसनी सुस सुस
टूटे शीशों मूसी सरपट
फस फस फस फिस फुस
हमारे तहखानों में रूखे
काया रूप रहित
छाया वर्ण रहित
शक्ति पक्षाघातित
इंगित-गति नाशित
जितने पार गये
सूधे नयनो--बढ़े हये
जहाँ जमाये दूजा राज
जमराज–
सुमिर रहे जो हमें कभी
बस यही–
हम जीव
नहीं झगड़ुए
नहीं बगड़ुए
बस'
हम पोले
ठस ठुँसे भुस। **(अनु० प्रो० शिवाधार पांडे)**

इनके अतिरिक्त दग्ध नार्टन, 'औडेन, औवेन सीमन, फेल्किन, आर्टेमस

वार्ड प्रभृति अग्रेज कवियो की गूढ, प्रत्यक्ष और वैयक्तिक व्यग्य की रचनायें प्रसिद्ध ही है।

सस्कृत साहित्य मे भी व्यग्य वर्तमान है। लटक-मेलक सरीखे प्रहसनो मे व्यग्यात्मक हास्य का पूर्ण परिपोष मिलता है। किसी विष्णुशर्मा की वैशिकता का भर्त्सनापूर्ण चित्रण कवि ने कितनी कुशलता से किया है, जब वह उससे कहलाता है, "हाय मै तो मरा, क्योकि वेश्या ने अपने अपवित्र हाथ की मूठ बाँधकर बडे बल से थूतकार शब्द समेत मेरे सिर पर एक घूँसा मारा जो प्रत्येक मत्र के साथ पवित्र किये हुए जल बिन्दुओ मे छिडककर पवित्र किया गया था"—

आकुंच्य पाणिमशुचि मम मूर्ध्नि वेश्या।
मन्त्राम्भसां प्रतिपदं पृषतै पवित्रे।
तारस्वन प्रथितथत्कमदात्प्रहार।
हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्मा॥

षडानन और गणेश की बाल सुलभ क्रीडा मे झगडे का एक रोचक प्रसग अवलोकनीय है। "गणेश के रोने पर पार्वती ने पूछा कि क्यो रोते हो ? उन्होने कहा कि अग्निभू मेरे कान खीचते है। माँ ने इस कुचेष्टा के लिए स्कन्द को डाटा तो उन्होने कहा कि इसने मेरी आँखें गिनी थी। इस अभियोग को सुनकर पार्वती हँस पडी"—

हे हेरम्ब ! किमम्ब ! रोदिषि कथं ? कर्णौ लुटत्यानि भू ।
किं रे स्कद विचेष्टितम् ? ममपुरा सख्या कृता चक्षुषाम्।
नैनत्ते ह्युचितं गजास्यचरितं ! नासा प्रमीताच मे।
तावेवं सहसा विलोक्य ह्युचितं व्यग्रा शिवा पातुव॥

जैन महाराष्ट्री प्राकृत की प्राचीन रचना 'दसवेयालिय निज्जुत्ति' मे एक साधु की वचकता का भडाफोड बडे ही विनोद पूर्ण ढग से किया गया है। उसके वस्त्र मे अनेक छिद्र देखकर दूसरा साधु कौतूहल वश कहता है कि हे साधु, तुम्हारे वस्त्र मे इतने छिद्र क्यो है ? वह उत्तर देता है कि यह मछलियाँ पकडने मे जाल का काम करता है। दूसरा साधु आश्चर्य से कहता है कि तुम मछली खाते हो ? पूर्व साधु उत्तर देता है कि हाँ, और मीठी सुरा के साथ। दूसरा साधु कहता है कि तुम मीठी सुरा पीते हो, तो पूर्व साधु उत्तर देता है कि हाँ, वेश्याओ के साथ। दूसरा आश्चर्य से फिर कहता है कि तुम वेश्याओ का ससर्ग करते हो और उत्तर मे सुनता है कि अपने शत्रुओ के दमन के उपरान्त। वह प्रश्न करता है कि तुम्हारे शत्रु भी है ? जिसका उत्तर मिलता है कि वें, जिनके घर मैं लूटता हूँ। दूसरा साधु कहता है कि तब तो तुम चोर हो और पूर्व साधु कहता है कि केवल जुआ खेलने के

कारण। दूसरे साधु का आश्चर्य और क्षोभ इस समय तक अधिक हो जाता है और वह कहता है कि तुम जुआडी भी हो ? पूर्व साधु कहता है कि क्या तुम नही जानते कि मै दासी पुत्र हूँ"—

"O monk your cloak has so many holes !"

"Yes, it serves me as a net when I catch fish"

"You eat fish ?"

"I eat them along with my brandy." You drink sweet brandy ?"

"Oh yes, with the harlots." "What, you go to harlots"

"After I have crushed my enemies" "You have enemies then ?"

"Only because of the game of dice" "How, are you a gambler ?"

"Am I not, after all the son of a slave mother"

(अनु० ल्यूमन)

मूल प्राकृत रचना तो देखने मे नही आई परन्तु उसका निम्न सस्कृत रूपान्तर अवश्य मिला है—

भिक्षो ! कन्थाश्लथा ते नहि शफरि बधे बालमश्नासिमत्स्याम् ।
ते वै मद्योपदशाः पिबसि मधु समं वेश्ययायासि वेश्या।
दत्वाङ्घ्रिमूर्ध्न्यरीत्यं तव किमु रिपवो भित्तिभेत्तास्मि येषाम् ।
चौरोऽसि द्यूत हेतो' त्वयि सकलमिदं न्यास्ति नष्टे विचारः ॥

साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथ का दिया हुआ व्यग्यात्मक हास्य का निम्न उदाहरण भी दृष्टव्य है—

गुरोर्गिर. पंचदिनान्यधीत्य वेदान्त शास्त्राणि दिन त्रयं च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान्समागता: कुक्कुट मिश्र पादा: ॥

(अर्थात्-हट जाओ देखो श्री कुक्कुट मिश्र जी पधार रहे हैं। आप ही वे महामहोपाध्याय हैं जो पॉच दिन मे ही प्रभाकरमीमासा की चटनी कर गये, तीन दिन बीतते-बीतते वेदान्त दर्शनों को पी गये और तर्क शास्त्रो को सूंघ लेना आपके बाये हाथ का खेल ही ठहरा।)

अब हिन्दी की कुछ रचनाये भी विचारणीय है—

१—यह चित्रित हैं दस चित्र विचित्र बढी इनसौं छवि भौन की भारी।
इनमें जगनायक की यह सातवीं सॉंवरी मूरति कौन की प्यारी।
सखि, तू है सयानी सहेलनि में, इहि सौं हम पूछत देहु बतारी।
विकसे से कपोलन, बॉंकी चितौन सिया सखियान की ओर निहारी।

यहाँ रामचन्द्र जी के चित्र को लक्ष्य करके सीताजी के प्रति सखियो की

प्रथम तीन चरणों की व्यग्योक्ति ही हास्य का आलंबन है, सीताजी के कपोलो का विकास और बाँकी चितवन अनुभाव तथा व्रीडा सचारी है।

२–रूप अनूप सजे पट भूषण जात चली मद के झकझोरनि।
औचक काँटो चुभ्यो पग में मुख सों सिसकार कढ़ी बरजोरनि।
सो सुनि के बिट बोल्यो हहा! फिर हू इमि क्यों न करे चित चोरनि।
चंदमुखी मुख आँचर दै चितई तिरछी बरछी दृग कोरनि।।

इसमे विट की उक्ति आलबन है, चन्द्रमुखी का आँचल देकर तिरछे देखना अनुभाव है तथा हर्ष आदि सचारी है।

३–गोपी गुपाल कौ बालिका कै वृषभानु के भौन सुभाइ गईं।
'उजियारे' बिलोक विलोकि तहाँ हरि राधिका पास लिवाइ गईं।
उठि हेली मिलौ या सहेलिनि सो यौं कहि कठ से कंठ लगाई गईं।
भरि भेंटत अंक निसंक उन्हें वे मयकमुखी मुसुकाई गईं।।

यहाँ स्वशब्दवाच्य मुसुकुराना सखी परक है और परनिष्ठ हास्य है। राधाकृष्ण का हास्य तो व्यग्य ही है।

४–कविरत्न सत्यनारायण के प्रसिद्ध पद 'भयौ क्यो अनचाहत कौ सग' परिहास पद (Parody) भी देखिये—

भयौ क्यों अनचाहत कौ संग।
खुफिया पुलिस परी है पीछे करि डारे हम तंग।
जहँ तहँ जात दिखात तहाँ ही खात न्हात बतरात।
चौंकि परत चंचल तुरंग सी फरकि जात जो पात।
निरखत परखत रहति सदा ही अन्तर नेक न लावति।
हमरी करनी-धरनी को लिखि लेखौ तुरत पठावति।
उघरी देह अँगौछा काछे जित जित प्रान बचाऊँ।
तित तित वा छरछदो की मैं छटा निरख तो जाऊँ।
दीनबन्धु मेरी करनी कौ कैसहु कुफल चखाओ।
सत्य कहूँ पर इन खुपियन ते मेरौ पिंड छुड़ाओ।।

वीर रस

जिस विषय में उत्साह का पोषण हो वही वीर रस की निष्पत्ति समझनी चाहिए। इसका स्थायी भाव उत्साह है और उत्साह-प्रदर्शन की कही कोई परिधि नही बाँधी जा सकती अस्तु इस रस के अनेकानेक भेद सभव है जो मानव के गुण, कर्म और स्वभाव से साधारणत सम्बद्ध हो जावेगे। शौर्य की प्रच्छन्न शक्ति ही मानव को विविध भूमिकाओ मे उत्साह से अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती रहेगी।

वीर रस प्रारभिक चार रसो मे से एक है। इसी से कालातर मे अद्भुत रस का विकास हुआ है। इसका देवता महेन्द्र है और वर्ण गौर है।

आलम्बन–शत्रु, दीन, याचक, तीर्थ, पर्व आदि।

उद्दीपन–शत्रु का शौर्य, याचक की दीन दशा आदि।

अनुभाव–रोमाच, गर्वभरी वाणी, आदर-सत्कार, दया के शब्द आदि।

सचारी–गर्व, धृति, स्मृति, दया, हर्ष, मति, असूया, आवेग आदि।

कुछ आचार्यो का मत है कि 'वीर' पद का प्रयोग युद्धवीर रस मे ही होना चाहिए परन्तु कविराज विश्वनाथ[1] और पडितराज जगन्नाथ[2] ने इसके चार भेद–१ युद्धवीर, २ धर्मवीर, ३ दयावीर और ४ दानवीर माने है क्योकि साहित्य मे उन्होने इन प्रकारो के उदाहरण प्राप्त किये थे। इन चारो भेदो मे सबका स्थायी भाव तो उत्साह ही है परन्तु इनके आलबन, उद्दीपन, अनुभाव और सचारी पृथक-पृथक् होते है।

इस रस के चार भेद अवश्य किये गये है परन्तु किसी भी जाति के साहित्य मे दान, धर्म और दया के उत्साहो की अपेक्षा शौर्य का उत्साह अधिक पाया जाता है क्योकि आये दिन ही तो युद्ध लगे रहते है और इसीलिए युद्धवीर रसात्मक रचनाओ का परिमाण अधिक प्राप्त होता है। दानी दधीच, कर्ण आदि, धर्मवान युधिष्ठिर, भरत आदि, दयावान शिवि आदि उँगलियो पर ही गिने जा सकते है।

भारत के राजनैतिक क्षितिज पर सन् १९२१ मे महात्मा गाधी के आविर्भाव से उनकी जीवनचर्या, अहिंसक रीति-नीति एव सत्याग्रह आन्दोलन से प्रभावित होकर भारत के अनेक नागरिक अपने देश के त्राण हेतु उनके चरण चिन्हों पर चलने के लिए प्रेरित हुए। और माँ भारती को पराधीनता की शृखलाये तोडने के लिए उठे हुए इन सत्याग्रही वीरो के चरणो ने भारत के भावुक हृदयो को भावना की नवीन गति प्रदान की। फिर क्या था इस बलिदानी और उसके दृढ अनुयायियो के उत्सर्ग की रूपरेखा के शब्द-चित्र काव्य मे साकार हुए। फलस्वरूप साहित्य के क्षेत्र मे वीर रस का एक नया भेद देखने मे आया। आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल को इस नवीन विद्या को सागोपाग विधि से लक्ष्य करने का श्रेय है। उन्होने 'पचम विशिख' नाम से अपने 'काव्यचर्चा' नामक ग्रन्थ मे पृ० १४७ पर वीर रस की इस नई प्रणाली का 'सहिष्णु बलिदान वीर' नाम से इस प्रकार विवेचन किया है–"यह प्रायः सभी कोटियों के सिद्ध सचारियो से मिलता-जुलता हुआ भी भिन्न है और है अनोखा।

---

१. साहित्यदर्पण, पृ० ९०

२. रसगंगाधर, पृ० ६३-६८

इसका यह अनोखापन इसे प्राप्त हुआ है इसकी परम सात्विक चेतना मे, जिसमे न स्थान है प्रतिशोध के लिए, न परपीडन के लिए, वरन् जिसका एक मात्र लक्ष्य है परिशोध और सत्यरक्षा। इसमे वीरोत्साह की सात्विक अभिव्यक्ति जिस सफलता के साथ साकार हो उठती है और सार्थक होती है उतनी कदाचित् अन्यत्र नही। इसीलिए यदि इस नवीन अग को चिर प्रतिष्ठित वीर की अगपूर्ति कहा जाय तो यह उचित ही होगा।''

युद्धवीर–

आलम्बन–शत्रु।

उद्दीपन–शत्रु का पराक्रम।

अनुभाव–गर्वसूचक वाक्य, रोमाच आदि।

सचारी–धृति, स्मृति, गर्व, तर्क, हर्ष, आवेग, औत्सुक्य, असूया आदि।

(१) गगा राजरानी को सुभट अभिमानी भट,
भारत के वंश में न भीषम कहाऊँ मैं।
जो पै सररेट औ दपेट रथ पारथ कौ,
लोकालोक परबत कै पौर न बहाऊँ मैं।
'मित्र जू' सुकवि रनधीर वीर झूमै खरे,
कीन्ही यह पैज ताहि सब को सुनाऊँ मैं।
कहौं हौ पुकारि ललकारि महाभारत मैं,
आज हरि हाथ जो न सस्त्र को गहाऊँ मैं॥

इसमे श्रीकृष्ण और अर्जुन आलम्बन है। श्रीकृष्ण की यह प्रतिज्ञा कि वे शस्त्र न उठावेगे उद्दीपन है। भीष्म के वाक्य अनुभाव है। गर्व, स्मृति, धृति आदि सचारी है।

सोहै अत्र ओढ़े जे न छोड़े सीस संगर की,
लंगर लँगूर उच्च ओज के अतंका में।
कहै पदमाकर त्यों हुंकरत फुंकरत,
फैलत फलात फाल बाँधत फलंका में॥
आगे रघुबीर कै समीर के तनै के सग,
तारी दै तड़ाक तड़ातड़ के तमका में।
संका दै दसानन को डंका दै सबका वीर,
डका दै बिजै को कपि कूदि पर्‌यौ लका में॥

इसमे दशानन आलम्बन है, उसका दुर्भेद्य दुर्ग लका उद्दीपन है, तडातड ताली बजाना अनुभाव है। गर्व, धृति आदि सचारी है।

शृगार रस मे शेष रसो को समाहित करनेवाले केशव के युद्ध वीर रस के उदाहरण भी देखिये–

गति गजराज साजि देह की दिपति बाजि,
हाव रथ भाव पत्ति राजि चली चाल सो।
केसोदास मदहास असि कुच भट भिरे,
भेट भए प्रतिभट भाले नखजाल सो।
लाज साजि कुलकानि-सोच पोच भय भानि,
भौंहै धनु तानि बान लोचन बिसाल सो।
प्रेम को कवच कसि साहस सहायक लै,
जीत्यो रति-रन आज मदन गुपाल सो॥
—राधिका जू को वीर रस

धर्मवीर—

आलम्बन—महाभारत, रामायण, मनुस्मृति, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थ।
उद्दीपन—धर्मग्रन्थो का धार्मिक इतिहास और फलस्तुति।
अनुभाव—धर्माचरण, धर्म हेतु कष्ट सहना आदि।
संचारी—धृति, मति, विबोध आदि।

१— और जो टेक धरी मन माँहि न छाँड़ि हौं कोऊ करौ बहुतेरौ।
धाक यही है युधिष्ठिर की धन-धाम तजौं पै न बोलत फेरौ।
मातु सहोदर औ सुत नारि जु सत्य बिना तिहिं होय न बेरौ।
हाथी तुरगम औ वसुधा बस जीवहु धर्म के काज है मेरौ।

इसमे युधिष्ठिर का धर्म विषयक दृढ उत्साह स्थायी है। उनके वाक्य अनुभाव है तथा गर्व, हर्ष, धृति और मति संचारी है।

२— तृन के समान धन-धाम राज त्याग करि,
पाल्यौ पितु बचन जो जानत जनैया है।
कहै पदमाकर विवेक ही को बानो बीच,
साँचो सत्यधीर धीर धीरज धरैया है।
सुमृति पुरान वेद आगम कह्यो जो पंथ,
आचरत सोई सुद्ध करम करैया है।
मोद-मति-मन्दर पुरन्दर मही को धन्य,
धरम धुरन्धर हमारो रघुरैया है॥

इसमे पिता राजा दशरथ के वचन आलम्बन है। राम द्वारा तृण सदृश सारा राज-पाट-वैभव त्याग देना अनुभाव है। हर्ष, मति और धृति सचारी हैं।

दयावीर—

आलम्बन—दया का पात्र या दयनीय व्यक्ति।
उद्दीपन—दया के पात्र की करुण अवस्था।
अनुभाव—दया पात्र से सात्वना के वाक्य कहना आदि।

सचारी—हर्ष, मति, धृति आदि ।

१— **पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुत ही को नरायन ।**
त्यो पदमाकर लात लगे पर विप्रहु के पग चौगुने चायन ।
को अस दीनदयाल भयो दशरत्थ के लाल से सूधे सुभायन ।
दौरे गयद उबारिबे को प्रभु वाहन छाँड़ि उपाहने पायन ॥

इस छन्द मे गयद दया का पात्र होने से आलम्बन है, उसकी दशा उद्दीपन है, उसकी रक्षा हेतु दौड पडना अनुभाव है तथा धृति, आवेग, हर्ष आदि सचारी है ।

२— **देखत मेरे को जीव हनै सुनि कै धुनि कोस हजार तें धाऊँ ।**
और को दुख न देखि सकौं जिहि भाँति छुटै तिहि भाँति छुटाऊँ
दीनदयाल है छत्रि को धर्म तहूँ सिवि हौं जग व्याधि नसाऊँ ।
तू जनि सोचै कपोत के पोतक आपनी देह दै तोहि बचाऊँ ॥

यहाँ कबूतर आलम्बन है, उसकी दयनीय दशा उद्दीपन है, शरणदाता दयावीर राजा शिवि के वाक्य कि अपनी देह देकर भी तेरी रक्षा करूँगा अनुभाव है । हर्ष, धैर्य, मति आदि सचारी है ।

दानवीर—

आलम्बन—दान योग्य पात्र, याचक, पर्व, तीर्थस्थान आदि ।

उद्दीपन—दानपात्र द्वारा की गई प्रशसा, अन्य दाताओ के दान आदि ।

अनुभाव—याचक का आदर-सत्कार, अपनी दान करने की शक्ति की प्रशसा आदि ।

सचारी—हर्ष, गर्व, मति आदि ।

१— **मुझ कर्ण का करतव्य दृढ़ है मागने आये जिसे ।**
निज हाथ से झट काट अपना शीश भी देना इसे ।
बस, क्या हुआ फिर अधिक, घर पर आ गया अतिथी विसे ।
हूँ दे रहा कुण्डल तथा तन त्राण ही अपना इसे ॥

इस छन्द मे इन्द्र आलम्बन है, उसके द्वारा कर्ण के दान की प्रशसा उद्दीपन है, कर्ण द्वारा कवच कुण्डल दान अनुभाव है और स्मृति सचारी है ।

२— **सम्पत्ति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि ,**
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना ।
कहै पदमाकर सु हेम हय हाथिन के ,
हलके हजारन के बितर विचारै ना ।
दीन्हे गज बकस महीप रघुनाथ राव ,
यह गज धोखे कहूँ काहू देय डारै ना ।
याही डर गिरिजा गजानन कौं गोय रही ,
गिरि तें गरै तो निज गोद ते उतारै ना ॥

इसमे दान वीरता की भरपूर व्यजना है और राजा रघुनाथ राव के दानीपन की प्रशसा है परन्तु विचारणीय है कि इसमे राज-विषयक रति भाव का प्राधान्य है जिससे उत्साह अग बन गया है अस्तु यह प्रकरण दानवीर का नहीं सिद्ध होता।

सहिष्णु बलिदान वीर–

आलम्बन–आततायी उत्पीडक।

उद्दीपन–आर्तनाद और कर्तव्यपालन की दृढ़ चेतना।

अनुभाव–मुख-मुद्रा पर दृढ सकल्प की स्पष्ट रेखा और आत्मोत्सर्ग की स्पष्ट घोषणा।

सचारी–सात्विक गर्व, आर्त सवेदन और पीड़क सवेदन।

इसका व्रती महा निर्भय है जुल्मों पर वह हँसता हैं।
तपे हुए सोने सा दिन दिन उसका तेज दमकता है।
उसे सताता जो उसको वह गले लगा करता है प्यार।
सत्याग्रह ही एक मात्र है दीन निर्बलों का हथियार॥

–माधव शुक्ल

निर्दिष्ट छन्द मे यद्यपि आलम्बन का स्पष्ट उल्लेख नही है किन्तु साधारणतः ही हमे ध्वनि मिल जाती है कि वह भारतवासियो का उत्पीडक सात समुद्र-पार से आने वाला अंग्रेज़ है। उसके किये हुए जुल्म उद्दीपन है। सत्याग्रही की निर्भयता, दमन पर हँसना, तपे सोने सदृश उसके तेज का दिन-दिन दमकना तथा शत्रु को प्यार से गले लगाना आदि अनुभाव है तथा धैर्य, मति आदि सचारी है।

अद्भुत रस

अद्भुत रस को प्रधानता देनेवाले नारायण पण्डित का तर्क है कि रस का सार ही चमत्कार है और उस चमत्कार का सार स्वरूप अद्भुत रस है तथा चमत्कार की विलक्षणता ही मन को अपनी ओर खीचती है। अभिनवगुप्त चमत्कार के तीन अर्थ करते है–

(१) प्रस्तुत वासना के साथ साधारणीकरण का मिलन होकर एक विशेष चेतना का जागरण (२) चमत्कार से अद्भुत अलौकिक प्रसन्नता और (३) चमत्कार द्वारा स्वय उत्पन्न कम्प रोमाच आदि शारीरिक विकार। अस्तु चमत्कार एक प्रकार की स्फूर्ति या प्रतिभा है। मम्मट चमत्कार से आस्वाद अर्थ लेते है। विश्वनाथ का कथन है कि रम मे चमत्कार प्राण रूप है वह चमत्कार विस्मय ही है।

अद्भुत मे लोकोत्तर भाव समन्वित रहता है क्योकि उसी से आश्चर्य का

जन्म होता है। जिज्ञासा विस्मय की सहज प्रवृत्ति है। गीता के ग्यारहवे अध्याय मे अर्जुन द्वारा विराट पुरुष का दर्शन महान् आश्चर्य का विषय है। वैष्णवो के अनुसार अद्भुत के चार भेद हैं—दृष्ट (देखने पर आश्चर्य), श्रुत (सुनने पर आश्चर्य), सकीर्तन (आश्चर्य रूप मे वर्णन-कथन) तथा अनुमित (अनुमान द्वारा आश्चर्य प्रकट किया जाना)।

अद्भुत रस को दो स्थितियो मे देखा जाता है। एक तो स्वय अद्भुत रस और दूसरे सभी रसो को अद्भुत कहा गया है—सर्वत्राप्यद्भुतो रस.।

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र मे ब्रह्मा को अद्भुत रस का देवता माना है (अद्भुतो ब्रह्मदैवतः) इसीलिए भावप्रकाशनकार ने कहा है—

अद्भुतस्याप्यधिष्ठानं नानाशिल्पात्मिकैव धीः।
ब्रह्मण· सेयमस्तीति सोऽयमस्याधिदैवतम्॥

परन्तु कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण मे गन्धर्व को अद्भुत रस का देवता मान लिया है। विश्वनाथ की इस मान्यता का आधार प्राचीन आलकारिक है जिन्होने अद्भुत को 'गन्धर्व दैवत्' कहा है। गन्धर्वों की चित्र-विचित्र प्रकृति का अनुशीलन करके ही प्रतीत होता है कि प्राचीन आलंकारिको ने गन्धर्व को अद्भुत रस का देवता कहा है और कविराज विश्वनाथ ने भी उसका समर्थन किया है। उन्होने 'महावीरचरित' मे लक्ष्मण के 'विस्मय' का निम्न अभिव्यजन उदाहरणस्वरूप दिया है—

दोर्दण्डांचितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्यत—
षट्ंकारध्वनिरार्यबालचरितं प्रस्तावनाडिण्डिम।
द्राक्पर्यस्तकपालसपुटमिलद्ब्रह्माण्डभाण्डोदर—
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति॥

(अर्थात्—ओह ! राम के भुजदण्डो पर चढ़े शकर के पिनाक के खण्ड-खण्ड होने से उत्पन्न यह धनुष्टकार निध्वान, बलराम के वीर्यावदानो का प्रस्तावक यह डिण्डिमध्वान, अपने प्रचण्ड आघात से ब्रह्माण्ड भांड को तोडता-फोडता किवा पुन: जोडने वाला यह भयकर निर्घात, ओह ! अभी भी नही शान्त हो रहा।)

पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने रसगगाधर मे अद्भुत रस का निम्न उदाहरण दिया है—

चराचरजगज्जाल—सदनं वदन तव।
गलद्गगनगाम्भीर्यं, वीक्ष्यास्मि हृतचेतना॥

अर्थात्—(भगवान् श्रीकृष्ण के विवृत मुख को किसी समय देखने पर यशोदा की उक्ति है)—जो स्थावर और जगम सम्पूर्ण ससार का निवासस्थान है और जिसके सम्मुख आकाश की गम्भीरता भी नष्ट हो जाती है, उस तेरे मुख को देखकर मेरा चैतन्य लुप्त हो गया है—आश्चर्य से मैं हृतबुद्धि हो गई हूँ।)

विचित्र वस्तु को देखने-सुनने से जब आश्चर्य पुष्ट होता है तब अद्भुत रस की अभिव्यजना होती है। इस रस का विकास वीर रस से हुआ है।

आलम्बन–अलौकिक व्यापार, अद्भुत वस्तु आदि।

उद्दीपन–विस्मयकारक वस्तु की विलक्षणता तथा अलौकिक घटना का आकस्मिक रूप मे घटित होना।

अनुभाव–आँखे फाडकर देखना, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, मुख पर हर्ष और घबडाहट आदि के चिन्ह आदि।

सचारी–जडता, दैन्य, आवेग, शका, चिन्ता, वितर्क, हर्ष, औस्तुक्य आदि।

स्थायी भाव–आश्चर्य या विस्मय।

देवता–चतुरानन ब्रह्मा।

वर्ण–पीत या पीला।

१–इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोरि कि आन विसेखा।
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँस दीन्ह मधुर मुसुकानी।

इसमे राम आलम्बन है, यहाँ-वहाँ बाल रूप मे राम को देखना उद्दीपन है; राम की माता का व्याकुल होना अनुभाव है, भय, शंका, वितर्क सचारी है।

२–ब्रज बछरा निज धाम करि फिरि व्रज लखि फिरि धाम।
फिरि इत लखि फिरि उत लखै ठगि विरचि तिहि ठाम॥

इसमे बछडे आलम्बन है, ब्रह्मा का उन्हे पुन. व्रज मे देखना उद्दीपन है, उनका अपने धाम और व्रज मे पुनः पुन: देखना अनुभाव है तथा स्मृति, वितर्क और स्तम्भ संचारी हैं।

३–सात दिन सात राति करि उतपात महा,
मारुत झकोरे तरु तोरै दीह दुख में।
कहै पदमाकर करी त्यो धूम धारन हूँ,
एते पै न कान्ह कहूँ आयो रोष-रुख में।
छोर छिगुनी के छत्र ऐसो गिरि छाइ राख्यो,
ताके तरै गाय गोप गोपी खरी सुख में।
देखि देखि मेघन की सैन अकुलानी, रह्यो,
सिन्धु में न पानी अरु पानी इंदुमुख में।

यहाँ गोवर्द्धन पर्वत को अपनी छिगुनी पर उठाये और उसके नीचे गोपी ग्वालबालो को आश्रय दिये हुये कृष्ण आलम्बन है। मेघो का गर्जन-तर्जन करके वर्षा करना और इससे कृष्ण का तनिक भी रोष मे न आना उद्दीपन है। गाय–गोपो आदि का सुख से खड़े होने के कारण रोष-क्षोभ आदि अनुभाव है तथा मेघो की व्याकुलता आदि सचारी है।

४–दुवन दुसासन दुकूल गह्यो दीनबधु,
दीन ह्वै के द्रुपद कुमारी यों पुकारी है।
छॉड़े पुरुषारथ कौ ठाढ़े पिय पारथ से,
भीम महाभीम ग्रीव नीचे को निहारी है।
अबर लौं अबर अमर कियो 'बसीधर',
भीषम करन द्रोन सीमा यों निहारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है कि,
सारी ही कि नारी है कि सारी है कि नारी है॥

यहाँ भीष्म आदि के हृदय मे द्रौपदी के चीर-हरण काल मे साडी के अबार पर अबार लगते देख कर अद्भुत रस की व्यजना हुई है।

५–बोलि उठे चकित सुरासुर जहाँ ही तहाँ,
हा हा यह चीर है की धीर वसुधा कौ है।
कहै रतनाकर कै अम्बर दिगम्बर कौ,
केधौं परपच कौ पसार विधिना कौ है।
कैधौं सेसनाग की असेस कचुली है यह,
कैधौं ढग गग की अभग महिमा कौ है।
कैधों द्रौपदी की करुना कौ बरुनालय है,
पारावार कैधों यह कान्ह की कृपा कौ है॥

इसमे द्रौपदी के बढते हुये चीर ने देवता और दानवो को विस्मय से भर दिया है।

रौद्र रस

शत्रु की चेष्टा, मानभग (अपमान), गुरुजनो की निन्दा, देश और धर्म के निरादर आदि से जहाँ प्रतिशोध लेने की भावना जागृत होती है वहाँ रौद्र रस प्रकट होता है। यह प्रारम्भिक चार रसो मे से एक है।

आलम्बन–शत्रु एवं उसका पक्ष आदि।

उद्दीपन–शत्रु द्वारा किये गये अनिष्ट कार्य, अपमान, अपकार, अविक्षेप, कटु शब्द आदि।

अनुभाव–नेत्रो व मुखमण्डल पर लालिमा, भृकुटि भग, दॉत किटकिटाना, अधरो का चबाना, आँखे तरेरना, कटु शब्दो का उच्चारण करना, गर्जन-ताडन, शस्त्रो का उठाना, आवेग, रोमाच, कप, अपने कार्यों की प्रशसा, प्रस्वेद आदि।

सचारी–उग्रता, अमर्ष, उद्वेग, मद, असूया, श्रम, स्मृति, आवेग आदि।

स्थायी भाव–क्रोध।

नवोच्छलित - यौवन-स्फुरदखर्वगर्वज्वरे,
मदीय गुरु कार्मुकं गलित साध्वसं वृश्चति ।
अयं पततु निर्दयं दलितदृप्त भूभृद्गल-
स्खलद्रुधिरघस्मरो मम परश्वधो भैरव ।।

(अर्थात्–उछलती हुई युवावस्था के कारण बढे हुए अत्यधिक अभिमान रूप ज्वर से युक्त किसी ने निर्भय होकर मेरे गुरु शिवजी के धनुष को तोड डाला है। अच्छा अब युद्ध मे काटे गये गर्वीले भूपो के गले से टपकते हुए शोणित को पीने वाला यह भयकर फरसा उसके ऊपर गिरे।)

वेणीसहार मे अश्वत्थामा का क्रोध इस प्रकार अभिव्यजित हुआ है–

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिद गुरुपातकं
मनुज पशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।
नरक रिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ।।

(अर्थात्–पाण्डव वीरो! कुरु प्रवीरो! अभी अभी देख लो कि कृष्ण, भीम, अर्जुन और उन उन निमर्य्याद, शस्त्रधारी नर पशुओ के खून, चर्बी और मास के लोथडो से, जिन्होने यह द्रोणवध रूप महापाप किया था, उस घोर पातक मे राय दी या इस कुकर्म के साथी बने, कैसे दिशाओ की बलि चढा देता हूँ।)

१– **भीम कहै प्यारी! सारी कौरवन नारिन कौं,**
रिक्त वेस-भूसा मुक्त-केसा करि डारौंगो ।
चण्ड भुज-दण्डन में प्रचण्ड या गदा कौं लै,
मण्डल भ्रमाय सिंहनाद कै प्रचारौंगो ।
जंघन के संग ही घमण्ड करि भंग जग,
दुष्ट दुरजोधन कौ वेगि ही पछारौंगो ।
रक्त सौं रँगे ही उन रक्त भए हाथन सौं,
खुले केस बाँधि तेरी बेनी कौ सम्हारौंगो ।।

यहाँ द्रौपदी का शोक विभोर होना आलम्बन है, दुर्योधन आदि द्वारा किये गये अपमान का स्मरण उद्दीपन है, भीम के वाक्य अनुभाव है और गर्व, स्मृति, उग्रता आदि सचारी है।

२– **श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्षोभ से जलने लगे ।**
सब शील अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे ।
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े ।
करते हुए यह घोषणा वे हो गए उठकर खड़े ।
उस काल मारे क्षोभ के तनु काँपने उनका लगा ।
मानो पवन के जोर से सोता हुआ अजगर जगा ।।

इसमे अभिमन्यु के वध पर कौरवो का हर्ष आलम्बन है; कृष्ण के पूर्व कथित वाक्य उद्दीपन है, अर्जुन के वाक्य अनुभाव हैं तथा अमर्ष, उग्रता, गर्व आदि सचारी है।

३— **अधम चब्ब गहि गब्ब अति, चहि रावन को काल ।**
दृग कराल मुख लाल करि, दौरेउ दसरथ लाल ॥

यहाँ रावण आलम्बन है, उसके कार्य उद्दीपन है, राम का लाल मुँह और आँखे अनुभाव हैं तथा गर्व, अमर्ष और उग्रता सचारी है। इस प्रकार रौद्र रस की पुष्टि हो गई है।

४— **लंका ते निकसि आए जुत्थन के जुत्थ लखि,**
कूद्यो वज्र अंग किटकिटी दै झपट्टि कै ।
सुनि सुनि गर्वित वचन दुष्ट पुष्टन के,
मुष्ट बाँधि उच्छलत सामने सपट्टि कै ।
'ग्वाल कवि' कहै महा मत्ते रत्ते अक्ष करि,
धावै जित्त तित्त परै वज्र सो लपट्टि कै ।
चब्बत अधर फेंकै पब्बत उतग तुंग,
दब्बत दनुज्ज के दलन हैं दपट्टि कै ॥

इसमे रावण का दल आलम्बन है, उसके गर्व भरे वाक्य उद्दीपन है, हनुमान का दाँत किटकिटाना, पर्वतो की चोटियो को फेकना आदि अनुभाव है तथा उग्रता, अमर्ष आदि सचारी है परन्तु रौद्र रस का परिपाक नही हुआ है क्योकि हनुमान जी के इस बीरत्व वर्णन मे देव-विषयक रति-भाव है।

५— **मातु पितहिं जनु सोच बस करसि महीप किसोर ।**
गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥

यहाँ शकर के धनुष की महिमा घटाने वाले राम और लक्ष्मण आलम्बन है, लक्ष्मण के कठोर उत्तर उद्दीपन है, परशुराम के वचन, मुँह पर क्रोध, फरसे की महिमा और उसे दिखाना अनुभाव है तथा उग्रता, असूया, मद आदि सचारी है।

करुण रस

वन्धु-विनाश, वन्धु वियोग, धर्म के अपघात, द्रव्यनाश, प्रेमपात्र के चिर वियोग आदि अनिष्ट से करुण रस की अभिव्यजना होती है।

आलम्बन—वन्धु-विनाश, प्रिय वियोग, पराभव आदि।

उद्दीपन—प्रिय वन्धु जनो का दाह कर्म, उनके निवासस्थान, चित्र, वस्त्राभूषण आदि का दृश्य, उनके प्रेम, यश तथा अन्यान्य कार्यो का श्रवण एद स्मरण आदि।

अनुभाव–रुदन, उच्छ्वास, छाती पीटना, भूमि-पतन, मूर्च्छा, प्रताप, देव-निन्दा, विवर्णता, कम्प, मुख सूखना, स्तम्भ आदि ।

सचारी भाव–निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, प्रेम, दैन्य, विषाद, जडता, उन्माद, चिन्ता आदि ।

स्थायी भाव–शोक ।

देवता–यम ।

वर्ण–कपोत ।

करुण रस का विकास रौद्र रस से हुआ है । यह ध्यान मे रखना चाहिए कि एक ओर यह जहाँ शृ गार के विप्रलम्भ से सचारी रूप मे सबद्ध है और वियोग की चरमावस्था मे सहायक है तथा ऐसे असह्य वातावरण का चित्रण करता है कि उसकी किचित् ही वृद्धि मे रति का स्थान शोक ले सकता है वहाँ दूसरी ओर वह विनाश से सम्बधित होने के कारण अपने मूलाधार रौद्र से सलग्न है ही ।

राम के वनवास से शोकाकुल दशरथ की दैवनिंदा देखिए–

विपिने क्व जटानिबन्धन तव चेदं क्व मनोहर वपु: ।
अनयोर्घटना विधे· स्फुट ननु खगेन शिरीषकर्त्तनम् ।।

(अर्थात्–कहाँ तो तुम्हारा यह कोमल शरीर और कहाँ तुम्हारा वन मे जटा-जूट का कठोर बन्धन । इन दोनो का मेल विधि विडबना है । यह तो ऐसा है जैसे तलवार से शिरीष के फूल को काटना ।)

महाभारत के स्त्री पर्व मे करुण रस का परिपोष भलीभाँति देखा जा सकता है । भवभूति का उत्तररामचरित तो करुण रस को अगी बना कर निर्मित हुआ है ।

पडितराज जगन्नाथ करुण रस का निम्न उदाहरण देते है–

अपहाय सकल बान्धव-चिन्तामुद्वास्य गुरुकुल प्रणयम् ।
हा तनय ! विनय शालिन् ! कथमिव परलोकपथिकोऽभू ।।

(अर्थात्–हाय ! अति विनीत पुत्र ! तू सब बन्धुओ की चिन्ता त्याग कर और गुरुकुल के प्रेम को भी बिसारकर कैसे परलोक का पथिक हो गया ।)

करुण रस के चार भेद किये गये है–वन्धु विनष्टजन्य, वन्धु वियोगजन्य, धन वैभव विनाशजन्य तथा पराभव जनित ।

१– **जो भूरि भाग्य भरी विदित थी अनुपमेय सुहागिनी ,**
हे हृदय वल्लभ ! हूँ वही अब मैं महा हतभागिनी ।
जो साथिनी होकर तुम्हारी थी अतीव सनाथिनी ,
है अब उसी मुझ सी जगत में और कौन अनाथिनी ।

यहाँ अभिमन्यु का मृत शरीर आलम्बन है, उसके वीर कार्यों का स्मरण उद्दीपन है, उत्तरा का क्रन्दन अनुभाव है तथा स्मृति, दैन्य, चिन्ता आदि सचारी है।

२– भीषम कौं प्रेरौं कर्न हूँ कौ मुख हेरौं हाय,
सकल सभा की ओर दीन दृग फेरौं मैं।
कहै रत्नाकर त्यो अन्ध हूँ के आगे रोइ,
खोइ दीठि चाहति अनीठहिं निबेरौं मैं।
हारी जदुनाथ जदुनाथ हूँ पुकारि नाथ,
हाथ दाबि कढ़त करेजहिं दरेरौं मैं।
देखि रजपूती की सकल करतूति अब,
एक बार बहुरि गुपाल कहि टेरौं मैं।

यहाँ द्रौपदी की उक्ति मे करुण रस व्यंजित हुआ है।

३– वह कौन रोता है वहाँ–
इतिहास के अध्याय पर,
जिसमें लिखा है, नौजवानो के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बूढ़े कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का,
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है,
जो आप तो लड़ता नहीं,
कटवा किशोरों को मगर,
आश्वस्त होकर सोचता,
'शोणित बहा, लेकिन गई बच लाज सारे देश की।
–कुरुक्षेत्र (दिनकर)

इसमे किशोरो का कटना और उनका शोणित बहना आलम्बन है; 'नौजवानो के लहू का मोल है' वाक्य उद्दीपन है; नेपथ्य मे रुदन अनुभाव है तथा स्मृति, चिन्ता और वितर्क सचारी है।

४– अन्दर ते निकसीं न मंदिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पायँ जाती हैं।
हवा हू न लागती ते हवा तें बिहाल भईं,
लाखन की भीर मै सँभारती न छाती हैं।
भूषण भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हायदारी चीर फारि मन झुंझलाती हैं।
ऐसी परी नरम हरम बादशाहन की,
नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं।

यहाँ करुण की व्यजना होकर भी करुण रस की पुष्टि नही हो सकी है क्योकि प्रधानत: शिवाजी की प्रशंसा है अस्तु राजा-विषयक रति-भाव है

और यवन महिलाओ की करुणापूर्ण दशा उसका अग हो जाने के कारण सचारी है ।

करुण रस मे प्रिय से चिर वियोग हो जाता है और करुण विप्रलम्भ रस मे मरणातक दशा की प्राप्ति पर भी मृत्यु नही होती तथा प्रिय के मिलन की सभावना होने से आशा लगी रहती है–यही इन दोनो मे अन्तर है ।

वीभत्स रस

वीभत्स रस यद्यपि प्रारभिक चार रसो मे से एक है परन्तु नव रसो के अन्तर्गत इसकी गणना अनेक विद्वान् इस तर्क के आधार पर नही करते कि यह किसी काव्य नाटक आदि मे प्रधान या अगी नही हुआ है । वैसे है तो यह सत्य परन्तु यदि यह सम्भव करके दिखाया भी जाता तो उचित न होता। जो भी हो इसके प्रमाण थोडे हो वा बहुत इससे इनकार नही किया जा सकता कि अनेक सचारियो की अपेक्षा इस रस का आस्वादन बडी ही तीव्रता और उत्कटता से होता है जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती ।

श्मशान, शव, रक्त, मास, मज्जा, हड्डी आदि का वर्णन–विवेचन ही वीभत्स रस के लिए केवल वाछित नही है वरन् कोई भी वस्तु जिसके देखने, सुनने, कल्पना करने, स्पर्श करने आदि से जुगुप्सा प्रसूत होकर इस रस को उत्पन्न कर सकती है । शारीरिक जुगुप्सा ही मानसिक जुगुप्सा को परिवर्द्धित करती है । जुगुप्सा दो प्रकार की होती है–१–विवेकजा (जिसमे स्त्री-पुत्र, सपत्ति को घृणा की दृष्टि से देखने पर विराग का प्रवर्द्धन होता है) और प्रायिकी (जिसमे घृणित वस्तुओ का उल्लेख होता है) । साहित्य मे अधिकाश उदाहरण प्रायिकी जुगुप्सा के ही पाये जाते है ।

घृणित वस्तु के देखने सुनने से जहाँ घृणा या जुगुप्सा का परिपाक होता है वहाँ वीभत्स रस की पुष्टि होती है ।

आलम्बन–दुर्गंधित मास, रुधिर, चर्बी, वमन, श्मशान, शव, मलमूत्र, खखार, दुर्गंधित द्रव्य आदि घृणोत्पादक वस्तुये और विचार ।

उद्दीपन–मासादि मे कीडे पड जाने का दृश्य आदि, गीधो का मास नोचना, मासभक्षी जीवो का मासार्थ युद्ध, कुत्सित तथा विकृत रग-रूप आदि ।

अनुभाव–थूकना, मुँह फेर लेना, आँखे बन्द कर लेना, स्वय वमन करने लगना आदि ।

सचारी–मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि, मरण, जडता, चिन्ता, उन्माद, निर्वेद, ग्लानि, दैन्य आदि ।

स्थायीभाव–जुगुप्सा ।

देवता—महाकाल।

वर्ण—नील।

वीभत्स के अधिदेवता को महाकाल मानने का आधार यह है—

वीभत्सस्याधिष्ठानं महाकालोऽसृगात्मकः।
प्रलयेऽस्य तवस्तीति सोऽयमस्याधि देवता।

पडितराज जगन्नाथ ने अपने रसगगाधर मे वीभत्स का निम्न उदाहरण श्मशान के चित्रण मे दिया है।

नखैर्विदारितान्त्राणा शवानां पूयशोणितम्।
आननेष्वनुलिम्पन्ति हृष्टा वेतालयोषितः॥

(अर्थात्—हर्षयुक्त वैतालो की स्त्रियाँ नखो से मुरदो की अँतडियो को फाड़कर मवाद और रुधिर को अपने मुख पर लेप रही है।)

भवभूति ने अपने मालतीमाधव नाटक मे माधव की जुगुप्सा निम्न दृश्य से अभिव्यजित कराई है—

उत्कृत्यो कृत्य कृन्तिं प्रथममथ पृथूच्छोथभूयांसि मांसा—
न्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्डाद्यवयव सुलभान्युग्रपूती निजग्धवा।
अति पर्यस्त नेत्र. प्रकटित दशनः प्रेतरक करंका—
दकस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति॥

(अर्थात्—कैसा घिनौना दृश्य है। एक महादरिद्र प्रेत अपनी जाँघो पर मुर्दे को लिटाये है, उसकी हड्डियो से चमडे को उधेड रहा है, उसके कन्धे, चूतड, पीठ, पिडली आदि मे चिपके बुरी तरह दुर्गंधि करने वाले, फूले सड़े मास को खाता जा रहा है। इस डर से कि कही दूसरा प्रेत न आ धमके, चारो ओर आँखे फाड़-फाड कर देख रहा है, दॉत किटकिटा रहा है और अभी तो उसने ऐसा किया कि क्या कहा जाय। कही-कही हड्डियो की जोड मे घँसे मास को भी बड़ी प्रसन्नता से खाता दिखाई पड रहा है।)

हिन्दी साहित्य मे वीभत्स रस के उदाहरणो की कमी नही है। देखिये—

अति ताप तें अस्थि पसीजन सौं,
कढ़ै मेद की बूंदन जो टपकावें।
तिन धूम-धुमारिनु लोथिनि कौं,
ये पिसाच चितानु सौं खैंचि कै खावें।
टिलियाइ खस्यौ तचि मास सबै,
जिहि सौं जुग संधिहु भिन्न लखावें।
अस जंघनली-गत मज्जा मिली,
सद पी चरबी परबी-सी मनावें॥

यहाँ आधे जले हुए शव आलम्बन है, हड्डियो से मेद टपकाना, पिशाचो

का चरबी पीना आदि उद्दीपन है, इस दृश्य का देखना अनुभाव है तथा मोह आदि सचारी है।

२– **आवत गलानि जौ बखान करौं ज्यादा वह**
मादा-मल-मूत औ मज्जा की, सलीती है।
कहै पदमाकर जरा तो जागि भीजी तब,
छीजो दिन-रैन जैसे रैनु ही की भीती है।
सीतापति राम में सनेह यदि पूरो कियो,
तौ-तौ दिव्य देह जग-जातना सौं जीती है।
रीती राम-नाम तें रही जौ बिना काम वह,
खारिज खराब हाल खाल की खलीती है।।

यहाँ वीभत्सात्मक वर्णन होने पर भी वीभत्स रस का परिपाक नही होने पाया है। शरीर की वीभत्सता का चित्रण करके राम की भक्ति को प्रधानता देने के कारण जुगुप्सा भाव स्थायी न होकर सचारी हो गया है अस्तु देवता विषयक रतिभाव की पुष्टि ही होती है।

३– **चटकत बाँस कहूँ जरत दिखात चिता,**
मज्जा मेंद बास मिल्यो गधवाह गहिए।
काहू थल आँत-पाँत दग्ध देह की दिखात,
नील-पील ज्वाल पुंज भाँति बहु लहिए।
केतिक कराल गीध चील माल जाल रूप,
मांसहारी जीवन जमात लखि घिनिए।
ऐसे समसान माहि शान्त हेतु शब्द यही,
राम राम सत्य है, श्री राम नाम कहिए।।

इस छन्द के अन्तिम चरण मे शान्त रस के विभावो का उल्लेख है परन्तु उसके अनुभावो और सचारियो का नही इसलिए इस प्रकार के वर्णनो को जुगुप्सा भाव को स्थायी करने के कारण वीभत्स रस के अन्तर्गत ही रखना चाहिए।

भयानक रस

किसी शक्तिशाली का अपराध करने पर या भयकर वस्तु को देखने से इस रस की निष्पत्ति होती।

आलम्बन–व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु, सुनसान स्थल, श्मशान, वन, शत्रु, भूत, प्रेत आदि।

उद्दीपन–असहाय होना, शत्रु या हिंसक जीव की भयानक चेष्टा, निस्तब्धता, निर्जनता आदि।

अनुभाव–स्वेद, कप, रोमाच, रुदन, कठावरोध आदि ।

संचारी–जुगुप्सा, शका, ग्लानि, आवेग, चिन्ता, मूर्च्छा, अपस्मार, त्रास, दीनता, मोह, आवेग आदि ।

स्थायीभाव–भय ।

देवता–काल

वर्ण–कृष्ण या काला ।

काल का नाम ही भय का कपन उत्पन्न करने के लिए यथेष्ट है और काला वर्ण उस भय को और भी अधिक तीव्र करनेवाला होता है ।

भयानक रस का विकास स्थायी भाव जुगुप्सा वाले वीभत्स रस से हुआ है । जुगुप्साकारक दृश्य जहाँ एक ओर घृणा का भाव पैदा करते है वहाँ दूसरी ओर भय को भी जन्म देते है । जैसे श्मशान का दृश्य यदि घृणा का अभिव्यजक है तो साथ ही भय का भी । यो तो घृणा के लिए कही भी परिस्थितियाँ और वातावरण हो सकते है परन्तु युद्धभूमि मे तो इसके लिए अनिवार्य साधन सुलभ हो जाते है । युद्ध की समाप्ति पर युद्वस्थल घायलों की चीख पुकार, कौये, शृगाल, गिद्ध आदि द्वारा शवो को नोच झपट कर खाना, मास मज्जा हड्डियो आदि का बिखरना, रक्त की धारा बहना आदि दृश्य जुगुप्सा उत्पन्न करने वाले होते है ।

भयकर परिस्थिति मानवो को ही नही इतर प्राणियो को भी त्रस्त और जड़ बना देनेवाली होती है । बिल्ली के आगे चूहे की, भेडिये के सामने बकरी की, चीते के सामने कुत्ते की, तेदुए के सामने बन्दर की, लोमडी के सामने बतख की दशाओ आदि से हम मे से अधिकाश परिचित है । भय की स्थिति मे किसी भी बडी हानि यहाँ तक कि प्राण गँवाने तक की विपद् रहती है इसी से उसका प्रभाव हृदय पर अधिक पडता है ।

भय के तीन प्रकार है–(१) वास्तविक–जैमे डाकू आदि के कारण, (२) कल्पित–जैसे भूत प्रेत आदि से और (३) भ्रम जनित जैसे सर्प आदि से । दण्ड, लोकापवाद और आन्दोलन भी भय उत्पन्न करने मे समर्थ होते है । क्रोध की भाँति भय भी उपयोगी और अनुपयोगी होता है । जिसमे जितना अधिक साहस और शौर्य होगा वह उतना ही निर्भय और निडर सिद्ध होगा । आजकल भयकर अपराधों मे वृद्धि का कारण ईश्वरीय और राजदड के प्रति उपेक्षा है ।

पडितराज जगन्नाथ ने भयानक रस का निम्न उदाहरण दिया है–

श्येनमम्बरतलादुपागतं शुष्यदाननविलोविलोकयन् ।
कम्पमानतनुराकुलेक्षणः, स्पन्दितुं नहि शाक लावकः ।।

(अर्थात्–विवश लावक ने जब गगन तल से झपटते हुए बाज को देखा तभी

उसका मुँह सूख गया, देह काँपने लगी, आँखे आकुल हो गईं, इस तरह वह हिल न सका ।)

१– **कर्तव्य अपना इस समय होता न मुझको ज्ञात है,**
कुरुराज चिन्ताग्रस्त मेरा जल रहा सब गात है।
अतएव मुझको अभय देकर आप रक्षित कीजिए,
या पार्थ-प्रण करने विफल अन्यत्र जाने दीजिए ।।

इसमे अभिमन्यु के वध का अपराध आलम्बन है और अर्जुन की सूर्यास्त तक जयद्रथ का वध करने की प्रतिज्ञा उद्दीपन है, जयद्रथ का स्तब्ध होना, गात्र जलना आदि अनुभाव है तथा त्रास और मोह आदि सचारी है ।

एक ओर अजगरहिं लखि एक ओर मृगराय।
विकल बटोही बीच ही पर्‌यो मूरछा खाय ।।

इसमे अजगर और सिंह आलम्बन है, उनकी भयभीत करनेवाली आकृतियाँ तथा चेष्टाये उद्दीपन है, पथिक की व्याकुलता और मूर्च्छा अनुभाव है तथा स्वेद, कम्प, रोमांच, आवेग आदि सचारी है ।

शृंगार रस मे अन्य रसो को घटाने वाले केशव की रसिकप्रिया से 'श्रीकृष्ण को भयानक रस' का उदाहरण लीजिए—

रोष में रस के बोल विष तें सरस होत
जानै सो प्रबल पित्त दाखें जिन चाखी हैं ।
'केसोदास' दुख दीये लायक भयेऽब तुम
आज लगि जाकी जी में आँखें अभिलाषी हैं ।
सूधे ह्वै सुधारिबै कौं आये सिखवन मोहिं,
सूधे हूँ में सूधी बातें मो सो उन भाखी हैं ।
ऐसे में हौं कैसें जाऊँ दुरि हूँ धौं देखौ जाइ,
काम की कमान सी चढाइ भौंह राखी हैं ।।

४– **कत्ता के कसैया महावीर सिवराज तेरी,**
रूम के चकत्ता लौं हूँ सका सरसात है ।
कासमीर काबुल कलिग कलकत्ता अरु,
कुल करनाटक की हिम्मत हेरात है ।
विकट विराट वेग व्याकुल बलख वीर,
बारहो बिलाइत सकल बिललात है ।
तेरी धाक धुंधरि धरा में अरु धाम धाम,
अन्धाधुन्ध आँधी सी हमेस हहरात है ।।

यद्यपि यहाँ भय की प्रतीति होती है परन्तु वह सचारी होकर ही रह गया है क्योकि इसमे राजा शिवाजी विषयक रति भाव की प्रधानता है ।

५– कोल कच्छ देव फँत फैलत फनी के मुख,
धँसि गई धरा धराधर उर धरके।
हरके रहे न भानु भरके तुरग कहूँ,
भागि चले वाहन विरंचि हरि हर के।
झंपति गगन झुकि कपित भुवन हल,
कपित दुवन गुन खंचे रघुबर के।
दंती दबे आसन सकाने पाक सासन,
न कोऊ थिर आसन सरासन के करके॥

इसमे शकर के पिनाक के टूटने का शब्द ही आलम्बन है; धरती का धसकना पर्वतो का काँपना आदि उद्दीपन है; इन्द्र और दिग्गजो का विचलित होना अनुभाव तथा त्रास, दैन्य, शका आदि सचारी है।

शान्त-रस

तत्वज्ञान अथवा संसार से वैराग्य होने पर शान्त रस की उत्पत्ति होती है। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र मे आठ रसो के उपरान्त नवे शान्त रस का उल्लेख किया है और शम को उसका स्थायी भाव बताया है। किंतु कुछ विचारको के विमर्श से शान्त रस का स्थायी भाव शम किसी के भी मन मे स्थायी नही कर सकता, वह रस की कोटि तक नही पहुँचता, भाव की कोटि तक ही रह जाता है। अनुश्रुति है कि माता गाधारी ने अपने पुत्रो के शव एक के ऊपर एक रखे और फिर उन पर चढकर अमरूद तोडकर खाया–यह किस प्रकार का शोक तथा किस प्रकार का निर्वेद था?

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य को शान्त का स्थायी भाव माना है और कहा है कि तत्वज्ञान से जो निर्वेद होता है वह स्थायी भाव है तथा इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति के कारण जो निर्वेद होता है वह सचारी है।

साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथ का कथन है कि जिसमे न दु ख हो, न सुख हो, न कोई चिन्ता हो, न राग–द्वेष हो और न कोई इच्छा ही हो उसे शान्त रस कहते है–

न यत्र दुख. न सुखं न चिन्ता न द्वेष रागौ न च काचिदिच्छा।
रस स शान्त: कथितो मुनिन्द्रै: सर्वेषु भावेषु शम प्रधान.॥

यहाँ शका हो सकती है कि यदि शात रस का यह स्वरूप मान लिया जाय तो शान्त रस की स्थिति मोक्ष दशा मे ही हो सकेगी और उस दशा मे विभावादि का ज्ञान होना असम्भव हो जायगा फिर विभाव, अनुभाव, सचारी आदि के कारण शान्त रस की सिद्धि किस प्रकार मानी जा सकती है। इसका समाधान यह किया गया है कि वियुक्त और युक्तवियुक्त दशा मे जो शम रहता

है वही स्थायी भाव होकर शान्त रस मे परिणत हो जाता है और उस अवस्था मे विभावादि का ज्ञान होना भी सम्भव है। यहाँ मोक्ष दशा या निर्विकल्प समाधि का शम अभीष्ट नही है। शान्त रस मे जो सुख का अभाव कहा गया है वह विषयजन्य सुख का अभाव है न कि सभी प्रकार के सुखो का अभाव क्योकि ससार मे जो विषय जन्य सुख तथा स्वर्गीय महासुख है वे सब मिलकर भी तृष्णाक्षय (शान्ति) से उत्पन्न होने वाले सुखो के सोलहवे अश के समान भी नही हो सकते–

यच्च काम सुखं लोके, यच्च दिव्य महत्सुखम्।
तृष्णाक्षय सुखस्यैतै नहित: षोडशीं कलाम्॥

अतएव शम अवस्था मे सुख अवश्य होता है और वह अनिर्वचनीय होता है।

आचार्य भरत ने आठ रसो के देवता और वर्ण तो बताये किन्तु शान्त रस के नही। कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण मे श्री नारायण को शान्त का देवता तथा कुन्दश्वेत या चन्द्रश्वेत को उसका वर्ण बताया है–

शान्त शमस्थायिभाव उत्तम प्रकृतिर्मत।
कुन्देन्दु सुन्दरच्छाय: श्री नारायण दैवत॥ ३–२४६

आलम्बन–ससार की असारता क्षणभगुरता का ज्ञान अथवा ईश्वर चिन्तन आदि।

उद्दीपन–सत्सग, तीर्थाटन, पुराण, धर्मशास्त्र व दर्शन शास्त्र का अध्ययन, एकान्त वन सासारिक झझट, ऋषियो के आश्रम आदि।

अनुभाव–रोमाच, ससार भीरुता, अध्यात्मशास्त्र का चिन्तन आदि।

सचारी–निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, उद्वेग, ग्लानि, दैन्य, असूया, जडता आदि।

स्थायी भाव–निर्वेद या शम।

कविराज विश्वनाथ ने शान्त रस का निम्न उदाहरण दिया है–

रथ्यान्तश्चरतस्तथा धृतजरत् कन्थालवस्याध्वगै.
सत्रासं च स कौतुकं च सदयं दृष्टस्यतैर्नागरै:।
निर्व्याजीकृतचितसुधारसमुदा निद्रायमाणस्य मे
नि शक: करट कदा करपुटी भिक्षा विलुण्ठिष्यति॥

(अर्थात-मेरा कब ऐसा सौभाग्य होगा जब कि फटी-नुची गुदडी लपेटे, गली–गली घूमते मुझ पर नगर-निवासी लोग कभी मस्त, कभी कुतूहल भरी और कभी दयापूर्ण दृष्टि से देख पायेगे। ओह! वह कौन सा दिन होगा जब कि मै पारमार्थिक आनन्द रूप अमृतपान मे मग्न ससार से आखे फेर लूँगा और मेरे करपुट के भिक्षाकण नि.शक कौओ द्वारा चुन लिये जायेगे।)

पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा शान्त का उदाहरण भी दृष्टव्य है–

मलयानिल काल कूटयो–रमणीकुन्तल–भोगिभोगयो: ।
श्वपचात्मभुवोनिरन्तरा ममजाता परमात्मनि स्थिति: ।।

(अर्थात्–मलय पर्वत के पवन और विष मे, कामिनियो के केश-कलाप और सर्प की फणि मे एवम् चाण्डाल तथा ब्रह्मा मे तुल्य अर्थात् भेद-भाव रहित मेरी स्थिति परमात्मा मे हो गई है ।)

१– **वन वितान रवि ससि दिया पल भख सलिल प्रवाह ।**
अवनि सेज पखा पवन अब न कछू परवाह ।।–पदमाकर

इसमे लौकिक सुख की क्षण भगुरता आलम्बन है; प्राकृतिक सुखो को अनायास ही प्राप्त कर लेना उद्दीपन है, निस्पृहता और वक्ता की चिता विहीनता अनुभाव है तथा धृति, मति औत्सुक्य और हर्ष सचारी है ।

२– **बोले मुनि यों चिता की ओर हाथ कर**
देखो सब लोग अहा क्या ही आधिपत्य है ।
त्याग दिया आप अज नदन ने एक साथ
पुत्र हेतु प्राण सत्य कारण अपत्य है ।
पा लिया है सत्य सुन्दर सा पूर्ण लक्ष्य
इष्ट सब हमको इसी का आनुगत्य है ।
सत्य है स्वयं ही शिव राम सत्य सुन्दर हैं
सत्य काम सत्य और राम नाम सत्य है ।।

यहाँ दशरथ का प्राण-त्याग आलम्बन है, चिता की ओर निर्देश आदि उद्दीपन है, सबका कातर होना अनुभाव है और 'राम नाम सत्य है' के निर्णय से मति, धृति आदि सचारी है तथा निर्वेद स्थायी है अस्तु शान्त रस की सम्यक् अभिव्यजना हो गई है ।

आचार्य केशवदास ने शान्त रस के स्थान पर समरस नाम देकर उसका लक्षण–'सब ते होय उदास मन, बसै एक ही ठौर' बताकर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसे भी श्रृगार मे घटित किया है । यथा —

३– **खारिक खात न दार्यौंइ दाख न माखन हूँ सहुँ मेटी इठाई ।**
'केसव' ऊख महूखहु दूखत आई हौं तो यह छाड़ि जिठाई ।।
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गये करि केहूँ ढिठाई ।
ता दिन ते उनि राखी उठाय समेत सुधा वसुधा की मिठाई ।।

आचार्य भिखारीदास ने शान्त रस का निम्न उदाहरण दिया है—

४– **भूँखे, अघाँने, रिसाँने, रसाँने, हितु-अ-हितूँन सो स्वच्छ मँनें है ।**
दूखँन भूँखन कंचँन काँच, औ मृत्तिका-माँनिक एक गने है ।।

सूल सौ फूल, सौ माल प्रवाल सौ, 'दास' हिये सँम सुक्ख सने हैं।
रॉम के नाँम सो केवल काम, तेई जग जीवँन-मुक्त बने हैं॥

५— या लकुटी अरु कामरिया पै जु राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि कौ सुख नद की धेनु चराय बिसारौं॥
'रसखान' कबौं इन आँखिन सौं ब्रज के बन बाग तडाग निहारौं।
कोटिन हौं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

ऐसे छन्दो मे देव विषयक रति-भाव (भक्ति) ही प्रधान मानना चाहिये न कि शान्त रस।

६— बैठि सदा सतसंगहि में विषमानि विषै-रस कीर्ति सदाही।
त्यो पदमाकर झूठि जितौ जग जानि सुज्ञानहि कौं अवगाहीं।
नाक की नोक मे दीठि दिये नित चाहै न चीज कहूँ चित चाही।
संतत संत सिरोमनि है धन है धन वे जन बे परवाहीं॥

इस छन्द के प्रथम तीन चरणो मे निर्वेद की व्यजना चौथे चरण मे सन्त जनो की महिमा का अग बन जाती है जिससे मुनिजन-विषयक रति-भाव की स्थापना होती है तथा निर्वेद सचारी मात्र होकर रह जाता है।

वत्सल रस

छोटो मे बडो की रति से वात्सल्य रस का परिपाक होता है। प्राचीन आचार्यो ने अवश्य ही इसे स्वतत्र रूप से रस की श्रेणी मे नही रखा है परन्तु रुद्रट (ने प्रेयस रस रूप मे), भोज, हरिपाल देव और कविराज विश्वनाथ ने इस रस को पृथक् रूप से मान्यता दी है। वात्सल्य माता-पिता मे तो पाया ही जाता है परन्तु माता मे सर्वाधिक। माँ का वात्सल्य इतना स्थायी होता है कि वह शिशु के गर्भ मे आने के साथ ही बढता है। सौन्दर्य-भावना, सुकुमारता, आशा, शृंगार भावना, आत्माभिमान आदि अनेक भाव वात्सल्य के सहायक सिद्ध होते है। कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण मे लिखा है—"भरत मुनि की मान्यता मे दसवाँ रस वात्सल्य है जिसे अन्य काव्य नाट्यकोविदो ने भी माना है। इसे इसलिए रस माना गया है क्योकि इसका चमत्कार अन्य रसो के चमत्कार से अतिरिक्त प्रकार का ही आनन्द है। इसका स्थायी भाव वात्सल्य है। स्नेह के भाजन पुत्र-पुत्री आदि इसके आलम्बन है। पुत्रादिको की चेष्टाये, उनकी विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन है। आलिगन, अग स्पर्श, शिर-चुम्बन, सस्नेह अवलोकन, रोमाच, आनन्दाश्रु आदि अनुभाव है। अनिष्ट-शका, हर्ष, गर्व आदि व्यभिचारी है। इसका वर्ण शुभ्र पीत (पद्मगर्भ) है और इसके देवता गौरी आदि षोडश मातृचक्र है?"[१]

१—अथ मुनीन्द्र संमतो वत्सलः—

(शेष अगले पृष्ठ पर)

शृ गारप्रकाशकार ने भी वात्सल्य को स्वतत्र रस माना है। महाकवि कालिदास के रघुवश मे दिलीप के रघु-प्रेम की अभिव्यजना वात्सल्य रस मे इस प्रकार की गई है—

यदाह धात्र्या प्रथमोदित वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चांगुलीम् ।
अभूच्च नम्र प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुद तेन ततान सोऽर्भक: ।।

(अर्थात्—शिशु रघु कुमार ने पिता दिलीप को प्रसन्नता से भर दिया। धाई के सिखाये माँ आदि शब्दो को बोलते-तुतलाते, धाई की उँगली पकडकर चलते-फिरते, धाई के सिखाने पर बडे-बूढो को प्रणाम करते, सभी प्रकार की बाल-लीला से बालक ने पिता को प्रसन्न कर दिया।)

कुछ आचार्यो ने रसो की सख्या-गौरव करने मे कोई प्रयोजन नही देखा और वात्सल्य तथा भक्ति रस को शृ गार के अन्तर्गत रखते हुए उन्हे स्वतत्र रस की सज्ञा नही दी है। अन्तिम आचार्य पडितराज जगन्नाथ ने भी इन्हे पृथक् रस नही मनोनीत किया है।

सस्कृत के आचार्यो द्वारा वात्सल्य को स्वतत्र रम मानने से यह स्वत. सिद्ध है कि सस्कृत साहित्य मे वात्सल्य रस सम्बन्धी पर्याप्त रचनाओ का प्रणयन हुआ था जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती थी। विल्वमगलाचार्य रचित सुप्रसिद्ध 'गोविन्द दामोदर' स्तोत्र मे वात्सल्य देखिए—

रामानुज वीक्षण केलि लोलं गोपी गृहीत्वा नवनीत गोलम् ।
आवालकं वालकमाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति ।। ८

अंकाधिरूढं शिशु गोप गूढ स्तनं धयन्तं कमलैककांतम् ।
सम्बोधयामास मुदा यशोदा, गोविन्द दामोदर माधवेति ।। १०

क्रीडन्तमन्तर्व्रजमात्मज स्व समं वयस्यै. पशुपालबालै. ।
प्रेम्णा यशोदा प्रजुहाव कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति ।। ११

यशोदया गाढमुलूखलेन गोकंठ पाशेन निबध्यमान. ।
रुरोद मन्दं नवनीत भोजी गोविन्द दामोदर माधवेति ।। १२

स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदु: ।
स्थायी वत्सलता स्नेह: पुत्राद्यालबनं मतम् ।। २५१
उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादय: ।
आलिगनागसस्पर्श शिरश्चुम्बनमीक्षणम् ।। २५२
पुलकानन्दवाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिता: ।
सचारिणाऽनिष्टशका हर्षगर्वादयो मताः ।। २५३
पद्मगर्भच्छविर्वर्णो दैवतं लोकमातर: ।

निजांगणे कंकण केलि लोल गोपी गृहीत्वा नवनीत गोलम् ।
आमर्दयत्पाणितलेन नेत्रे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ १३
जग्धोऽथ दत्तो नवनीत पिण्डो गृहे यशोदा विचिकित्सयन्ती ।
उवाच सत्य वद हे मुरारे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ १७
क्वचित प्रभाते दधिपूर्ण पात्रे निक्षिप्य मन्थ युवती मुकुंदम ।
आलोक्य गानं विविधं करोति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ १९
क्रीडापरंभोजनभेजनार्थं हितैषिणी स्त्री तनुज यशोदा ।
आजूहवत् प्रेमपरिप्लुताक्षी गोविंद दामोदर माधवेति ॥ २०

[अर्थात्—हाथ मे माखन का गोला लेकर माता यशोदा ने आँख मिचौनी की क्रीडा मे व्यस्त बलराम के छोटे भाई कृष्ण को बालको के बीच से पकड कर पुकारा—'अरे गोविन्द ! अरे गोविन्द ! अरे दामोदर ! अरे माधव ! अपनी गोद मे बैठकर दूध पीते हुए बाल गोपाल रूपधारी भगवान लक्ष्मीकान्त को लक्ष्य करके प्रेमानन्द मे मग्न हुई यशोदा मैया इस प्रकार बुलाया करती थी—'ऐ मेरे गोविन्द ! ऐ मेरे दामोदर ! ऐ मेरे माधव ! जरा बोलो तो सही ।' अपने समवयस्क गोप बालको के साथ गोष्ठ मे खेलते हुए अपने प्यारे पुत्र कृष्ण को यशोदा मैया ने अत्यन्त स्नेह के साथ पुकारा—'अरे ओ गोविन्द ! ओ दामोदर ! अरे माधव । (कहाँ चला गया) ।' अधिक चपलता के कारण यशोदा माता ने गौ बाँधने की रस्सी में खूब कसकर ओखली में उन घनश्याम को बाँध दिया, तब तो वे माखन भोगी कृष्ण धीरे-धीरे (आँख मलते हुए) सिसक—सिसक कर गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! माधव! कहते हुए रोने लगे । श्री नन्दनन्दन अपने ही घर के आँगन मे अपने हाथ के कंकण से खेलने में लगे हुए है, उसी समय मैया ने धीरे से लाकर उनके दोनो कमल नयनो को अपनी हथेली से मूँद लिया तथा दूसरे हाथ मे नवनीत का गोला लेकर कहने लगी—'गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! (लो यह मक्खन खालो ।' (दधि मथ कर माता ने माखन का लोदा रख लिया था । माखन भोगी कृष्ण की दृष्टि पड गई, झट उसे धीरे से उठा लाये) कुछ खाया कुछ बाँट दिया । जब ढूँढते-ढूँढते न मिला तो यशोदा माता ने आप पर सन्देह करते हुए पूछा—'हे मुरारे ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! ठीक ठीक बता माखन का लोदा क्या हुआ ! ' किसी दिन प्रात काल ज्योही माता यशोदा दही भरे भाँड मे मथानी को छोडकर उठी त्योही उनकी दृष्टि शैय्या पर बैठे हुए मनमोहन मुकुन्द पर पडी । उनको देखते ही वे प्रेम से पगली हो गई और 'मेरा गोविन्द ! मेरा दामोदर ! मेरा माधव ! ' ऐसा कहकर तरह-तरह से गाने लगीं । क्रीड़ाविहारी मुरारि बालको के साथ खेल रहे है । अभी तक न स्नान किया है न भोजन ! अतः प्रेम में विह्वल हुई माता उन्हे स्नान और

भोजन के लिए पुकारने लगी–'अरे ओ गोविन्द ! ओ दामोदर ! अरे माधव ! (आ बेटा ! आ !) पानी ठढा हो रहा है जल्दी से नहा ले और कुछ खाले)।]

भक्ति की इस विह्वलकारिणी तन्मयता से पूर्ण श्लोको मे वात्सल्य रस का परिपाक स्पष्ट ही देखा जा सकता है ।

आचार्यो ने वात्सल्य के तीन भेद किये है–

१–अपत्य स्नेह–जिसमे पशु पक्षियो के बच्चो तक से स्नेह किया जाता है ।

२–वात्सल्यभाव–जिसमे पडोसी के बच्चे से भी प्रेम किया जाता है ।

३–स्वसतति प्रेम–जिसमे केवल अपनी सतान से प्रेम होता है ।

वात्सल्य मे करुणा और ममता का आधिक्य होने से कई आचार्यो ने इन्हे ही उसका स्थायी भाव कह दिया है । यथा–

देखती मुझे तू हँसी मंद,
होठो में बिजली फँसी स्पंद।
उर में भर झूली छवि सुन्दर,
प्रिय की अशब्द शृगार मुखर।
तू खुली एक उच्छ्वास संग,
विश्वास स्तब्ध बँध अंग-अग।
नत नयनो मे आलोक उतर,
काँपा अधरों पर थर-थर-थर।

–निराला (सरोज स्मृति)

वात्सल्य मे कही प्रेम की अभिव्यक्ति होती है, कही करुणा की और कही अतृप्त आकाक्षा की तथा कही वीर रस, कही शृगार और कही हास्य रस खिल-खिल पडता है। यथा–

आरसी देखि जसोमति जू सो कहै तुतरात यो बात कन्हैया।
बैठे ते बैठे उठे ते उठे और कूदे ते कूदै चले ते चलैया।
बोले ते बोलै हँसे ते हँसै मुख जैसे करो त्योही आपु करैया।
दूसरे को तो दुलारो कियो यह को है जो मोहि खिजावत मैया ।।

साहित्य मे पिता की अपेक्षा मातृ-वात्सल्य की अधिक चर्चा है। अबला जीवन के करुण रूप मे गुप्त जी ने वात्सल्य को ही प्राथमिकता दी है–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।।

अस्तु जहाँ माता-पिता आदि का वात्सल्य परिपूर्ण स्नेह के विभावादिको द्वारा पुत्र-पुत्री आदि के प्रति परिपक्व हो वहाँ वत्सल रस होता है ।

आलम्बन–पुत्र पुत्री आदि ।

उद्दीपन–बाल क्रीड़ाये ।

अनुभाव–आलिंगन, चुम्बन, स्मित, नेत्राकुचन आदि ।

सचारी–वत्सलतापूर्ण स्नेह ।

१– तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कज की मजुलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनग की धूरि धरैं ।
दमकैं दँतियाँ दुति दामनि ज्यों किलकैं कल बाल विनोद करैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मदिर में बिहरैं ।।

यहाँ राम और उनके भाई आलम्बन है, उनके धूलि-धूसरित शरीर, बाल क्रीडाये और छोटे-छोटे दाँत आदि उद्दीपन है, उनके बाल विनोद से माता-पिता का आनन्द अनुभाव है तथा हर्ष और गर्व सचारी है ।

२– किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत ,
मनिमय कनक नद के आँगन, मुख प्रतिबिबहि धावत ।
कबहुँ निरखि हरि आप छाँह को कर सो पकरन चाहत ,
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि पुनि तिहिं अवगाहत ।
कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा इक राजति ,
करि करि प्रति पद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजति ।
बाल दसा सुख निरखि यसोदा पुनि पुनि नद बुलावति ।
अँचरा तर लै ढाँकि सूर प्रभु जननी दूध पियावत ।।

यहाँ बाल कृष्ण आलम्बन है, उनकी बाल-क्रीडा उद्दीपन है, उस दृश्य को दिखाने के लिए यशोदा का नन्द को बुलाना और आँचल के नीचे ढाँक कर दूध पिलाने लगना अनुभाव है तथा गर्व, हर्ष, आवेग और चिन्ता सचारी है ।

३– –बालिका ही थी वह भी ,
सरलपन ही था उसका मन ।
निरालाप था आभूषन ,
कान से मिले अजान नयन ।
सहज था सजा सजीला तन ,
सुरीले ढीले अधरों बीच ।
अधूरा उसका लचका गान ,
विकच बचपन को मन को खींच ।
उचित बन जाता था उपमान ।।......

–पन्त (उच्छ्वास की बालिका)

हिन्दी के आधुनिक काव्य की विशेषकर उन रचनाओ मे जहाँ कल्पनाओ का असीम जाल फैला हुआ है किसी रस का परिपाक आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और सचारियो के सहारे कर सकना किंचित कठिन कार्य ही है फिर भी पन्त की उपर्युक्त पक्तियो मे वात्सल्य रस की ध्वनि है ।

भक्ति-रस

जहाँ विभावादिको से परमात्मा विषयक प्रेम का परिपोष होता है वहाँ भक्ति रस जानना चाहिए।

आलम्बन–परमात्मा, राम, कृष्ण, अवतार आदि।

उद्दीपन–परमात्मा के अद्भुत कार्यकलाप, उत्तम गुणानुवाद, सत्संग आदि।

अनुभाव–नेत्रो का विकास, पुलकावली, गद्गद्वचन आदि।

सचारी–निर्वेद, मति, हर्ष, गर्व, औत्सुक्य आदि।

स्थायी भाव–ईश्वरानुराग।

प्राचीन आचार्यो ने भक्ति को भाव सज्ञा देकर शृगार रस के अन्तर्गत स्थान दिया है। परन्तु भक्ति एक प्रबल भावना है जिसकी आस्वादनीयता और उत्कटता किसी भी प्रधान रस से घट कर नही है। आस्तिको के अवतारो ने अपने अलौकिक कार्यो और दीन दुखियो के त्राण के द्वारा साधु-सन्तो की वाणियो से वह मदाकिनी प्रवाहित कर दी जिसमे अवगाहन करनेवाले भक्ति रस मे निमग्न हो जाते है। रामायण, भागवत और विविध पुराणो की कथाओ ने भारत के जन-जन के हृदय मे भक्ति के लिए एक विशेष स्थान बना दिया। मधुसूदन सरस्वती और रूप गोस्वामी को यह श्रेय है कि उन्होने भक्ति को साहित्य मे शास्त्रीय रूप प्रदान किया। वैष्णव भक्तो ने शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावो को प्रधान तथा अन्य को गौण माना और इतना ही नही वरन् इन सभी को वैष्णव भक्ति के अनुरूप ढाल दिया। भक्ति और शान्त रस स्वत पूर्ण और स्वतत्र रस है। शान्त रस मे एक प्रकार से मोक्ष की अभिलाषा और आकाक्षा है परन्तु भक्त भगवान के सान्निध्य मात्र का भूखा होता है। तुलसीदास कहते है–

अस विचारि हरि भगति सयाने। मुक्ति निरादरि भगति लुभाने।

शास्त्रीय एवं मनौवैज्ञानिक दृष्टि से परिपूर्ण भक्ति का सागोपाग रूप भारत के भक्तो ने खडा किया है और अपनी जीवनचर्या के उत्कट उदाहरणो द्वारा उसके नौ प्रकारो की स्थापना कर दी है।

१– **राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।**
तुलसी भीतर बाहिरो जौ चाहसि उजियार॥

इसमे राम का नाम आलम्बन है, 'उजियारे' की चाह उद्दीपन है, राम-नाम का स्मरण अनुभाव है और मति, धृति तथा उत्कंठा आदि सचारी है।

२– **अब हौं नाच्यौं बहुत गुपाल,**
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।

महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल,
भरम भरयौ मन भयो पखावज चलत असगत चाल।
तृष्ना नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल,
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ लोभ तिलक दियो भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहि काल,
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल॥

यहाँ गोपाल आलम्बन है, अविद्या का दूर किया जाना उद्दीपन है, माया के पाश मे पडकर चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण के क्लेश के कारण गोपाल को सबोधन अनुभाव है तथा मति, धृति, स्मृति आदि सचारी है।

३– करम गत टारा णा री टरा।
सतवादी हरचदा राजा डोम घर णीरा भरां।
पाच पांडु री राणी द्रपता हाड हिमाणां गरां।
जग्ग किया बड़ डेण इंद्राशण जोयां पताड़ परां।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर विखरूँ अमरित करां॥

इसमे प्रभु गिरधर नागर आलम्बन है; 'विख रूँ अमरित करा' ही उद्दीपन है, कर्म की गति अटल है तथा उसने बडो-बडो को परास्त कर दिया है इसीसे गिरधर की प्रार्थना अनुभाव है तथा मति, स्मृति, धृति और दैन्य संचारी है।

४– क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुन्दर मदिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनंदन रे।
पद रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल कण रे।
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीडा का चदन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे।
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे।
धूप बने उड़ते रहते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे।

यहाँ प्रिय आराध्य (परमात्मा) आलम्बन है, प्रिय की अनुपमता, अव्यक्तता आदि गुण उद्दीपन है; उस प्रिय का स्वागत-अभिनन्दन करना अनुभाव है तथा औत्सुक्य, हर्ष, उत्साह, गर्व, मति आदि संचारी है।

रसाभास

जब रस अनौचित्य रूप मे व्यजित होता है तब वह रसाभास कहलाता है अथवा रस की अनुचित प्रवृत्ति से अपूर्ण परिपाक होना रसाभास है। सहृदय

जनो को अनुचित प्रतीत होना ही अनौचित्य है । यद्यपि रस का अनुचित रूप मे प्रकटीकरण दोष है तथापि यह रसाभास भी क्षण भर के लिए रस के स्वाद का आभास दे जाता है । जैसे सीप मे चाँदी की झलक रहती है वैसे ही रसाभास मे रस की झलक पाई जाती है इसीरो रसाभास को ध्वनि का एक भेद कहते है ।

शृगार रसाभास—(१) परस्त्रीगत प्रेम, (२) स्त्री का पर पुरुष से प्रेम, (३) स्त्री का बहुपतिविषयक प्रेम, (४) नदी, नाले, लता, वृक्ष आदि निरिन्द्रियों मे दाम्पत्य विषयक सम्भोग प्रेम का आरोप, (५) पशु-पक्षियो आदि की रति-वर्णन, (७) नीच कुल के पात्र मे किसी उच्च कुल वाले की प्रीति-वर्णन, (८) गुरु-पत्नी आदि मे अनुराग-वर्णन । आधुनिक हिन्दी के कवियो ने रसाभास करने मे पर्याप्त रस लिया है ।

मतिराम विरचित नायिका की अनेक पुरुषो मे रति व्यक्त होने से शृगार रसाभास का चित्रण देखिये—

अजन दै निकसै नित नैननि मजन कै अति अग सँवारै ।
रूप गुमान भरी मग में पगही के अँगूठा अनोट सुधारै ।
जीवन के मद सो 'मतिराम' भई मतवारिनि लोग निहारै ॥
जाति चली यहि भाँति गली बिथुरी अलकै अँचरा न सँम्हारै ॥

हास्य रसाभास–गुरु, माता-पिता आदि पूज्यनीय व्यक्तियो को हास्य का आलम्बन बनाना ।

वीररसाभास—नीच व्यक्ति मे उत्साह होना ।

अद्भुत रसाभास—ऐन्द्रजालिक कार्यो मे विस्मय होना ।

रौद्र रसाभास—पूज्यनीय व्यक्तियो पर क्रोध होना ।

करुण रसाभास—विरक्त मे शोक प्रदर्शन करना ।

वीभत्स रसाभास–यज्ञ मे बलि किये जानेवाले पशु मे जुगुप्सा होना आदि ।

भयानक रसाभास—श्रेष्ठ व्यक्ति को भयभीत दिखाना आदि ।

शान्त रसाभास—नीच व्यक्ति मे शम की स्थिति दिखाना आदि ।

वात्सल्य रसाभास—वात्सल्य के पात्र मे रति प्रदर्शन आदि ।

भक्ति रसाभास—ईश्वर विषयक प्रेम किसी लौकिक व्यक्ति मे निष्ठ होना आदि ।

भावाभास

भाव का जब अनुचित रूप से वर्णन किया जाता है या जो भाव रसाभास का अग हो जाता है, उसे भावाभास के नाम से पुकारते है ।

संचारी भाव जब तक किसी रस के पोषण मे सहकारी कारण होते है तब

तक वे सचारी भाव रहते है परन्तु जब वे अपनी प्रधानता अभिव्यक्त करते हुए भावावस्था को प्राप्त कर दूसरे किसी रसाभास के अग हो जाते है तब उन्हें भावाभास कहा जाता है। यथा—

१– दरपन में निज छाँह सँग लखि प्रीतम की छाँह।
खरी ललाई रोस की, ल्याई अँखियन माँह ॥

यहाँ क्रोध का भाव वर्णित है परन्तु उसका कारण अति साधारण होने के कारण भावाभास है।

२– विस्मृति-पथ में विषय सब रह्यो न शास्त्र-विवेक।
केवल वह मृग लोचिनी टरत न हिय छिन एक॥

यहाँ अन्य नायिका का स्मरण करते हुए किसी प्रवासी की यह उक्ति है। यहाँ स्मृति भाव की प्रधानता है और वह अन्य नायिका मे निष्ठ होने के कारण श्रृगार रसाभास का अग होने से भावाभास है।

भावशान्ति

एक भाव की व्यजना के मध्य मे किसी विरोधी भाव की व्यजना हो जाने पर पहला भाव समाप्त होने का जो चमत्कार होता है वह भाव शान्ति कहलाता है। यथा–

कितौ मनावत पीय तउ मानत नाँहि रिसात।
अरुन चूड धुनि सुनत ही तिय पिय हिय लपटात॥

इसमे नायिका का मान स्पष्ट है जो मुर्गे की बोली सुनकर अर्थात् प्रात.-काल जानकर शान्त हो गया है।

भावोदय

किसी भाव की शान्ति के उपरान्त किसी कारणवश यदि दूसरे भाव का उदय हो जाय जिसमे चमत्कार हो तो वह भावोदय कहलाता है। यथा—

मैं हौं हठी तुम हो कपटी अस की उछटी बतियाँ जब प्यारी।
पायँ परे की न मान कियो अपमान निरास भए गिरधारी।
रूठि चले पिय कौ लखि कै छतियाँ धरि हाथ उसास निकारी।
त्यों अँसुवान भरी अँखियान ते दीठ प्रिया सखियान पै डारी।

यहाँ कलहातरिता नायिका मे सचारी भाव 'विषाद' के उद्रेक से भावोदय है क्योकि इसमे चमत्कार है।

भाव-संधि

समान रूप से चमत्कारी दो भावो की उपस्थिति जहाँ एक साथ देखी जाती है उसे भावसधि कहते है। यथा–

प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु विधुमडल डोल॥

इसमे उत्सुकता और व्रीडा भावो की सधि है।

भाव शबलता

जहाँ एक के पीछे दूसरा और दूसरे के पीछे तीसरा तथा तीसरे के पीछे चौथा, इस प्रकार बहुत से चमत्कारिक भावो का एक ही स्थान पर सम्मेलन हो उसे भाव शबलता कहते है। यथा–

या विधि की विपरीत कथा हा! विदेह सुता कित है अरु मैं कित।
ता मृग नैनी बिना बन में अब होइ सो प्रान अधारहु को इत।
मोहि कहेगे कहा सब लोग? रु कैसे लखौंगो उन्हें समुहे चित।
राज रसातल जाहु अबै है धरातल जीवन हू में कहा हित॥

इसमे असूया, विषाद, स्मृति, वितर्क, शका, व्रीडा और निर्वेद भावो का सम्मेलन है।

अनेक रसो की स्फुरणा

एक-दृश्य-वर्णन मे विविध रसो की अवतारणा (उल्लेख अलकार की सहायता से) कविजन करते आये है परन्तु यह एक अद्भुत कवि कर्म है। देखिये–

कृष्ण को अपने भाई समेत कस के रगमच पर देखकर–

मल्लानामशनिर्नृणां नरवर: स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान,
गोपाना स्वजनो सतांक्षितिभुजा शास्ता स्वपित्रो:शिशु।
मृत्युर्भोजपते विराडविदुषां तत्व पर योगिनाम्
वृष्णीना परदेवतेति विदितो रगं गत. साग्रजः॥

[अर्थात्–मल्लो के हृदय मे रौद्र, नरो मे अद्भुत, स्त्रियो मे शृगार, गोपो में हास, राजाओ मे वीर, कृष्ण के माता-पिता मे करुण और वात्सल्य, भोजपति (कस) मे भयानक, अज्ञानियो मे वीभत्स, योगियो मे शान्त और वृष्णियो मे भक्ति की उद्भावना हुई।]

सस्कृत के भट्टि काव्य मे इस प्रकार का चमत्कार सम्यक् रूप से देखा जा सकता है।

पृथ्वीराज रासो मे रति–समागम के अन्तर्गत नव रसो की सिद्धि देखने को मिलती है। देखिये–

रस विलास उप्पज्यौ, सषी रस हार सुरत्तिय।
ठांम ठांम चढ़ि हरम, सद्द कह कह तह मत्तिय।

सुरत प्रथम सभोग, हंह ह हं मुष रट्टिय।
ना ना परि न्रबल, प्रीति संपति रति थट्टिय।
भृगार हास करुना सु रुद्र, वीर भयान विभाछ रस।
अद्भूत सन्त उपज्यौ सहज, सेज रमत दपति सरिस ॥

तुलसी ने इस प्रकार की भाव स्फुरणा विषयक ज्ञान की अपनी अभिज्ञता तथा उसके प्रदर्शन की अपनी समर्थता का कुशल सकेत निम्न चौपाई मे कर दिया है—

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥

केशव ने भी कृष्ण का रूप-चित्र इसी प्रणाली के अनुसरण पर किया है।

श्री वृषभानु-कुमारि हेतु भृगार रूप मय।
वास हास रस हरे, मात बंधन करुणामय।
केसी प्रति अति रौद्र वीर मारो वत्सासुर।
भय दावानल पान कियौ बीभत्स बकी उर।
अति अद्भुत वचि विरंचि मति सात संततै सोच चित।
कहि केसव सेवहु रसिक जन नव रस मैं ब्रजराज नित ॥

(यद्यपि आगे उन्हे अपनी प्रतिज्ञा विस्मृत हो गई और वे रति भाव के अन्तर्गत ही अन्य रसो के समावेश के चमत्कार निरूपण मे लग गये।)

अध्याय | २

हिन्दी साहित्य में विविध रस

श्टृगार

हिंदी साहित्य के वीरगाथा-काल अथवा चारण-काल मे युद्धो का घटाटोप है परन्तु उन युद्धो की पृष्ठभूमि मे वास्तविक अथवा पुरातन कथा-सूत्र रूप मे नियोजित नारी ही है। वीर युग का मूल स्वर यदि युद्ध है तो उसको प्रेरित करने वाली आद्याशक्ति रमणी ही है। अनेक कारणो मे से यह भी एक है जिसने उस युग के वीरो मे अमित शौर्य के दर्शन कराये है।

पुरुष वर्ग आदि काल से ही नारि वर्ग की ओर स्वभावत आकर्षित होता आया है क्योकि एक कविसमय मे वर्णन है कि प्रियगु उनके छूने से फूलता है, बकुल उनके मुख से दिये हुये मद्य के छीटो से, अशोक उनके पैर के आघात से, तिलक उनके ताकने से, कुरवक उनके आलिगन से, मदार उनके मधुर वचनो से, चम्पक उनकी कोमल हँसी से, आम उनके मुख की वायु से, नमेरु उनके गोत से और कर्णिकार उनके नाचने से—

स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात् ।
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।
मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमधुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात् ।
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति हि पुरोरुनर्तनात् कर्णिकारः ।।

और जब जड वृक्षो की यह स्थिति है तो पुरुष यदि उसके अवलोकन, स्पर्श आदि से हतचेतन होकर उसके इगित पर नर्तन करने लगे तब इसमे कौन सा आश्चर्य है।

विरागी सत कबीर भले ही उपदेश दे गये हो कि–

नारी की झाइँ परे अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिन की कौन गति नित नारी के सग ।।

परन्तु इस चेतावनी को किसने सुना । प्राय सभी ने आसक्ति के इस परम पाश मे जकडे जाने मे ही अपने को धन्य माना और अपना भाग्य सराहा ।

पृथ्वीराजरासो मे युग के शौर्य-पराक्रम के प्रतीक महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीय और उनके अमित शौर्य-गुणो एव रूप पर रीझकर आत्मसमर्पण करने वाली क्षत्राणी राजकुमारियो के सयोग सम्बन्धी अनूठे चित्र कवि चद ने खीचे हैं । एक दृष्टव्य है–

लाज गढ्ढ लोपंत । बहिय रद सन ढक रज्ज ।।
अधर मधुर दंपतिय । लूटि अब इँव परज्ज ।।
अरस प्ररस भर अक । षेत परजक षटविकय ।।
भूषन टूटि कवच्च । रहे अध बीच लटविकय ।।
नीसान थान नूपुर बजिय । हाक हास करषत चिहुर ।।
रतिवाह समर सुनि इछिनय । कीर कहत बत्तिय गहर ।।

छ० १४१ स० ६२

[अर्थात्–लज्जा निम्न स्थानो मे जाकर छिप गई, दम्पति अधरो की माधुरी का पान करने लगे, पर्यंक रूपी क्षेत्र मे वे आलिगन पाश मे बँध गए, आभूषण रूपी कवच भग्न होकर आधे बीच मे लटक गये, नगाडो के स्थान पर नूपुर बज रहे है तथा उनका हास्य ही ललकार है । धृष्ट शुक दूत ने कहा कि हे इच्छिनी, यही रतिवाह (कामदेव) का समर है ।]

भारत पराधीन हो गया । मुस्लिम शासक विशेषकर उत्तर भारत के अधिकारी हुए परन्तु शृगार मे कोई अतर विशेष न आया । तिरहुत के विद्या-पति ने राधा-माधव की रतिक्रीडा के मिस राजा शिवसिह और उनकी रानी लखिमा देवी को केलि प्रेरणा देने मे कुछ उठा न रखा । काम का एक उद्दाम चित्र देखिए–

निबि बधन हरि किए कर दूर ।
एहो पर तोहर मनोरथ पूर ।। २
हेरने कओन सुख न बुझ विचारि ।
बड़ तुहु ढीठ बुझल बनमारि ।। ४
हमर सपथ जौं हेरत मुरारि ।
लहु लहु तब हम पारब गारि ।। ६
बिहर से रहसि हेरने कौन काम ।
से नहि सहजहि हमर परान ।। ८

कहाँ नहि सुनिए एहन परकार ।
करए विलास दीप लए जार ॥ १०
परिजन सुनि सुनि तेजब निसास ।
लहु लहु रमह सखीजन पास ॥ १२

[हे हरि, तुमने नीबी (धोती की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ नाभि के नीचे या बगल मे इजारबन्द से या यो ही बाँधती है) का बधन खोल दिया, इससे भी तुम्हारा मनोरथ नही पूरा हुआ । मेरी समझ मे और विचार मे नही आता कि देखने से तुम्हे कौन सा सुख मिलता है । हे बनमाली, तुम बडे ढीठ समझ पडते हो । हे मुरारी, तुम्हे मेरी शपथ है जो तुम देखो । भला देखने से क्या प्रयोजन । हमारे प्राण यह नहीं सह पायेगे । यह प्रकार कही नही सुना गया कि दीपक जलाकर विलास करे । क्रीडाकाल के मेरे नि श्वास परिजन सुन लेगे । धीरे-धीरे सभोग करो सखियाँ समीप है ।]

लोक रीति-रिवाजो का भरपूर ज्ञान रखने वाले और मैथिली की गेय प्रणाली से सम्पन्न विद्यापति यदि परकीया की क्रिया-प्रतिक्रियाओ की कुशल अभिव्यक्ति कर सकते है तो स्वकीया की मनोदशाओ से भी वे अभिज्ञ है । देखिए, सम्भोग शृ गार के अन्तर्गत शनै: शनै. लजाती और भयभीत नवागता वधू को किस प्रकार शयनागार की ओर ले चलते है–

सुंदरि चललिहु पहुघर ना ।
जाइतिहु लागि परम डर ना ।
चहुँ दिसि सखि सब कर धर ना ॥

भक्तिकाल मे मुख्य स्वर तो भक्ति का है परन्तु शृ गार कही तो कबीर आदि निर्गुण सतो मे राम की अलौकिक बहुरिया के रूप मे विस्तृत हुआ है, कहीं जायसी आदि सूफी फकीरो की वाणी मे अन्योक्तियों के रूप मे अपनी सागोपाग विविधता लेकर आया है, कही सूर जैसे अन्यतम कृष्णोपासकों की वाणी से राधा प्रभृति गोपियो की कृष्ण के प्रति सवेदनाओ को स्वसवेद्य बना कर मर्यादा की परिधियाँ तोडता हुआ रग बिरगे रूप मे प्रस्फुटित हुआ है और हास्य भाव से राम के विख्यात आराधक तुलसी के स्वरो मे कहीं मर्यादा की रक्षा के परकोटे उठाता निनादित हुआ है ।

प्रेम के कठिन पथ पर चलने का उद्बोधन करते हुए कबीर खडे और रपटीले मार्ग की चर्चा करते है तथा अपना सिर काटकर और उस पर पैर रखकर आगे बढने का आह्वान करते है–

सीस उतारै भुइँ धरै तापर राखै पावँ ।
दास कबीरा यो कहै ऐसा होउ तौ आउ ॥

इस प्रकार अलौकिक क्षेत्र मे प्रेम की निष्ठा का प्रतिपादन करते हुए लौकिक प्रेम के लिये भी एक आदर्श मार्ग का सकेत कर जाते है।

सूफी जायसी रानी नागमती और राजा रत्नसेन के मिस विरह विदग्ध विधुर वियुक्त आत्मा की विह्वलता का ही आध्यात्मिक चित्र खीचते है जब वे कहते है—

नहि पावस ओहि देसरा नहि हेवंत वसंत।
ना कोकिल न पपीहरा जेहि सुनि आवहि कत।।

सच ही नागमती का बिसूरना आत्मा और परमात्मा की दुनियाँ मे अलौकिक विप्रलम्भ का जीवत उदाहरण है। परमात्मा रूपी प्रियतम आत्मा रूपी प्रियतमा को किस प्रकार प्राप्त हो सकता है क्योकि उसके निराले देश मे प्रिय की स्मृति दिलाने वाली वर्षा हेमत और बसत ऋतुये भी नही होती तथा कोकिल की कूक और पपीहरे की पी भी उसे याद दिलाने के लिये नही सुनाई पडती। तब उस आत्मा रूपी प्रियतमा को ही उस अव्यक्त प्रियतम से मिलन हेतु सयत्न सचेष्ट होना होगा तथा सूफी दर्शन के अनुसार न जाने कितनी दुर्लंघ्य घाटियाँ लाँघनी होगी, कितने अथाह सागर पार करने होगे तथा न जाने कितने हिसक जतुओ के बीच से निकलना होगा। और फिर जब उस साजन ने बुलाया है तब उसकी आज्ञा कैसे मिटाई जा सकती है, तन, मन और यौवन का श्रृङ्गार करके उस पर भेट चढानी है—

साजन लेइ पठावा आयसु जाइ न मेटि।
तन मन जोबन साजि कै देइ चली लेइ भेंटि।।
पदमिनि गवन हस गै दूरी। कुजर, लाज, मेल, सिर धूरी।।

विप्रलम्भ-वर्णन मे तो जायसी कुशल ही है परन्तु सभोग मे भी किसी से घटकर नही और ठीक ही है सयोग का वाछित रस पाने का वही अधिकारी है जिसने वियोग की तडप समझी हो। पदमावती की रति का वर्णन करके जायसी ने शेष की सूचना देकर सारा सयोग प्रस्फुटित कर दिया—

सब निसि सेज मिला ससि सूरू। हार चीर वलया भए चूरू।।
सो धनि पान चून भइ चोली। रग रंगीलि निरंग भई भोली।।

जिसका पर्यवसान वही अध्यात्म है—

कौन सो दिन जब पिउ मिलै यह मन राता जासु।
वह दुख देखै मोर सब, हौं दुख देखौं तासु।।

जिनके प्रियतम घर पर है उन्हे गौरव है और गर्व है परन्तु जिनके प्रिय परदेश मे है उन्हे सारा सुख भूल गया है—

जिन घर कंता ते सुखी तिन गारौ औ गर्व।
कत पियारा बाहिरै तिन सुख भूला सर्व।।

अपने हृदय का मथन करने वाली प्रेम की पीर जायसी ने शब्दो द्वारा साकार की और वह सदा-सदा मर्मस्पर्शिनी रहेगी।

सूर के सयोग से वियोग शृङ्गार कही अधिक मार्मिक है। चाहे लौकिक क्षेत्र हो या अलौकिक विप्रलभ की दशाये दिखाने मे ही भावुक हृदय कवियो की पैंठ का पता लगता है। ज्ञानी उद्धव को प्रेम का उपालम्भ देती हुई गोपियाँ कहती है कि हे उद्धव, तुमने बड़ा ही अच्छा किया जो यहाँ पधारे, विधाता रूपी कुम्हार ने जिन घडों को कच्चा तैयार किया था उनको तुमने आकर पका दिया। इन घडो पर श्याम ने अपनी लीला और विनोद के सुन्दर-सुन्दर चित्र बना दिये थे। कृष्ण ने अवधि रूपी छाजन छा दिया था इससे आँसुओ की धारा से वे गलने नही पाये। तुमने ब्रज को कुम्हार का आवा बनाया, योगाभ्यास के उपदेश का ईंधन रखा तथा एकाग्रचित्तता की आग सुलगा दी, दु.ख की उच्छ्वास रूपी वायु से विरह वेदना और बढ गई, कृष्ण-दर्शन की आशा ने हमारे जलते हुए मन रूपी घडो को उलट फेर दिया, जिससे वे एक ही ओर झुलसने से बच गये। प्रेमजल से सम्पूर्ण इन घटो को किसी ने छूकर अपवित्र नही किया है।

ऊधौ भली करी अब आये।

विधि कुलाल कीन्हें काँचे घट ते तुम आनि पकाए।
रग-दियौ हो कान्ह साँवरे अंग अग चित्र बनाये।
गरन न पाए नैन नीर तें अवधि अटा जो छाए।
ब्रज करि अवाँ जोग करि ईंधन सुरति आगि सुलगाये।
सोक उसाँस विरह परजारनि दरसन आस फिराए।
भरे सँपूरन कलस प्रेमजल छुअन न काहू पाए।
राज काज ते गए सूर प्रभु नन्द नँदन कर लाए।।

प्यारे कान्हा की विरहिणी गोपियाँ वृन्दावन मे विरह-ज्वाला मे जल रही है। उनके सदेशो के डर से पथिको ने उधर के मार्ग का आवागमन छोड दिया है तथा कोकिल और पपीहे वन मे बसने नही पाते तथा कागो ने बलि का अन्न खाना छोड़ दिया है–

पिक चातक बन बसन न पावहि वायस बलिहि न खात।
सूर श्याम सदेशन के डर पथिक न वहि मग जात।।

विप्रलभ सदेशे भेजने वाले इस मार्मिक प्रसग मे वक्रोक्ति सिद्ध घनानन्द और भी अधिक चमत्कार ले आये जब उन्होने गोपियो से कहलाया कि ये वियोग के दिन किस प्रकार पूरे किये जावेगे अब तो सदेशो का मार्ग भी थक कर चूर हो गया है–

भरियै केहि भाँति कहा करिये, अब गैल सँदेसन की हू थकी।।

फारसी की ऊहात्मक शैली से भावाक्रात उर्दू शायरी मे सयोग के लिए मनोभावो का अभिव्यक्तीकरण अनूठी वक्रोक्तियो के माध्यम से हुआ है। यथा—

उनकी नजरो से निकलकर तीर ने दी यह सदा।
अब तो मैं हर दिल में रख लेने के काबिल हो गया ॥
हम तो रख लेते है दिल में आपके तीरो तुफंग।
आपको रखना हमारा दिल भी मुश्किल हो गया ॥

फारसी शायरी मासाहारियो के बीच मे पली थी और उन्ही के साथ भारत मे आई थी। लड़ाकू और खून करने मे प्रसिद्ध तुर्क उनका माशूक था। इसी से उर्दू शायरी मे शृङ्गार के अन्तर्गत तीर, तलवार और बर्छे चलने की चर्चा हुई और इतना ही नही—

'लख्ते जिगर को खाते हैं औ खूने जिगर को पीते हैं।'

सदृश उद्गार प्रगट हुए। यह फारसी-प्रभाव जायसी प्रभृति सूफी कवियो मे बखूबी देखा जा सकता है जब वे शृङ्गार मे वीभत्स का समन्वय करते हुए लिख बैठते है—

मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू। हुलसी पीठि कढ़ावौं फालू ॥
कुच तूंबी अब पीठि गड़ोवौं। गहै जो हूकि गाढ़ रस धोवौं ॥

—पदमावत

और आधुनिक छायावादी कवि जयशकर प्रसाद भी लगभग ऐसी ही शैली मे लिख जाते है।

छिल छिल कर छाले फोड़े,
मल मल कर मृदुल चरण से।
घुल घुल कर बह रह जाते,
आँसू करुणा के कण से ॥

डिंगल के सुप्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज राठौर की 'वेलि' मे कृष्ण के स्वप्नागार की ओर जाने वाली, सारी सखियो द्वारा अत्यन्त प्रशसित, पग-पग पर रुक रहती गजगामिनी रमणी रुक्मिणी लज्जा रूपी लोह शृखलाओ से जकडी हुई गजराज सदृश लाई गई—

ऊभी सहु सखिये प्रससिता अति,
पग पग रुकि रहती रमणि।
लाज लोह लगरे लगाये,
गै जिम आणि गै गमणि ॥

सभोगकालीन सयोग मे सुरतात दशा की सूचना कवि ने बडी युक्ति से अभिव्यजित की है। महारानी रुक्मिणी और कृष्ण के प्रथम रति-क्रीड़ा के

उपरान्त (जिसे किसी देवता और ऋषि ने भी नही देखा) दशा का वर्णन करते हुए कवि का कथन है–"पति द्वारा पवन डुलाने की प्रार्थना करती हुई, रति के अन्त मे वहाँ शय्या पर पडी हुई रुक्मिणी की कैसी शोभा है मानो क्रीडा करते हुए गजेन्द्र द्वारा (तोडकर) म्लान दशा को प्राप्त कमलिनी सरोवर मे पडी हो। रुक्मिणी के ललाट पर प्रस्वेद के कणो मे कुकुम का विदु सुशोभित है (मानो) कामदेव रूपी कारीगर ने सुवर्ण मे हीरे जडकर बीच मे माणिक्य मिला दिया हो"–

पति पवनि प्रारथित त्री तत्र निपतति सुरति अन्त केहवी सिरी ।
गजेन्द्र क्रीड़ताँ सु व्याकुल गति नीरासयँ परि कमलिनी ।।
कीधँ मझि माणिक हीरा कुदण मिलिया कारीगर मयण ।
स्यामा तणै लिलाटि सोहिया कुकुम विंदु प्रसेद कण ।।

और जिसके प्रियतम का प्रवास शाप, भय अथवा कार्य के कारण नही वरन् जो युगो पूर्व धरती का धरातल धर्मराज के अनुशासन के वशीभूत होकर छोड गया था और जिसका अपने पूर्व रूप मे आ सकना असम्भव था ऐसे उस भूतकालीन प्रवासी को बादलो के घिरने, मयूरो के बोलने और कुमुदिनी के विकसित होने पर दु ख द्वन्द्वो से अधीर चेतन विरहिणी मीरा ने अपने पास आने के लिए बडी व्यग्रता मे पुकारा था–

म्हारो ओड़गियाँ घर आज्यो जी ।
तण री ताप मिट्याँ सुख पाइयाँ हिड़मिड़ मगड़ गाज्यो जी ।
घण री धुण सुण मोर मगण भयाँ म्हारे आंगण आज्यो री ।
चंदा देख कमोदण फूडां हरख भयां म्हारे छाज्यो जी ।।

विप्रलम्भ शृगार के अन्तर्गत तुलसी ने अपने मानस मे विरही राम के सन्देश मे जितना जो कुछ दो चौपाइयो मे नूतनता से कह डाला उसकी पुष्टि परम्पराश्रित फीके वियोग वर्णनो द्वारा करते हुए भक्त कवि की गरिमामयी प्रतिभा ने उसे पर्याप्त रूप से चमत्कृत करके दिखा दिया। राम कहते है कि हे सीते, तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम का तत्व यही है कि तुम जानती हो कि मेरा मन केवल एक है और वह सदा समीप रहता है, इतने से ही मेरी प्रीति का रस समझ लो–

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ।।
सो मन रहत सदा तुव पाही। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं ।।

मर्यादा के उपासक तुलसी ने मानस मे सयोग-चित्रण की आवश्यकता ही नही समझी। सीता, माडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति विवाहित होकर अयोध्या आई और रात्रि मे सासुये उन्हे लेकर सो गई मानो सर्पो ने अपने सिर की मणियो को हृदय मे छिपा लिया हो–

सुन्दर बधुन्ह सासु लै सोईं । फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोईं ।।

इसके उपरान्त भक्त कवि ने इन नवागता वधुओ की अपने प्रियतमो से समागम की सम्भावना भी सम्भवतः कभी नही समझी । यदि इस क्षणिक वियोग घटित करने के उपरान्त कही सयोग दिखाया जा सकता जैसा कि पृथ्वीराज राठौर ने अपनी 'वेलि' मे दिखाया है तो सयोग के प्रति आकर्षण की अभिवृद्धिहेतु यह योजना सर्वथा वाछनीय होती परन्तु तुलसी ने तो सयोग व्यापार पर गहरा पर्दा डाल देना ही श्रेयस्कर समझा । इस विश्लेषण के साथ यहाँ इतना जोड देना और समीचीन होगा कि राम के विरह सन्देश मे—

कहेउ राम वियोग तव सीता । मो कहुँ सकल भए विपरीता ।।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू । काल निसा सम निसि ससि भानू ।।
कुबलय विपिन कुत बन सरिसा । वारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिविधि समीरा ।।
कहेहू ते कछु दुख घटि होई । काहि कहौ यह जान न कोई ।।

[अर्थात्–हनुमान जी बोले कि राम ने कहा है कि हे सीते, तुम्हारे वियोग मे मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गये है, वृक्षो के नये-नये पत्ते अग्नि के समान, रात्रि कालरात्रि के समान, चन्द्रमा सूर्य के समान और कमल के वन भालो के समान हो गए है; मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते है । जो हित करने वाले थे वे ही अब पीडा देने लगे है, तथा शीतल मद, सुगन्धित वायु सर्प की श्वास के समान विषैली और गरम हो गई है ।]

उन्होने विरह पक्ष के उद्घाटन के साथ ही सयोग की गहराई की सूचना भी अनायास ही कुशलतापूर्वक निर्देशित कर दी है ।

रीतिकालीन कवियो ने शृ गार की जो अबाध और प्रखर धारा बहाई उसमे रूढिवादिता के कारण वह नवीनता और स्फूर्ति नही है जो अन्यथा होती । रीति युग भारत की मुस्लिमो द्वारा परतत्रता, शासको के विलास तथा उन्ही के अन्धानुकरण पर पराधीन हिंदू शासको के अस्वस्थ विलास का युग है । मुस्लिम और हिंदू दरबारो मे रहने वाले हिन्दी कवि अपने आश्रयदाताओ की रुचियो के अनुकूल शृ गारिक रचनाये करके उन्हे कामुकता की ओर प्रेरित करते तथा फलस्वरूप उनसे पुरस्कृत होते रहे । इस युग मे व्यक्ति को कवियो की पक्ति मे बैठने के लिए रीति ग्रथ अर्थात् नायिका भेद, अलकार और छद सम्बन्धी ग्रथ प्रणीत करने पडते थे जिसका परिणाम एक ओर जहाँ यह हुआ कि इन ग्रथो का एक विशाल अबार लग गया वहाँ दूसरी ओर पिष्टपेषण के कारण मौलिकता के दर्शन यदाकदा होने की स्थिति पैदा हुई । इसमे कोई सदेह नही कि उस शृ गारी काल मे भूषण जैसे उद्भट कवि ने शृ गार रस के स्थान पर वीर रस को अपने काव्य का आश्रय बनाया परन्तु शृ गारिक छद

लिखने से वे भी अपने को विरत न रख सके तथा रीति-परम्परा का पालन उन्होने अपने 'शिवराज भूषण' ग्रन्थ को अलकरण पद्धति मे ढाल कर किया। रीति प्रथा की परम्परा के कारण अथवा स्वत. लग गये अनुशासन के फल-स्वरूप कितने ही श्रेष्ठ कवियो का जीवन प्राय रीति-ग्रथो का प्रणयन करने में ही व्यतीत हो गया और बहुधा पुनरावृत्तियो के कारण रचनाये नीरस भी हो गई तथा अनेक सुकवि अधिक श्रेष्ठ रचनाये न कर सके। परन्तु इतनी सब आलोचनाओ के बावजूद भी हम इस युग की अन्यतम शृ गारिक रचनाओ मे कवियो की विलक्षण प्रतिभाये, अनूठी सूझें और स्थितियो की गहराई के अनुसार मार्मिक विवेचन तथा तथ्यात्मक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पाते है। नायिकाओ के सूक्ष्म वर्गीकरण के अधार पर शृ गारिक क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ को प्रकट करने की प्रवृत्ति उत्तरकालीन सस्कृत साहित्य मे ही परिलक्षित होने लगी थी और काव्य मे नारी को परिमार्जित किन्तु कृत्रिम ढग से व्यवस्थित करने की यह मनोवृत्ति रीति युगीन कवियो को पैतृक धरोहर के रूप मे प्राप्त हुई थी। इस विवेचन मे हम रीति युक्त एव रीति मुक्त दोनो प्रकार के कवियो की कृतियो पर विचार करेगे।

क्लिष्ट काव्य के सुप्रसिद्ध स्रष्टा आचार्य केशव की रसिकप्रिया मे रस की धारा उमड रही है। उनकी प्रच्छन्न अभिसधिता मे विप्रलभ शृंगार का अनुताप लीजिये —

पांइ परे हू तें प्रीतम त्यौं, कहि केशव क्यों हूँ न मैं दृग दीनी।
तेरी सखी शिख सीखी न एक हू, रोष ही की शिख सीख जु लीनी।
चदन चंद समीर सरोज, जरै दुख देह भई सुख हीनी।
मैं उलटी जु करी, विधि मोकहुँ न्या नहीं उलटी विधि कीनी॥

तुलसी के बाद काव्य जगत मे सर्वाधिक लोकप्रिय, सकल शरीर वेधने वाले बिहारी के नावक के तीर रूपी दोहो मे गागर मे सागर भरा है। दोहा जैसे छोटे छद मे उन्होने जितना अधिक कह डाला वह उनकी प्रतिभा का परिचायक है। वे पुरानी बातो को खराद कर और उस पर पालिश कर नवीन साज-सज्जा से सँवार कर प्रस्तुत करने वालो मे अग्रणी है। शृ गार की बारीकियो को उनकी भाँति प्रकट करने वाले बिरले ही निकलेगे—

नासा मोरि नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकै हियै, गड़ी कटीली भौंह॥

स्निग्ध प्रीति की जीवत मूर्तियो के सृजन मे मतिराम ने हेला और विव्वोक के मादक भावो से अधिक प्रयोजन नही रखा है। भाषा पर अबाध अधिकार रखने वाले कवि की अनुरागवती गृहवधू की मार्मिक और वास्तविक मूर्ति के दर्शन कीजिये—

१ केलि कै राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयो, भीतर बैठि कै बात सुनाई ।
जेठी पठाई गई दुलही, हँसि हेरि हरैं मतिराम बुलाई ।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्हीं सुगेह की देहरि पै धरि आई ।।

२ गौने के द्योस छ सातक बीते न, चौंकि कहा अबहीं चलि आई ।
लालन बाल के ता छिन में, मतिराम परी मुख मै पियराई ।
तू न वधू को पठाइ अरी यह, देखि दुहून की प्रीति सुहाई ।
रोये से लोचन मोये से रोचन, सोये न सोचन राति बिताई ।।

आचार्य और कवि देव पाडित्य, कवित्व शक्ति और मौलिकता मे अनुपम है यद्यपि मतिराम की भॉति इनकी भाषा मे सहज स्वाभाविक प्रवाह नही है परन्तु अर्थ की गभीरता और सरस वाक्य विन्यास मे वे अत्यत ही कुशल है । उस नायिका के प्रेमाधिक्य का वर्णन करते हुए जो एक ही दृष्टिपात से नायक पर रीझकर अपनी सुधबुध खो बैठी, कवि का कहना है–

१. धार में धाय धँसी निरधार ह्वै, जाय फँसी उकसीं न उधेरी ।
री ! अगराय गिरीं गहरी, गहि फेरे फिरीं न, घिरीं नहिं घेरी ।
देव कछू अपनो बस ना, रस लालच लाल चितै भई चेरी ।
वेगि ही बूडि गईं पँखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी ।।

२. औचक ही चितई भरि लोचन वा रस के बस ह्वै चुकी चेरियै ।
मोहक मोहू पै हौं नहीं सूझत बूझत स्याम घने तम घेरियै ।
आनंद के मन के नद में मन बूड़ि गयो हद में नहि हेरियै ।
कै उलटो सब लोक लगै किधौं देव करी उलटी मति मेरियै ।।

कवि दूलह की एक खडिता नायिका अवलोकनीय है—

उरज उरज धँसे, बसे उर आड़े लसे,
बिन गुन माल गरे धरे छवि छाए हौ ।
नैन कवि दूलह हैं राते तुतराते बैन,
देखे सुने सुख के समूह सरसाए हौ ।
जावक सो लाल भाल पलकन पीक लीकी,
प्यारे व्रजचंद सुचि सूरज सुहाए हौ ।
होत अरुनोद यहि कोद मति बसी आजु,
कौन घरबसी घरबसी कर आए हौ ।।

मनोभावो की गहराई और सूक्ष्मता के अपूर्व चित्रकार घनानद विरह की विदग्धता के निरूपण मे अप्रतिम है । कृष्ण के वियोग मे फाग ने व्रजबालाओ की दुर्दशा कर रखी है–

रंग लियो अबलानि के अंग तै च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सौंधे सकेलि मचाय दियो घन आनन्द ढोवा।
प्रान अबीरहिं फैंट भरें अति छाक्यो फिरै मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी ! ब्रज यो विरहा भयो फाग विगोवा॥

सहृदय समाज द्वारा समादृत, विस्तृत लोक ज्ञान रखने वाले, सूक्ति योजना मे बिहारी के समकक्ष और अनुभाव, हाव तथा अगज अलकारो की उत्तम अन्विति बिठाने वाले पदमाकर के कतिपय छद दृष्टव्य होगे।

१. फागु की भीर, अभीरन में गहि गोविंदै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पदमाकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीनि पितम्मर कम्मर तें सुविदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसकाय, लला फिरि आइयो खेलन होरी॥

२. ऐसी न देखी सुनी सजनी घनी बाढ़त जात वियोग की बाधा।
त्यौं पदमाकर मोहन को तब तें कल है न कहूँ पल आधा।
लाल गुलाल घलाघल में दृग ठोकर दै गई रूप अगाधा।
कै गई कै गई चेटक सी मन लै गई लै गई लै गई राधा॥

३ आरस सो आरत सम्हारत न सीस पट,
गजब गुजारत गरीबनि की धार पर।
कहै पदमाकर सुरा सो सरसार तैसे,
बिथुरि बिराजै हार हीरन के हार पर।
छाजत छबीले छिति छहर छरा के छोरे,
भोर उठि आई केलि मंदिर के द्वार पर।
एक पग भीतर और एक देहरी पै धरै,
एक कर कंज एक कर है किवार पर॥

भाषा और भाव की मधुरता मे पदमाकर के समक्ष तथा सरसता मे मतिराम की रचनाओं तक कभी-कभी पहुँचने वाली अद्भुत मिठास से भरी हुई बेनी प्रवीन की रचना से खडिता नायिका लीजिये—

१– भोर ही न्यौति गई ती तुम्है वह गोकुल गाँव की ग्वालिनि गोरी।
आधिक राति लौं बेनी प्रवीन कहा ढिग राखि करी बरजोरी।
आवै हँसी मोहिं देखत लालन, भाल में दीन्हीं महावर घोरी।
एते बड़े व्रज मंडल में न मिली कहूँ माँगेहू रचक रोरी॥

२–कालिह की गूँथी बबा की सौं मैं गज मोतिन की पहिरी अति आला।
आई कहाँ ते यहाँ पुखराज की संग एई जमुना तट वाला।
न्हात उतारी हौं बेनी प्रवीन, हँसे - सुनि नैनन नैन रसाला।
जानति ना अग की बदली, सबसो बदली बदली कहै माला।

भारत की पराधीनता मे शासको के हाथ बदले। मुसलमानो के बाद अग्रेजो ने इस देश पर अधिकार जमाया।

रीति युग के पश्चात् जब क्रमश नवीन भाषा और शैली का वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होने लगा तथा नवीन ढग की या वास्तविक राष्ट्रीयता को जन्म मिला, उस समय विचित्र प्रकार की अतर्दृष्टि तथा सहज बोध वाले साहित्यिक नेता भारतेदु हिदी जगत मे अवतरित हुए। उनकी प्रेरणा से हिदी मे सर्वतोमुखी उन्नति दिखाई पडने लगी। भारतेंदु की सहज उदारता, स्वाभाविक आनदप्रद रूप और प्राकृतिक सरलता ने हिदी को दैदीप्यमान कर दिया तथा इस सुधी को घेर कर सौरमडल बना। भारतेदु ने प्रेम के उभय पक्षो पर बडी गहराई और तन्मयता से लिखा है। देखिये, कृष्ण ने ऐसी दावाग्नि सुलगा दी कि राधा की अविरल अश्रुधारा भी उसे नही बुझा पाती—

बाढ्यौ करै दिन ही छिन ही छिन कोटि उपाय करौ न बुझाई।
दाहत लाज समाज सुखै गुरु को भय नीद सबै सँग लाई।
छीजत देह के साथ में प्रानहू हा हरिचँद करौं का उपाई।
क्योहू बुझै नहिं आँसू कै नीरन लालन कैसी दवारि लगाई।

भारतेन्दु के उपरात कर्मठ और योग्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का अविर्भाव हुआ जिनकी महती सेवा और उद्योग गे हिदी साहित्य के इस युग को द्विवेदी युग के नाम से अभिहित किया गया। द्विवेदी जी ने रीतियुगीन शृ गारी चित्रण की तीखी आलोचना की और साहित्य मे परपराओ से जकडी नारी के पाश काट कर उसे एक गौरवपूर्ण पद प्रदान किया तथा अपने पट्ट शिष्य मैथिलीशरण गुप्त को इस नवीन आदर्श की स्थापना के लिये प्रेरित किया। इस नई चेतना द्वारा प्रतिष्ठित हो शृगार ने स्वस्थता की करवट ली जिसके परिणामस्वरूप साहित्य मे पुरातन आदर्शमयी नारियाँ अपने तेजोमय चरित्र, साहस और दृढता लेकर सामने आई। राष्ट्रीय कवि गुप्त जी ने उपेक्षिता उर्मिला को सामने किया तथा यशोधरा के मिस नारी का उत्कर्ष पूर्ण चरित्र प्रस्तुत किया। नारी, नर के समक्ष उसकी प्रेरणा शक्ति और सर्वस्व बन कर अवतरित हुई—

१—एक नही दो दो मात्रायें नर से भारी नारी।
२—नर नारी सुख दुख के सगी।
३—पति से भी गति विशेष रखती है जाया।
४—भद्रे नर भाग्य यही पूछो स्वय शिव से।
शक्ति के बिना वे शव मात्र रह जावेंगे॥

आदर्श को नई चेतना देते हुए भी गुप्त जी ने मिलन और वियोग के भव्य और मार्मिक चित्र खीचे है। चौदह वर्ष की अवधि बिता कर लक्ष्मण

अयोध्या लौट रहे है। उर्मिला ने अपने यौवन के श्रेष्ठ चरण पति के वियोग मे बिता दिये तभी वह सखी द्वारा शृंगार करने की प्रेरणा पाने पर स्वाभाविक ही कह उठती है—

पर यौवन उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं।
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मैं॥

तथा

खोई अपनी हाय! कहाँ वह खिल खिल खेला।
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती बेला॥ —साकेत

और यशोधरा भी इस परिस्थिति की ओर सकेत कर देती है—

रोते प्राण उन्हें पायेंगे,
पर क्या गाते गाते।

गुप्त जी इसी कुशलता से सयोग-चित्रण की क्षमता भी रखते है। देखिये चित्रकूट मे लक्ष्मण और उर्मिला मिलन—

मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी।
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी॥

गुप्त जी की विरहिणी यशोधरा ने हृदय के करुणतम भावो को मनोरम उद्‌गारो के रूप मे निसृत होने पर उन्हे गान माना है। "उसकी हृदय रूपी वीणा से करुण गीत निकल रहे है। उसकी वेदना ही मीड की मसक है और उसकी हूक ही गमक है। वह चातक के आहुत किये हुए हृदय की पुकार है तथा मर्म पर प्रहार करने वाली कोयल की करुण कूक है और सबोधन करने वाले सारे राग मूर्च्छित पडे है" —

रुदन का हँसना ही तो गान-
गा गा कर रोती है मेरी, हृत्त्री की तान।
मीड मसक है कसक हमारी, और गमक है हूक;
चातक की हुत हृदय हूति जो सो कोइल की कूक।
राग हैं सब मूर्छित आह्वान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

प्रकृति-सौदर्य के उद्‌घाटक सुमित्रानदन पत ने प्रथम कवि को वियोगी बना कर गान को उसकी आहो से निष्पन्न बताया तथा काव्य को अश्रु रूप मे चुपचाप उमडकर उसकी आँखो से प्रवाहित होने वाला कहा—

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
उमड कर आँखो से चुपचाप बही होगी कविता अनजान॥

Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts.

अब देखिये, अपनी प्रेयसि द्वारा अपने प्रति प्रेम की स्वीकृति का प्रभावोत्पादक चित्रण—"चन्द्र की ज्योत्स्ना मे, अधकार के गह्वर मे, वायु के सन-सन स्वर मे, जल की लहर मे, सरल पुष्प की मुस्कान मे और लता के अधरो पर उस समय मुझे उत्सुकता के विचरण का आभास मिला—लगा, सारा वातावरण कुछ अनुकूल कहने के लिए व्यग्र हो रहा था। उस मुहूर्त मेरी मृगनयनी प्रेयसि ने अपनी पलके पृथ्वी से वक्ष देश होते हुए ऊपर क्या उठाई कि उनके साथ मेरी व्याकुलता भी बढ़ती गई परन्तु उसने एक पल भर के लिए मेरी दीप सी दृष्टि को अपनी प्रीति भरी श्यामल दृष्टि से स्निग्ध कर दिया"—

इदु की छवि में तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की बीचि में,
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में लता के अधर में।
निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप सी।

दार्शनिक छायावादी प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' ने धरती और आकाश सभी की बात लिखी परन्तु धरती की बहुत ही सशक्त और प्रभावशाली लिखी। उनकी 'जूही की कली' शीर्षक निम्न कविता किस रसिक को रतिभाव से आप्लावित न कर देगी—

सोती थी
जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा मांगी नहीं,
निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही—
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये कौन कहे ?
निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियो से
सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती,

चकित चितवन निज चारो ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रग प्यारे सग ।

महादेवी वर्मा अपने प्रियतम की प्रतीक्षा मे पाती है—"कल की असफल प्रतीक्षा सा ही आज का दिन भी व्यतीत हो गया और विरह के साथ मिलन की भावना भी एकीभूत हो गई परन्तु मेरी स्मृति निराश पुजारिन सदृश राह मे आँखे बिछाये रहती है । मेरी रग बिरगी भावनायें ही सायकालीन आकाश पर आच्छादित हो जाती है । प्रस्वेद से सिक्त मेरा रोमाच ही अधकार को तारागणो रूपी दीपावली से ज्योतित कर रहा है । वदिनी होकर भी मैं अखिल वधनो की स्वामिनी हूँ क्योकि ये वधन और विवशता मुझे प्रिय है । हे सखि, विरह की विक्षुब्ध करने वाली घडियाँ कुसुमाकर की रजनी मी मधुर और आकर्षक हो गई है"—

सजनि अंतर्हित हुआ है आज में धुँधला विफल कल;
हो गया है मिलन एकाकार मेरे विरह में मिल;
राह मेरी देखती
स्मृति अब निराश पुजारिनी सी !
फैलते है सांध्य नभ में भाव ही मेरे रँगीले;
तिमिरि की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले;
वन्दिनी बन कर हुई
मैं बन्धनो की स्वामिनी सी !

महादेवी की असीम वेदना उनकी रचनाओ की पक्तियो मे साकार होकर मुखरित हुई है—

मैं नीर भरी दुख की बदली ।
इस नभ का कोई भी कोना, अपना न हुआ न कभी होना;
परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल की मिट आज चली ।

प्रेम और सौदर्य के अप्रतिम गायक जयशकर प्रसाद ने प्रेमपथ का चित्र खीचते हुए लिखा है—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रात भवन में टिक रहना ।
किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं ।
अथवा उस आनंद भूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं ।

प्रेमी के हृदय मे वेदना का हाहाकार गरज रहा है और वह कह पडता है—

धीरे से वह उठता पुकार, मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

तथा अपनी विजडित व्याकुलता मे उसके स्वर निनादित होते हैं—

अरे कहीं देखा है तुमने मुझे प्यार करने वाले को।
मेरी आँखों में आकर फिर आँसू बन ढरने वाले को।

परन्तु हृदय की प्रतिध्वनि उसे रहस्य बताती है कि प्यार तो खोजने से प्राप्त होता है और प्रिय के देने पर ही मिलता है—

पागल रे मिलता है वह कब।
उसको तो देते ही हैं सब॥

और वह स्वभावत ही प्रार्थना और निवेदन के स्वर मे पुकारने लगता है—

मेरी आँखो की पुतली में
तू बन कर प्राण समा जा रे।

प्रसाद के काव्य का मूल स्वर करुण विप्रलभ है। कवि की आप बीती होने से वह और भी मर्मस्पर्शी है—

विष प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी नयन में
सौंदर्य छलक प्याले का
अब प्रेम बना जीवन में।

और प्रिय के रूप-दर्शन की यह विषभरी प्याली उसे आजीवन दु ख से विदग्ध करती रही क्योकि रूप दर्शन मात्र तक सयोग सीमित न रहा वरन् वह तो आगे बढकर—

परिरभ कुभ की मदिरा
निश्वास मलय के झोके;
मुख चंद्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुख धोके।

यहाँ तक जा पहुँचा इसी से तो वियोग के क्षण प्रेमी की वेदना की सीमा को निम्न भावभूमि तक पहुँचा सके—

मादकता से आये तुम
सज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे, उतरे हुए नशे से।

स्वतन्त्रता की लहर ने पाश्चात्य प्रभावो को दृढतर करके प्रगतिवादियो और प्रयोगवादियो को भी अधिक स्वच्छन्द बनाया। प्रेम के क्षेत्र मे छाया-वादियो की रही सही झिझक प्रयोगवादियो की प्रेमानुभूतियो की अभिव्यक्ति मे दूर हो गई। भारतभूषण अग्रवाल 'सागर की सीप' नामक अपने काव्य-संकलन मे लिखते है—

सो रही है रात गुम सुम
जागते हैं प्राण मेरे।
हैं बहुत खामोश मौसम
दे रहे पहरा सितारे।
ढल रही बेहोश शबनम,
उम्र की आवाज सुनकर
जग उठे अरमान मेरे।
सो रही है रात गुमसुम
जागते हैं प्राण मेरे।
आज तक गाया तुम्हे है
गीत ने भी प्रीत ने भी
पर नही पाया तुम्हें है
अब किसे पूजूं बताओ
हैं नहीं भगवान मेरे।
सो रही है रात गुम सुम
जागते है प्राण मेरे।

यदि प्रिय मिलने की प्रतिज्ञा करे और आश्वासन दे दे तो प्रेमी की कुमारी प्रीति सौ-सौ जन्मो तक उसकी प्रतीक्षा करेगी, युग-युग का असीम अवकाश क्षणवत् व्यतीत हो जावेगा। यह सब वियोग के उद्‌गार प्रिय की प्राप्ति हेतु ही हैं परन्तु भारतभूषण इसमे आगे भी उस प्रतीक्षा मे आकृति की चर्चा करते है। देखिये—

सौ सौ जनम प्रतीक्षा कर लूँ
प्रिय,मिलने का वचन भरो तो।
लट बिखराये जोग रमाये
प्रीत कुँआरी तुम्हें बुलाये !
बैरिन पीड़ा मेरे मन में
बिना धुएँ का हवन कराये
सूरज को अधरों पर धर लूँ
काजल कर आँजूं अँधियारी।
युग युग के पल छिन गिन-गिन कर
बाट निहारूँ प्राण तुम्हारी।
साँसो की जजीरें तोड़ूं
तुम प्राणो की अगन हरो तो।

सौ सौ जनम प्रतीक्षा कर लूँ
प्रिय मिलने का वचन भरो तो।

—सागर के सीप

इसी सग्रह की एक अन्य रचना मे वियुक्त प्रेमी ने अपने निर्मम प्रिय को बडे ही मार्मिक और उपालम्भ के स्वरो मे पुकारा है। अपनी हर साँस मे रमे हुए को प्रेमी का प्रत्येक आँसू, प्रत्येक वेदना की टीस एव प्रत्येक व्यथा का घाव प्रिय को पुकारता रहा परन्तु वह नही आया—

हम आज भी तुम्हारे तुम आज भी पराये,
सौ बार आँख रोई सौ बार याद आये।
इतना ही याद है अब वह प्यार का जमाना,
कुछ आँख छलछलाई कुछ ओठ मुसकुराये।
हर बार सोचता हूँ इस बार देख लूँगा,
पर खो गई नजर ही जब भी पलक उठाये।
तुम इस तरह रमे हो हर साँस में हमारी,
छिपते नहीं छिपाए, दिखते नही दिखाये।
बदनाम कर दिया है ऐसा गुनाह क्या था,
ले नाम सा तुम्हारा भर नींद मुसकुराये।
इस दर्द की कसम है तब तक न साँस लूँगा,
पत्थर नयन तुम्हारे जब तक न छलछलायें।
हर घाव ने बुलाया हर अश्रु ने बुलाया,
हर दर्द ने बुलाया बेदर्द तुम न आये।
हम सा न दूसरा है इतने बड़े जहाँ में,
जब प्यार ने बुलाया मंदिर से भाग आये॥

प्रेमी की एक ही रागिनी है और उसको जगाने की यदि किसी मे सामर्थ्य है, तो प्रिय मे—

एक मुझमे रागिनी है,
जो कि तुमसे जागनी है॥

दीपक की ज्योति मद हो चली, सवेरा हो गया और प्रिय न आया भारतभूषण 'ओ अप्रस्तुत मन' मे लिखते है—

काँपता है हिया
लौ भी झुक चली
अब जिन्दगी का दिया बुझना चाहता है,
ओट आंचल की इसे क्या तुम न दोगी ?

पर,
सबेरा हो गया है
नव उषा का हास पथ को धो गया है
कर रहा दिनकर किरण की भेंट चरणो में
स्वप्न का लोगी सहारा किसलिए इन क्षणो में ?
कब तलक यह व्यर्थ की आराधना होगी।
कह रहा है सूर्य कानों में प्रभाती कूक दो !
कह रहा है दीप प्राणो में अँधेरा फूँक दो।

—(व्यर्थ की आराधना)

इन कवियो मे सयोग के बाद ही वियोग की पीड़ा दिखाई पडती है। वियोग की अनुभूतियो से सयोग प्रत्यक्ष झाँकता है और प्रेयसि प्राय परकीया है। बालकृष्णराव के काव्य-सग्रह 'रात बीती' से 'मुग्धा का स्वप्न भग' शीर्षक रचना की कुछ पक्तियाँ देखिये—

एक ही थी राह आने की यहाँ तक
और उस पर मैं सबेरे से तुम्हारी
शाम तक करती रही अपलक प्रतीक्षा,
पर न आये तुम न पाई एक आहट।
सूर्य के ही साथ आशा क्षीण होनें,
साथ छाया के लगी थी श्रांति बढ़नें,
फूल माला में पड़े मुरझा रहे थे;
वायु भी लेने लगी थी साँस ठंढी।

अपनी मधुर कोमल भावनाये थोडे आवरण से प्रस्तुत करने वाले नागार्जुन अपने 'सतरगे पखो वाली' नामक सग्रह मे—

'कर गई चाक
तिमिर का सीना
जोत की फाँक
यह तुम थीं'

का रहस्य उद्घाटित करते हुए 'चातकी' की व्यथा के मिस कुछ और भी बता जाते है। अमित आशा और विश्वास लिए, वेदनाओ के विशाल इतिहास को हृदय पर लादे, काली घन-घटा पावस के सौन्दर्य जिसे न सुहाये, सातो सागर खारे लगे, उमडती नदियाँ फीकी लगी और मानसरोवर में भी मन न रमा—उसका प्यारा प्राणाधार जब मिला तभी उसे विश्रांति मिली और प्रिय से सवेदना की चार बूँदे ही पर्याप्त हुईं—

प्रतीक्षा थी, आस थी, विश्वास था
और, प्रियतम ! जले हिय पर लदा
वेदनाओं का विकट इतिहास था
कण्ठगत थे प्राण तेरे ध्यान में
निठुर जग तो ले रहा था रस यहाँ
'पी कहाँ' की मर्मवेधक तान में।
सुहाई न मुझको काली घन घटा
सुहाई न मुझको पावस की छटा
जलधि सातो ही मुझे खारे लगे
लगी फीकी उमड़ती नदियाँ सभी
चित्त पर मेरे न चढ़ पाया कभी।
वह सरोवर भी धवल कैलास का
टुकड़ियों में बँटे औ बिखरे हुए
धन्य ! स्वाती के जलद तुम धन्य हो
विकल थी चिर प्यास से यह चातकी
आगए तुम अब कमी किस बात की
किया दर्शन नयन शीतल हो गए
उपालम्भक भाव थे सब खो गए
आ गई है जान में अब जान रे
(चार बूँदें ही मुझे पर्याप्त थी।)

और धर्मवीर भारती ने अपनी 'कनुप्रिया' मे जन्मान्तरो की अनन्त पगडण्डी पर खडे होकर राधा को कृष्ण की प्रतीक्षा करते दिखाया है जिससे कि इस बार इतिहास बनाते समय वे अकेले ही न रह जावे, उनके साथ राधा को भी स्थान मिले। बडा ही गहरा और मार्मिक उपालम्भ भारती ने राधा से दिलाया है। परकीया राधा का नाम लोक मे कृष्ण के साथ जादू की तरह सिर पर चढकर बोला परन्तु कृष्ण के इतिहास मे वे अनुपस्थित है। कवि ने इस उपेक्षा को मुखरित कर दिया है—

क्या तुमने उस बेला मुझे बुलाया था कनु !
लो मैं सब छोड़ छाड़ कर आ गई।
इसीलिए तब
मैं तुममें बूँद की तरह विलीन नही हुई थी,
इसीलिए मैंने अस्वीकार कर दिया था
तुम्हारे गोलोक का कालावधिहीन रास,
क्योंकि मुझे फिर आना था।'·····

मैं आ गई हूँ प्रिय
मेरी वेणी में अग्नि पुष्प गूँथने वाली
तुम्हारी अँगुलियाँ
अब इतिहास में अर्थ क्यों नहीं गूँथतीं ?
तुमने मुझे पुकारा था न।
मैं पगडंडी के कठिन मोड़ पर
तुम्हारी प्रतीक्षा में
अडिग खड़ी हूँ कनु मेरे।

कवि ने राधा की पुरातन प्रीति तो साकार कर ही दी, उसकी कान्ह के लिए अडिग प्रतीक्षा जीवन के कठिन मोड पर बताकर उसके प्रेम की दृढता, धैर्य और साहस को मूर्तिमान कर दिया।

न जाने कितनी राधा भाव वाली प्रेयसियाँ अपने प्रियतमो की अवहेलना के फलस्वरूप जीवन के सघर्षमय कठिन मोड़ो पर आज भी कर प्रतीक्षा रही हैं।

'नील कुसुम' शीर्षक अपने सग्रह मे रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते है—

नहा कर सात रगों में
कहीं से वेदना आई;
उदासी या किसी ग़म की
उषा के लोक में छाई।
कसकती वेदना ऐसे कि
जैसे प्राण हिलते हो;
किरण सी फूटती मानो;
तिमिर में फूल खिलते हो।
अँधेरी रात में ज्यो बज
रही हो ज्योति की सरगम।
ढलकते गीत में मोती
चमकती आँख में शबनम।

—(गायक)

हरिवशराय 'बच्चन' ने लौकिक-अलौकिक सभी का सम्मिश्रण करते हुए 'मिलन यामिनी' मे लिखा—

खींचतीं तुम कौन ऐसे बन्धनों से
जो कि रुक सकता नहीं मैं।

और अपनी 'प्रणय पत्रिका' मे वियोग को उच्छ्वसित कर दिया है—

मेरी तो हर साँस मुखर है,
प्रिय तेरे सब मौन सँदेसे।

हर बार नई
होकर बिकती ·

—चक्रव्यूह

तथा 'तुम नही' शीर्षक कविता मे अपनी भग्न आशा से भी साक्षात् करा दिया—

यह जो एक स्पष्ट सौंदर्य
सहसा मेरी प्यासी आँखो में छलक आया,
ओठो से दूर,
सभव है रेत के किसी वीरान प्याले में
झूमती हुई मरीचिका हो,

तुम नही

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने 'अह से मेरे बडी हो तुम' मे बडे ही ढग से अपने प्रिय को या यो कहिए नारी को गौरव प्रदान किया है—

अह से मेरे बड़ी हो तुम !
क्योकि मेरी शक्तियो की—
हर पराजय जीत की
अतिम कड़ी हो तुम ।
जहाँ रुक कर
फिर नयी में टेक गढ़ता हूँ,
भूमि पैरो के तले मेरे न हो फिर भी
हर नये सघर्ष के विष शृग चढता हूँ,
क्योकि अतर में अतल गहरे
आस्था के टूटते असहाय रथ के चक्र थामे
नित खड़ी हो तुम ।

हिंदी साहित्य के इस सक्षिप्त परन्तु व्यापक सिहावलोकन से स्पष्ट है कि युग बदले, भाषा बदली, छद बदले, आदर्श बदले तथा कसौटियाँ बदली; गुलामी आई गुलामी गई परन्तु स्त्री और पुरुष के बीच अविकल-अविराम रूप से वर्तमान रहने वाले परस्पर आकर्षण के शाश्वत स्वच्छद प्रेम के बंधन न बदले।

इसमे कोई सदेह नही कि विरागियो ने अपनी शक्ति निष्फल होते देखकर नारी और काम पर नाना प्रकार के विद्रूप रचे तथा युग-युग मे नारी को छलना बताकर उसकी भर्त्सना की गई परन्तु इस सबसे नारी, उसके सौन्दर्य और उसकी आकर्षक शक्ति की निर्बलता सिद्ध न होकर उसकी सबलता का उद्घोष ही हुआ । दुनियाँ गवाह है और विश्व-साहित्य की लिखित साक्षी है कि मानव मन प्रेमानुभूतियो एव उनके मधुर सिचन मे ही पलता आया है और

आगे भी पलता रहेगा क्योकि यही उसका सबल है तथा यही उसकी प्रेरणा है। भाव हो, स्नेह हो या रति हो प्रेम के विविध रूप और विविध नाम ही मानव के चेतन-अचेतन मन पर एक छत्र अटल अधिकार किये हुए उसे परि-चालित करते रहते है।

स्त्री और पुरुष के परस्पर प्रेम और विश्वास ने जगत मे जो अलौकिक कार्य कर दिखाये है तथा गरिमामयी और महिमामयी नारी ने पुरुष को जिस आलोक पथ की ओर प्रेरित किया है तथा बढावा देकर साहस फूँका है वह शतशः अभिनदनीय और अभिवादनीय है।

हास्य रस

हिन्दी साहित्य का युगारम्भ वैसे ९-१०वी शताब्दी से ही हो गया था परन्तु एक विशिष्ट धारा और प्रशस्त प्रभावोत्पादक रूप मे वह १२वी शताब्दी से ही माना जाता है। यह १२वी शती का वह युग था जब भारत ने अपनी स्वाधीनता खोकर पराधीनता की तौक गले मे डाली थी। सन् ११९१-९२ ई० मे तराई के युद्ध मे दिल्ली के अतिम हिंदू सम्राट महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीय की पराजय हुई और आगामी दस वर्ष के अदर ही लगभग सारे उत्तर भारत पर आक्रमणकारी मुस्लिमों का शासन छा गया। तब से १५ अगस्त १९४७ ई० तक अर्थात् लगभग ७५० वर्षों तक परतत्रता की चक्की के पाट के नीचे पिसते हुए हिंदी भाषा भाषियो का साहित्य 'गुलामी के दिनो का साहित्य' है जिसमे दासता के गुणो का प्रतिबिम्ब भी देखने को मिल जाता है। यह कौन नही जानता कि दासता नरक सदृश है अथवा कहना अनुचित न होगा कि उससे भी कुछ बढकर सिद्ध है क्योकि नरक निवासियो के जीवन मे पापो का क्षय होने पर फिर सुखद घडियाँ अनिवार्य है किन्तु दासता के बधनो का स्वत कोई अत नही, वह असीम है। इससे सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि दासत्व काल मे भारतीय साहित्य मे ही क्या विश्व के किसी गुलाम देश के साहित्य मे विशुद्ध हास्य रस के दर्शन दुर्लभ है क्योकि इन परिस्थितियो मे आमोद, प्रमोद और आह्लाद की सभावना की कल्पना आशातीत है। हँसी स्वर्ग मे ही सभव है और नरक व्यग्य का उपयुक्त क्षेत्र है। व्यग्य की मूल प्रेरणा है असतोष और गुलामी की उर्वरा भूमि मे उसकी उपजाऊ खेती प्राकृतिक ही है।

आठवी शताब्दी के सिद्ध सरहपा का अपने मत के प्रतिपादन मे अपर धार्मिक विचारो का व्यंग्यात्मक खडन अपने युग के आकर्षक प्रचारो मे रहा होगा—

जइ णग्गाविय होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह।
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्बह।

पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।
उच्छ भोअणे होइ जाण, ता करिह तुरगह ॥

[अर्थात्–यदि नगे रहने से ही मुक्ति मिलती है तो श्वान और शृगाल क्यों नही मुक्त हो गए ? यदि लोम उखाडने से ही सिद्धि प्राप्त होती है तो स्त्रियाँ क्यो नही सिद्ध हो गई, उनके नितम्ब देश पर भी तो लोम नही होते ? मोरछल धारण करने से ही यदि मोक्ष दृष्टिगत हो जाता तो मोरो को तर जाना चाहिये था। उच्छिष्ट भोजन ही यदि ज्ञान का दाता है तो हाथी और घोडो को ज्ञानी हो जाना चाहिये था।]

पृथ्वीराजरासो मे कवि चदवरदायी और कान्यकुब्जेश्वर जयचद का वार्तालाप श्लेष वक्रोक्ति पूर्ण व्यग्य का एक अच्छा स्थल है जिसमे जयचद वरदायी को बैल और पृथ्वीराज को भील बनाकर आक्षेप प्रारम्भ करते है। यथा–

मुँह दरिद्र अरु तुच्छ तन जंगलराव सु हद्द।
वन उजार पसु तन चरन क्यो दूबरौ बरद्द ॥

चद का उत्तर –

चढ़ि तुरग चहुआन। आन फेरीत परद्धर ॥
तास जुद्ध मडयौ। जास जानयौ सबर बर ॥
केइक तकि गहि पात। केइ गहि डार मूर तर ॥
केइक दत तुछ त्रिन्न। गए दस दिसनि भाजि डर ॥
भुअ लोकत दिन अचिरिज भयौ। मान सबर बर मरदिया ॥
प्रथिराज षलन षद्धौ जु षर। सु यौं दुब्बरौ बरद्दिया ॥

रासो मे इस प्रसग के उत्तर-प्रत्युत्तर पठनीय है।

विद्यापति ने उमा और शकर के विवाह मे व्याजस्तुति करते हुए व्यग्यात्मक हास्य के अनेक छीटे दिये है। यथा–

मैना कहती है इस निर्मोही को मै अपनी कन्या का वर नही बनाऊँगी इसके शरीर पर बित्ता भर भी वस्त्र नही है और बाघबर को यह बगल मे दबाये रहता है (यह नही कि उसी को पहनकर लज्जा निवारण करे)–

नाहि करब हर बर निरमोहिया।
बित्ता भरि तन बसन न तिन्हका
बघछल काँखतर रहिया।

'शकर विवाह की वेदी पर पहुँचे और उनकी जटाओ ने छिटककर सारा मडप भर दिया। उनसे विधि करने को कहा जा रहा है परन्तु वे विधि न करने का हठ कर रहे हैं। अतत विधि करते हुए शकर घूम कर गिर पडे जिससे सर्परूपिणी रस्सी खुल गई (और बाघम्बर उघरने से वे दिगबर दिखाई पड़ गये); यह दृश्य देखकर श्री गौरी मुसकरा दी–

बइसल महादेव चौका चढ़ी।
जटा छिरिआओल माओल भरी॥
विधिकरु विधिकरु विधि करु करु।
विधि न करइ से हर हो हठ धरु॥
बिधिए करइत हर हो घुमि खसु।
सँसरि खसल फनि सिरि गौरी हँसु॥

चौराहे से कुरीतियो, अधविश्वासो और घातक रूढियो की खिल्ली उडाने वाले सत सम्राट कबीर की व्यंग्योक्तियाँ भी पूर्ववर्ती सिद्धो की वाणियो के समान कम चुभने वाली नही है। देखिए–

पाहन पूजे जो हरि मिलैं तो हम पुजें पहाड़।
ताते तो चक्की भली पीसि खाइ संसार॥
काँकर पाथर जोरि कै मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

व्यग्य और हास्य का अतर भलीभाँति समझने वाले हिदी साहित्य के अनेक पारखी है परन्तु सुजानता का दभ भरने वाले अजानो को ही भ्रम होता है जो हिदी की व्यग्य गर्भित रचनाओ को हास्य कहकर वैसा प्रचार करने से नही चूकते और प्रमादवश अपने बुद्धि-भ्रम का दूसरो मे प्रसार करते है। इनकी मोटी या खोटी बुद्धि छोडकर हम वस्तुस्थिति पर विचार करेगे। तुलसी की निम्न रचना लीजिये–

विध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे,
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि वृंद सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी, परसे पद मजुल कज तिहारे,
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि कानन कौं पग धारे।

काव्यकल्पद्रुमकार ने इसका हास्य रस के अतर्गत उल्लेख करके छोड दिया है परन्तु काव्यदर्पणकार ने इसे व्यग्यात्मक उपहास कहा है जो यथार्थता के अधिक समीप है। उपर्युक्त छंद मे गोस्वामी जी ने अपने समकालीन साधु समाज की गर्हित अन्तर्वृत्ति का परदा फाश किया है। शकर जी की बारात का प्रसग लेकर उनके द्वारा प्रस्तुत एक हास-परिहास का चित्र और देखिए–

कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहि बाजा॥
देखि शिवहि सुरतिय मुसकाही। बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥
वर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
विष्णु वचन सुनि सुर मुसकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥

बिहारी के निम्न दोहो मे सन्निहित व्यंग्य दृष्टव्य है—

अति धन लै अहसान कै पारो देत सराहि।
वैद वधू अति रहस सो रही नाह मुह चाहि॥

नपुसक रोगी से अत्यत धन लेकर भी एहसान जतलाने वाले और पारे के भस्म की गुणावली गाने वाले पुरुषत्वहीन वैद्य का मुख उसकी पत्नी मुसकरा कर इस आशय से देखने लगी कि 'वैद्य पहले अपना तो इलाज कर।'

परतिय दोष पुरान सुनि लखि मुलकी सुखदानि।
कसु करि आई मिश्र हूँ, मुँह आई मुसकानि॥

इसमे परस्त्रीगमिता के दोषी पडित को परकीयत्व दोष वर्णन करता पाकर कवि ने उसकी खबर ली है।

एक अन्य स्थल पर बिहारी ने उस ज्योतिषी का मजाक उडाया है जो अपने पुत्र के जन्म पर उस काल के योग-लग्न मे अपने पिता को मारने वाला योग पाकर शोक करने लगा था परन्तु उसी समय उसे ऐसा योग मिला जिससे सिद्ध हुआ कि उक्त पुत्र जारज सतान है और वह हर्षातिरेक मे इसलिये भर गया कि वह मृत्युपाश से छूट गया और उसके स्थान पर अब जार की मृत्यु होगी—

चित पित मारक जोग गनि, भयौ भयें सुत सोगु।
फिर हुलस्यौ जिय जोइसी, समुझें जारज-जोगु॥

हिंदी साहित्य की अधिकाश व्यग्यपूर्ण रचनायें व्यक्तिगत असतोष की प्रतिक्रिया स्वरूप रची गई हैं। भँडउआ रचना कवि के लिये आवश्यक मानने वाले शिव कवि शुक्ल रचित वैष्णव धर्म का उपहास देखिये—

मुच्छ मुंड मुंड सिर झोटई छोटि छोटि
छाया दिये मुँह बाए द्वार द्वार फिरिहौ।
ततुकार चर्मकार बाम बढई लोहार
सोनखर सोनार मिलि सबै भ्रष्ट करिहौ।
शिव कवि कहैं तेरे गरे में परेगो काठ
पूछिहौ न जाति पाँति जूठ खात फिरिहौ।
ऊधौ के विरोधी राधे गोपिन के श्राप ते
काहू कठमलिया के पाले पूत परिहौ॥

हिंदी मे कही बूढी हथिनी पाने पर, कही भेट मे छोटे आम दिये जाने पर कही हलकी रजाई की प्राप्ति पर, कही श्राद्ध में खराब पेडे पाने पर और कही लडाका पत्नी घर आ जाने पर कवि का अमर्षपूर्ण व्यग मुखरित हो उठा है।

१— **तिमिर लग लइ मोल चली बाबर के हलके।**
रही हुमायूं संग फेरि अकबर के दल के।
जहाँगीर जस लियो पीठि को भार हटायो।
शाहजहाँ करि न्याव ताहि पुनि माँड़ चटायो।

बल रहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरगजेब करिनी सोई लै दै दीन्ही कविराज कर ॥

२– चींटी की चलावै को ? मसा के मुख आप जाय
स्वास की पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाये मरु मरु के निहारे जात
अनु परमानु की समानता लगत है।
बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौं बखान करौं
मेरी जान ब्रह्म को विचारिबो सुगत है।
ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि
जाके आगे सरसो सुमेर सो लगत है ॥

३– कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो,
लीनी दाम थोरे जानि नई सुघरई है।
रायजू को रायजू रजाई दीन्हीं राजी ह्वै कै,
सहर में ठौर ठौर सुहरति भई है।
बेनी कवि पाय कै अबाय घरी द्वैक रहे,
कहत बनै न कछु ऐसी गति ठई है।
साँस लेत उड़िगो उपरला भितरला हू,
दिन द्वै की बाती हेतु रुई रहि गई है ॥

४– चींटी न चाटत मूसे न सूँघत बास सो माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में तब ते रहे हैजा परोसिन घेरे।
माटिहु में कछु स्वाद मिले इन्हैं खाय सो ढूँढ़त हर्र बहेरे।
चौंकि परो पितु लोक में बाप सो पूत के देखि सराध के पेरे ॥

५– होत ही प्रात जो घात करै नित पारै परोसिन सों कल गाढी।
हाथ नचावति मुंड खुजावति पौंरि खड़ी रिस कोटिक बाढी।
ऐसी बनी नख से सिख लौं व्रजचन्द ज्यौं क्रोध समुद्र तें काढी।
ईंट लिए बतरात भतार सो भामिनी भौन में भूत सी ठाढ़ी ॥

त्रिभुवन सुन्दरी राधा एव अन्य लावण्यमूर्तियाँ गोपिकायें जिसकी प्रियतमायें रही हो वह कृष्ण मथुरा की कुबडी (कुब्जा) दासी पर रीझ गया और उसे रतिदान दिया, यह जानकर गोपियो ने बडा व्यग्य किया। कवि ग्वाल के शब्दो मे उसे देखिये–

ऊधो तेरे यार ऐसे ह्वै है रिझवार जाय,
जानती विचार तो पै सूधौ हो न जायबो।
करती विचार भाँति भाँति के सुभाय भाय,
केती बड़ी बात हूती वाको अटकायबो।

'ग्वाल कवि' पीठिन पै एक एक हाँड़ी बाँधि,
नीके मनमोहन को करती रिझाइबो।
या तो कहूँ कोई बहुरूपिया तलास कर,
सीख लेती हम सब कूबर बनाइबो॥

आगरे वाले अलीमुहिब खाँ (प्रीतम) की 'खटमल बाईसी' का निम्न एक छद अनुकूल होगा जिसमे खटमल का आतक दिखाया गया है—

बाघन पै गयो, देखि बनन में रहे छपि
साँपन पै गयो, ते पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो, धूल डारत है सीस पर
बैदन पै गयो, काहू दारू न बताई है।
जब हहराय हम हरि के निकट गये
हरि मो सो कही तेरी मति भूल छाई है।
कोऊ ना उपाय, भटकत जनि डोलै, सुन
खाट के नगर खटमल की दुहाई है॥

इस छंद मे खटमल के मोर्चे से विश्व की सभी प्रबल शक्तियाँ पराङ्मुख हो गई और मानव को विजेता खटमल की दुहाई देने के लिए विवश होना पडा।

पदमाकर रचित भगवान् शकर का विवाह अवलोकनीय है—

हँसि हँसि भाजैं देखि दूलह दिगंबर को,
पाहुनी जे आवें हिमाचल के उछाह में।
कहै पदमाकर सु काहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसेई तहाँ राह में।
मगन भयेऊ हँसै नगन महेस ठाढ़े,
औरै हँसे येऊ हँसि हँसि कै उमाह में।
सीस पर गङ्गा हँसै भुजनि भुजङ्गा हँसै,
हास ही को दङ्गा भयौ नङ्गा के विवाह में॥

तथा

कर मूसर नाचत नगन, लखि हलधर को स्वाँग।
हँसि हँसि गोपी फिरि हँसै, मनहुँ पिये सी भाँग॥

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' का उद्घोष करने वाले चतुर्मुखी साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न भारतेन्दु ने अनेक व्यग्यात्मक छद लिखे है। कुछ देखिये—

१—चूरन का लटका—

चूरन अमलै सब जो खावैं, दूनी रिशवत तुरत पचावै।
चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकल अजीरन रोग।

हिंदू चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम।
चूरन साहब लोग है खाते, सारा हिंद हजम कर जाते ॥

२–रूप दिखावत सरवस लूटै फदे में जो पड़े न छूटै।
कपट कटारी हिय मा हूलिस क्यों सखि साजन नहिं सखि पूलिस ॥

३–भीतर भीतर सब रस चूसै हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन मे अति तेज क्यो सखि साजन नहिं अङ्गरेज ॥

'चौबे का चिट्ठा' व्यग्यात्मक हास्य का भडार है। प्रतापनारायण मिश्र की व्यग्य हास्यपूर्ण रचनाये प्रसिद्ध ही हैं–"अरे बुढापा तोहरे मारे अब तौ हम नकुनाय गयन" शीर्षक रचना बहुतो ने पढी होगी। हास्य, वीभत्स और शृगार पर प्रमुख रूप से लिखने वाले तथा नवीन प्रणालियो का सन्निवेश करने वाले प० नाथूराम शकर शर्मा का 'गर्भरडारहस्य' व्यग्यपूर्ण हास्य का खजाना है।

बाल-विनोद का एक हास्यात्मक वर्णन गुप्त जी के द्वारा प्रस्तुत भी देखिये–

जयति कुमार अभियोग गिरा गौरी प्रति,
सगण गिरीस जिसे सुन मुसकाते है।
देखो अब ये हेरम्ब मानस के तीर पर
तुंदिल शरीर एक ऊधम मचाते है।
गोद भरे मोदक धरे है सविनोद उन्हे
सूँड़ से उठा के मुझे देने को दिखाते है।
देते नही कदुक सा ऊपर उछालते है
ऊपर ही झेल कर खेल कर खाते है।

जनकपुरी की रमणियो ने खीर खाकर दशरथ के पुत्रो की उत्पत्ति पर देखिये किस प्रकार चुटकी ली है–

अति उदार करतूतिदार सब अवधपुरी की बामा।
खीर खाय पैदा सुत करतीं पति कर कछू न कामा ॥

परन्तु राम भी अवसर चूकने वाले नही है। सीता जी राजा जनक को खेत में हल जोतते हुए प्राप्त हुई है। यह वे जानते है अस्तु तुरत ही उत्तर देते है–

कोउ न जनमे मात पिता बिन बँधी वेद की नीती।
तुम्हरे तो महि ते सब उपजे अस हमरे नहि रीती ॥

सूर, रसखान, तुलसी, सत्यनारायण कविरत्न आदि की रचनाओ की अनुकृति पर व्यग्यात्मक कृतियाँ (Parodies) भी देखने मे आई है। रसखान की 'या लकुटी अरु कामरिया' के ढग पर एक निर्धन कृषक का चित्र देखिये–

या खुरपी अरु फावरिया पर घास भरी गठरी तजि डारौं।
पैर चलाइबे खेत नराइबे को दुख भैंस चराय बिसारौं।

रसखान कबौ इन हाथन सो पटवारी-दरोगा के पायँ पखारौं।
खौंसि के छानि कौ फूंस फटेरो महाजन की मुड़िया पहँ मारौं॥

और तुलसी की मानस की प्रणाली पर प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा की रचना का निम्न अश दृष्टव्य है—

घन घमण्ड गरजत नभ घोरा। टका हीन कलपत मन मोरा॥
दामिनि दमकि रही घन माही। जिमि लीडर की मति थिर नाहीं॥

निराला जी ने कान्यकुब्ज ब्राह्मणो के स्वभाव और उनमे फैली हुई कुरीतियो पर गहरे व्यग्य के छीटे कसे है-

ये कान्यकुब्ज कुल कुलागार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय वेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल नही सुजल। ..
वे जो जमुना के से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यो पिये, तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते घोर गंध
उन चरणो को मैं यथा अंध,
कल घ्राण प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह!

—सरोज-स्मृति

किसी व्यक्ति द्वारा किये गये हास्य और व्यग्य को सुनकर हम शीघ्र ही जान सकते है कि वह समाज के किस स्तर का है।

इस प्रकरण मे आचार्य ललिताप्रसाद जी सुकुल के निम्न वाक्य भी विचारणीय होगें—"यह प्रबलता केवल उपहास की ही है कि अनुभूति के ही क्षणो मे उक्तियाँ अपने गहरे से गहरे रग मे फुलझडियो की तरह झरने लगती है, दर्शक के लिए सुन्दर किंतु छूने वाले के लिए अग्नि का दाह। उपहास-जन्य काव्य को विशुद्ध काव्य न कह कर काव्य-कौशल कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा क्योकि विशुद्ध काव्य की प्रेरणा का स्थल तथा उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया का केन्द्र केवल हृदय होता है तभी रस उसका प्राण हो सकता है। किन्तु व्यग्य प्रधान उपोक्ति काव्य की प्रेरणा का स्थल केवल हृदय ही नही वरन्

मस्तिष्क भी होता है और उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया भी केवल हृदय तक ही सीमित नही रहती वरन् हृदय और मस्तिष्क दोनो ही उससे प्रभावित होते रहते है। इसीलिये इस कला मे कौशल का प्राधान्य अधिक रहता है।"[१]

और प्रो० शिवाधार पाडे का महत्वपूर्ण निर्णय भी जान लेना आवश्यक होगा—"हिंदी साहित्य मे सच्चे हास्य का क्षेत्र अभी बहुत कुछ सूना ही पडा है। हमारा गद्य बहुत पुराना नही है। नाटक इने-गिने। उपन्यास निबन्ध अभी कुछ-कुछ चहके है। कवियो ने व्यग्य को ही अपनाया जिसे कविता का शत्रु कहा गया है और अब राजनैतिक दल भी उसी ओर जा रहे है, हास्य सम्बन्धी पत्र भी। सच्ची हँसी, हँसी की पत्रिकाओ मे नही मिलती, मिलती है सच्चे साहित्य मे। हमारे नये-पुराने पचानद कहाँ तक हास्य-सागर मे पैर पाये है, इसका उनकी चुटैया को भी पता नही। यहाँ न लम्बीदाढी ही की चल पाई न कवि चच्चा ही की। जब तक हिदी गद्य उन्नत नही, हँसी के दर्शन दुर्लभ रहेगे। यहाँ न विदूषको का बूता है न प्रहसनो का, न उपरूपको का यह हास्य—चक्रवर्ती सच्ची हँसी को "हसन्नपि नृपो हन्ति" सच्चा कर दिखाते है।

वीर रस

हिंदी साहित्य युद्धवीर रस प्रधान है। हिंदी साहित्य मे वीर रस पर विचार करने के साथ स्वतत्र भारत से लेकर परतत्र भारत के उद्योग और अत मे पुन स्वतत्रता प्राप्ति तक के आठ सौ वर्षो के इतिहास पर ध्यान रखना आवश्यक होगा। इस काल के हिदी के वीर साहित्य को मुख्यतः हमे तीन भागो मे बॉट देना चाहिए, क्योकि इनमे हमे तीन भिन्न धाराओ और तीन पृथक् शैलियो के दर्शन होते है।

दुष्प्राप्य वीर प्रबध—काव्य खुमान-रासो और प्रोषितपतिका नायिका का वर्णन करने वाले तथाकथित वीर-गीत (Ballad) वीसलदेव रासो की चर्चा को छोडकर हम देखते है कि प्रौढ़ हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ १२ वी शताब्दी के वीर गाथा-काल से होता है जब कि भारतवर्ष स्वतत्र था, परन्तु आजादी के खतरे का घंटा ज़ोरो से बज रहा था और वह आखिर जाकर ही रही। भारतीय सम्राटो और मुस्लिम आक्रमणकारियो के उन महान् सघर्षो का ऐतिहासिक और शैलीबद्ध विवरण हमे जयानक रचित पृथ्वीराजविजय मे मिलता है। हिन्दू वीरता के प्रतीक तत्कालीन दिल्लीश्वर चौहान पृथ्वीराज तृतीय ने रणभेरी के तुमुल

१—काव्य चर्चा, पृ०७५,

२—चेतना, वर्ष १, संवत् २००६, अक १०, पृ० २०;

नाद पर क्षत्रियो को देश-शत्रु से मोर्चा लेने के लिए ललकारा था और उसी समय का यह घोष हमे चन्दवरदायी द्वारा पढने को मिलता है-

मरना जाना हक्क है । जुग्ग रहेगी गल्हाँ ।।
सा पुरसाँ का जीवना । थोड़ाई है भल्लाँ ।।

६४।१६८।। पृ० रा०

अथवा- जीविते लभ्यते लक्ष्मी मृते चापि सुरांगणा ।
क्षणे विध्वसिनी काया का चिन्ता मरणे रणे ।।

६१।१८२५।। पृ० रा०

एक ओर महोबा के शासक परमर्दिदेव (उपनाम परमाल) के ख्यातनामा सरदारो आल्हा और ऊदल की अद्भुत वीरता और रण-कुशलता को सतत् अमर करने वाले जगनिक कुत्तो की आयु बारह वर्ष और शृगालो की आयु तेरह वर्ष का उदाहरण देते हुए क्षत्रियों को अठारह वर्ष से अधिक जीवन की इच्छा करने पर धिक्कार भेज रहे थे । देखिये

बारह बरस लै कूकर जीयें औ तेरह लौं जियें सियार ।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवें । आगे जीवन कै धिक्कार ।

—आल्हा खण्ड

मरना मानव का स्वाभाविक धर्म बतलाकर वे क्षत्रिय को रणक्षेत्र में जूझ जाने और अपना नाम अमर कर जाने का आदेश दे रहे थे—

मरना मरना है दुनियाँ मा । यक दिन मरि जैहै ससार ।।
स्वर्ग मढ़ैया सब काहू कै । कोऊ आज मरे कोऊ काल ।
खटिया परिकै जो मरि जैहो । कोऊ न लैहै नाम अगार ।
चढ़ी अनी पै जो मरि जैहो । तुम्हरो नाम अमर होइ जाय ।
जो मरि जैहो खटिया परि के । कागा गिद्ध न खैहैं माँस ।
जो मरि जैहौ रण-खेतन में । तौ जस रहे देश में छाय ।
मरद बनाये मरि जैबो को । जो खटिया पै मरे बलाय ।।

—आल्ह खण्ड

जगनिक के गीतकाव्य की प्रतिध्वनि साढे सात सौ वर्षो से जनता के कठ मे गूँजती हुई चली आ रही है । उसमे नये शब्द तो है ही, परन्तु वस्तु मे भी अनेक परिवर्तन हो गये है । कुछ भी हो जगनिक के आल्हा छदो की फड़का देने वाली प्रेरणा आज भी इसमे अक्षुण्ण है ।

दूसरी ओर बिज्जाहूर (विद्याधर) काशी नरेश जयचन्द की प्रबल वाहिनी के अभियानात्मक प्रयाण (Aggressive March) का आतक इस प्रकार रजित कर रहे थे—

जो किज्जिअ धाला जिणु णिब्बाला, भोट्टंता पिट्टंत चले।
भंजाबिअ चीणा दप्पहि हीणा, लोहाबल हाकद पले।
ओड्डा उड्डाबिअ कित्ती पाबिअ, मोलिअ मालव राअ बले।
तेलंगा भग्गिअ पुणबिण लग्गिअ, कासीराआ जखण चले।

१६८। प्राकृत पैङ्गलम्

उन काशीराज के आगे हाथियो की पक्तियाँ और वीरो के वर्ग नही ठहर सकते थे–

रे गोड थक्कंति ते हत्थिथ जूहाइ।
पल्लट्टि जुज्झ तु पाइक्क बूहाइ।
कासीस राआ सरासार अग्गेण।
कि हत्थि कि पत्ति कि वीर वग्गेण।

१३२-प्राकृत पैंगलम्

परन्तु पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष ने भारत का भाग्य पलट दिया। पृथ्वीराज हार गये, जयचन्द भी पराजित हुए और मुस्लिमो ने भारत के अधिकाश-मध्य और पश्चिमी–भू भाग पर अधिकार कर लिया। वे जम गए और क्रमश दृढ होने लगे तथा शनै -शनै अधिकाश उत्तर भारत पर उनका अधिकार हो गया।

सुल्तान गोरी तथा उससे कुछ काल बाद तक के काल का वीर काव्य आने वाले समय मे रचे गये वीर काव्य से अशत भिन्न है। गुलामी की इन प्रारम्भिक सदियो की वीर रचनाये जागृति और प्रोत्साहन के गीतो की प्रतिबिम्ब है। तेरहवी शताब्दी मे प्रादुर्भूत होने वाले अहिंसा परमोधर्म के सिद्धान्तो को मानने वाले जैन मतावलबी आचार्य हेमचन्द्र भी सामयिक परिस्थितियो के प्रभाव मे अपने को मुक्त न कर पा के तलवार के गीत गा उठे–

खग्ग बिसाहिउ जहिं लहहुँ, पिय तहिं देसहिं जाहुँ।
रण दुब्भिक्खे भग्गाइं, बिणु जुज्झें न वलाहुँ॥

८-४-३८६।१।शब्दा०

एक दूसरी उक्ति भी विचारणीय है। वीर (रमणी) ने युद्ध भूमि मे अपने पति के मारे जाने पर सतोष प्रकट किया, क्योकि यदि वह रण से भाग आता तो उसे अपनी समवयस्काओं मे लज्जित होना पडता।

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कतु
लज्जेजन्तु वयसियहु जइ भग्गा घर एतु॥

८-४-३५१।११। शब्दानुशासनम्

जैनाचार्य के ऐसे उदाहरण तत्कालीन स्त्रियो और विशेष कर क्षत्राणियो के क्षात्र तेज पर तीव्र प्रकाश डालते हैं।

गुलामी मे जकड़े जाकर और रात दिन अत्याचारो के शिकार बने रहने पर

भी आजादी की हूक तो उठती ही रही होगी। राणा हमीर, राणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल आदि वीर पुगवो ने अपने समकालीन मुस्लिम बादशाहो से लोहा लिया और उनके कृत्यो के वीर गान हमे शार्ङ्गधर, भूषण, लाल जैसे कवियो की उत्साह प्रसविनी लेखनी से मिलते रहे। देखिये राणा हमीर का प्रयाण और उसका प्रभाव—

भजिअ मलअ चोल बइ णिबलिअ गंजिअ गुज्जरा।
मालब राअ मलअगिरि लुक्किअ परिहरि कुंजरा।
खुरासाण खुहिअ रण मह मुहिअ लघिअ साअरा।
हम्मीर चलिअ हारब पलिअ रिउगणह काअरा॥

१५१, प्रा० पैं० (शार्ङ्गधर)

मालवा, कर्णाटक, गुर्जर (गुजरात), बग, ओड्र (उडीसा) आदि प्रदेशो को विजित करने वाले, म्लेच्छो को कँपाने वाले और अपनी कीर्ति स्थापित करने वाले सम्राट का वर्णन देखिये—

भजिआ मालवा गजिआ कण्णला।
जिण्णिआ गुज्जरा लुठिआ कुंजरा।
बंगला भंगला ओड्डिआ मोड्डिआ।
मेच्छआ कपिआ कित्तिआ थप्पिआ॥

१२८, (प्रा० पैं०) अज्ञात

अन्हलवाडापाटन के सूबेदार ज़फरखाँ पर ईडर नरेश रणमल्ल राठौर की विजय स्वरूप स० १५४५ वि० मे लिखे गये छन्दो में अतीव उल्लास और ओज के हमे दर्शन होते है। उदाहरणस्वरूप देखिये -

ढमढमइ ढमढमकार ढंकर ढोल ढोली जंगिआ।
सुर करहि रण-सहणाइ समुहरि सरस रसि समरगिआ।
कलकलहि काहल कोडि कलरवि कुमल कारय थरहरइ।
सचरइ शक सुरताण साहण साहसी सवि संगरइ॥

इस काल मे दो प्रकार की वीर रसात्मक रचनायें देखने मे आती है। एक प्रकार की उन वीर पुगवो के विषय मे है, जिन्होने विदेशी मुस्लिमो को अपने देश की सत्ता हथियाने के कारण (जैसे राणा साँगा आदि ने) उनका विरोध करना अपना धर्म समझा था, या उनके द्वारा अपने प्रदेशो पर आक्रमण किये जाने पर (जैसे राणा हमीर, राणा प्रताप, राण राजसिंह आदि ने) उनसे लोहा लिया था अथवा मुस्लिम शासनकर्त्ताओ के अत्याचारो से पीडित होकर हिन्दुओ का पुनः साम्राज्य कायम करने के हेतु (जैसे शिवाजी, छत्रसाल आदि ने उद्योगशील होने के लिए प्रोत्साहित किया था तथा इस प्रकार अपने शौर्य और पराक्रम का परिचय देकर हिन्दू जनता को उज्ज्वल भविष्य की आशा

दिखलाई थी। और दूसरे प्रकार की उन व्यक्तियो के सबध मे है, जिन्होने सासारिक जीवन तथा ऐश्वर्य की चाह मे मुसलमानो की दासता स्वीकार कर ली थी या उनको अपनी बेटियाँ व्याह दी थी अथवा कभी-कभी धर्म परिवर्तन भी कर लिया था। इस दूसरे वर्ग के पौरुष का गान करने वाले थे, इन्ही की सी लिप्सा रखने वाले उनके दरबारी कवि। यद्यपि इन रचनाओ का समादर नही हुआ तथापि लिखी तो वे गई ही।

१३वी शताब्दी के मैथिल कोकिल विद्यापति की पूरबी अपभ्रश मे लिखी कीर्तिलता को देखिए। इसमे तिरहुत के राजा कीर्तिसिह के शौर्य का और यश का वर्णन है, जो अपने राज्य की प्राप्ति हेतु जौनपुर के सुलतानपुर इब्राहीम शाह को चढा लाए थे। गनीमत इतनी ही हुई कि किसी हिन्दू पर नही वरन मुसलमान नवाव असलान पर। इस परिस्थिति विशेष को भुलाकर यदि हम विचार करे तो हमे अत्याचारी नवाब असलान का दमन करने के लिए बढती हुई सुलतान की वाहिनी का वीरोचित उत्साह पर्याप्त आनन्द दे सकेगा। यथा—

गिरि टरइ महि पड़इ नाग मन कपिआ।
तरणि रथ गगन पथ धूलि भरे झंपिआ।
तबल शत बाज कत भेरि भरे फुक्किआ।
पणव घण सद्द हुअ णर, रव लुक्किआ।
तुलुक लष हरखं हस अग्र धस फालहीं।
मानधर मारि कट कट्टि करवालहीं।
मअ गणइ पअ पलइ भागि चलइ ज खणे।
सत्तु धर उपज डर निंद नहि झखणे।
खग्ग लइ गब्ब कइ तुलुक तब जुज्झइ।
सोखि जल किअउ थल पत्ति पअ भारहीं।
जानि धुअ सक हुअ सअल ससारहीं।
केलि करि बाँधि धरि चरण तल अप्पिआ।
केलि पर नमि कर अप्पु करे थप्पिआ॥

तृतीय पल्लव, पृ० ६६, ना० प्र० सस्करण—
स० १९८६ वि०

छत्रपति शिवाजी का गुणगान करने वाले और हिन्दू राष्ट्र चेतना के उन्नायक कवि भूषण रचित शिवराज भूषण को कौन नही जानता। शिवाजी के आतक से बादशाहो की हरमे नरम पड गई।[1] उनकी

---

१. केती परी नरम हरम बादशाहन की,
नासपाती खाती ते बनासपाती खाती है॥ (९, १०. शि० बा०)

छातियो मे धडकन पैदा हो गई।[१] चकत्ता के घराने की सम्पत्ति खोटी हो गई।[२]

म्लेच्छ वश पर सरजा शिवाजी का भय छा गया[३] और दिल्ली डूबने लगी, क्योकि महाकाल शिवराज का धक्का आकर लगा।[४] भूषण की रचनाये आश्रयदाताओ की प्रशसा की परम्परा का अनुकरण नही करती वरन् सच्ची वीरता की प्रशस्तियाँ है, इसी से आज भी वे हमे फडका देने की क्षमता रखती है। बुन्देला महाराज छत्रसाल की प्रशसा मे निम्न छन्द दृष्टव्य है —

> हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सम,
> पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।
> भूषण भनत तहाँ चपति को छत्रसाल,
> रोक्यौ रन ख्याल ह्वैके ढाल हिन्दुआने की।
> कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे,
> रजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की।
> सेर अफगन सेन सगर सुतन लागी,
> कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की।।
>
> ८, छत्रसाल दशक

औरगजेब के मरने पर ३९ वर्षो के अन्दर ही मुगल साम्राज्य एक कहानी मात्र रह गया।[५] पूर्ववर्ती देशभक्त हिन्दू वीरो के बलिदान व्यर्थ नही गए और भारत मे एक बार पुन हिन्दू साम्राज्य की कल्पना मरहठा उत्थान काल मे सजीव हो उठी, पानीपत के अहमदशाह अब्दाली वाले युद्ध का परिणाम उलटा ही होता यदि भरतपुर के पराक्रमी जाट नरेश सूरजमल जिनकी कीर्ति सूदन ने सुर्जनचरित्र मे गाई है, तटस्थ न रहते।

यह ठीक है कि कवि इनिहासकार नही होता कि घटनाओ का ज्यो का त्यो वर्णन करे। अनुरूप रस आदि के लिए वह अतिशयोक्ति आदि का बहुधा

---

१. राजा शिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते बादशाहन की छाती धरकति है।। ४१ शि० बा०

२. मोटी भई चण्डी बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भई सपत्ति चकत्ता के घराने की। ४६, शि० बा०

३ तेज तम अश पर कान्ह जिमि कस पर,
त्यो मलेच्छ वश पर सेर शिवराज है।। ३७, शि० भू०

४ बूडति है दिल्ली सँभारै क्यो न दिल्लीपति
धक्का आनि लाग्यौ सिवराज महाकाल को।। ३४, शि० भू०

5. Nadir Shah in India, Sir Jadunath Sarkar, P. I;

आश्रय लेता है परन्तु यदि अत्युक्तियो का घटाटोप कर दिया जाय तो वह सत्य से कोसो दूर कोरी कल्पना रह जाती है। यह बात बहुत कुछ उन कवियो की रचनाओ के विषय मे चरितार्थ होती है जिनके आश्रयदाताओ ने अपने जीवन मे सभवतः एक चुहिया भी न मारी-हो, परतु उनकी वीरता के गीत लासानी है। उदाहरणार्थ दो छन्द लीजिए—

कूरम नरिंद गजसिंह जू के चढ़े दल,
लंक लौं अतंक बक सक सरसाती है।
भनत कविन्द बाजै दुन्दुभी धुकार भारी,
धरा धसमसै गिरि पाँती डगलाती हैं।
कमठ की पीठि पर सेस के सहस फन,
दिया लौं दबात उमगात अधिकाती हैं।
फनन तै बाहर निसरि द्वै हजार जीभैं,
स्याह-स्याह बाती लौं बुझाती रहि जाती है॥

—कवीन्द्र, १७वीं शती

तथा—

बारा बाँधि बल को दुलारा रूप कीरति को,
चढ्यौ दै नगारा धूरि धारा नभ छावती।
कहै घनश्याम घटा घन की घमण्डन की,
दमकी उमंगनि महोदधि मचावती।
जागी जोर जाम की जमानन की जुरे जोर,
जो लौं जागरे की जोर जी मैं उपजावती।
परन परा पै परे तोप की तरा पै परे,
राँपै पाँय धरतै धरा पै धाकैं धावती॥

—घनश्याम शुक्ल, १६वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

इस युग के वीर रसात्मक अन्य चार प्रबध काव्य है —

१— श्रीधर का जगनामा (सन् १७११ ई० के लगभग) जिसमे जहाँदार-शाह तथा फर्रुखशियर के बीच होने वाले तीन युद्धो का वर्णन है और जो धन प्राप्ति के लोभ के कारण फर्रुखशियर को चरितनायक बनाने से गौण ख्याति वाला हो गया है।

२— पद्माकर की हिम्मत-बहादुर-विरुदावली (सन् १७६८-६६ ई० के लगभग) जिसमे रजधान के गुसाँई अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर की प्रशसा और युद्धो का उल्लेख है।

३— जोधराज कृत हम्मीररासो (सन् १८२८ ई०) जिसमे राणा हम्मीर और अलाउद्दीन का युद्ध वर्णित है।

४– तथा 'तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार' के प्रणेता हम्मीर हठ (सन् १८४६ ई०) के रचयिता चन्द्रशेखर वाजपेयी।

सूर्य्यमल्ल मिश्रण की अपूर्ण वीर सतसई भी १८वी शताब्दी की एक श्रेष्ठ वीर मुक्तक काव्य रचना है।

जैसा विदित ही है कि आपस की फूट ने हिन्दू राज्य की कल्पना के स्वप्न को छिन्न-भिन्न कर दिया और अंग्रेज भारत मे आ जमे। इन्होने सफल फूट-नीति के द्वारा भारत के हिन्दू और मुसलमान शासको को अपने वशीभूत कर लिया। परन्तु उनकी यह चाल अधिक दिनो तक छिपी न रह सकी और अब तक परस्पर विरोधी हिन्दू और मुसलमान इस विदेशी सत्ता को अपने ऊपर आरूढ होते देखकर एक हो गये। ईसवी १९वी शती का मध्य परिस्थितिवश स्वाभाविक, परन्तु इस अपूर्व मेल का काल था। इस एकीकरण का परिणाम शीघ्र ही सामने आया और यह था देशव्यापी सन् १८५७ ई० का सशस्त्र सामूहिक विद्रोह 'स्वतत्रता के शैल-शिखर पर अपना ध्वज फहराते', वीर मानुसी वसुधा पर सम्राट बहादुरशाह, रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, कुँवर सिंह, ताँतिया टोपे, राणा वेणी माधव सिह आदि के नेतृत्व मे लाखो लाखो भारत माँ के सपूत अपनी कुर्बानी देने के लिए अग्रसर हुए थे। कौन नही जानता कि आज़ादी के दीवाने; ये गाज़ी भारत की जनता के दिलो मे तूफान पैदा करते हुए आगे बढे थे। भारत मे शस्त्र बल का यह अतिम विरोध था। अंग्रेजो के पैर प्राय: उखड चुके थे, परन्तु उनका भाग्य प्रबल था और उनकी विजय हुई। अतिम मुगुल सम्राट बहादुरशाह द्वितीय को बन्दी बनाकर रगून भेजा गया, जहाँ उनकी मृत्यु हुई। परन्तु उस शहीद की वाणी, जो उसके मजार पर लिखी है आज भी हमारे अन्दर एक तूफान उठा देती है—

गाज़ियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।
तब तो लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दोस्तान की॥

अंग्रेजो की सत्ता जम गई और उन्होने नि:शस्त्रीकरण योजना द्वारा सामूहिक शस्त्र विरोध का मार्ग सदा के लिए बद कर दिया। साथ ही प्रतिशोध और दमन की भावना ने इतिहास को कलकित करने वाले ऐसे क्रूर और नृशस अत्याचार अंग्रेजो के द्वारा किये गए कि कुछ क्षणो के लिए ऐसा जान पडने लगा कि साहस, उत्साह और आत्मसम्मान की भावना भारतीयो को सदा के लिए छोड जायेगी, लेकिन यह आतक क्षणिक ही था। इस क्राति के १८ वर्षों के उपरान्त ही यानी १८७५-७६ ई० मे भारतेदु बाबू हरिश्चन्द्र ने कौशल पूर्वक अपने विविध नाटको मे शासक वर्ग की आलोचना प्रारभ कर दी थी–

भीतर-भीतर सब रस चूसे, बाहर से तन मन धन मूसै॥
जाहिर बातन में अति तेज, क्यो सखि साजन नहिं अंग्रेज॥

तथा अग्रेजो की नीति का पर्दा फाश करते हुए राष्ट्रीयता से परिपूर्ण उद्-बोधन के गीत गाने प्रारभ कर दिये थे—

पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

इससे यह स्पष्ट है कि आजादी की आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रही और दमन ने अपने दामन से उसे उभाड़ा। जो कभी नही हुआ था वह हुआ। वीरता दिखाने के हौसलो को पस्त करके प्रेस एक्ट के प्रतिबधो द्वारा यहाँ के निवासियो की जबान बदी कर दी गई। अब बताइये कौन क्या लिखता और कैसे लिखता। सुभद्रा जी की निम्न पक्तियाँ यद्यपि बाद की परिस्थितियो मे निर्मित हुई, तथापि इस अवसर के अनुकूल भी है—

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं।
है कलम बँधी स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें जगावै कौन हत॥

—सुभद्रा कुमारी चौहान

परन्तु आजादी की आग सुलगती रही जिसने कभी देश सेवा के प्रति व्यक्ति-गत क्रातिकारियो को 'नई तर्जे जफा' सीखने के लिए और 'सितम की इन्तहा' देखने के लिए 'गुनाहो से नावाकिफ' शहीदो को खुशी से फाँसी के फन्दे को गले मे लगाने के लिए आमन्त्रित किया और कभी देश की कठिनाइयो को शासको की रुचि के अनुसार काग्रेस सस्था के माध्यम से रखने के लिए भी प्रेरित किया।

सन् १९०० के लगभग यहाँ कुछ तो परिस्थिति विशेष के कारण तथा कुछ आयरलैण्ड और रूस के क्रातिकारियो की गाथा को सुनकर व्यक्तिगत क्राति की विचारधारा का जन्म हुआ। महाभारत से भी कम प्रेरणा न मिली होगी जब ये लोग इस निष्कर्ष पर पहुँच गए कि भारत मे आए हुए अत्याचारी अग्रेज शासको की हत्या उन्हे भयभीत करके यह देश त्यागने के लिये वाध्य कर सकती है। निष्कर्ष निकलना था कि वह कार्य रूप मे परिणत होने लगा और हिसक वृत्ति का आश्रय लेने के कारण इन परवानो को ही अकेले दमन का शिकार नही होना पडा वरन् उनके परिवार, सबधो और मित्र वर्ग भी उस ज्वाला से अछूते न रह सके।

सन् १९०५ ई० मे खुदीराम बोस ने खिदरपुर मे अपने सिद्धान्त का परि-चय दिया और फलस्वरूप फाँसी की सज़ा पाई। इसके उपरान्त हिदुस्तान को उरूजे कामयाबी पर देखने की तमन्ना वाले तथा अपने आशियाँ को सैय्याद के हाथो से रिहा कराने वाले पजाबी श्री मदन लाल धींगरा ने लदन के कारा-गार के मकतल मे इम्तिहाँ दे दिया और यह अभिलाषा लेकर दुनियाँ से चला गया कि—

कभी वह दिन भी आयेगा जब अपना राज देखेंगे।
जब अपनी ही जमीं होगी औ अपना आसमा होगा॥

उसका मृत्यु गीत (Swan Song) आज भी अपना अमर संदेश देता है–

शहीदो की मजारो पर जुडेंगे हर बरस मेले।
वतन पै मरने वालो का यही बाकी निशाँ होगा॥

इसके उपरान्त स्वतन्त्रता की वेदी पर कालक्रम की गणना से अमीरचन्द्र, सूफी अबा प्रसाद, भाई बालमुकुन्द, सत्येन्द्र कुमार वसु, करतार सिह, यतीन्द्र नाथ मुकर्जी, विष्णु गणेश पिंगले, सोहनलाल पाठक, कुँवर प्रताप सिंह, भाग सिह, वतन सिह, बलवन्त सिह, हरनाम सिह, बन्ता सिह, बर्य्यामसिंह धुग्गा, डाक्टर मथुरा सिह, तरुण दलीप सिह, नलिनी बागची, गोपी मोहन साहा, गेदा-लाल दीक्षित, राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला, रोशन सिंह, राजेन्द्र नाथ लहिरी, यतीन्द्र नाथ दास, बटुकेश्वर दत्त, सरदार भगत सिह और चन्द्रशेखर आजाद (सन् १९३१ ई०) का बलिदान हुआ।

फैजाबाद जेल मे फाँसी के तख्ते पर हँसी-खुशी से झूलने वाले नौजवान अमर शहीद अशफाकउल्लाह की जवानी की बुलंदी और मस्तानी अदा से गाई गई फाँसी से पूर्व की गजल चिरस्मरणीय रहेगी –

बुजदिलो ही को सदा मौत से डरते देखा।
जो कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा।
मौत से वीर को हमने नहीं डरते देखा।
तख्तये मौत पै भी खेल ही करते देखा।
मौत इक बार जब आती है तो मरना क्या है।
हम सदा खेल ही समझा किये मरना क्या है।
वतन हमेशा रहे शाद काम और आजाद।
हमारा क्या है हम रहे न रहे॥

नेपाली ने ठीक ही लिखा है–

हँसते हँसते आखिर ये भी अपनी आँखें मूँद चले।
माँ की थाली भरने को ये बन रुधिरों की बूँद चले॥

करुणेश की उद्बोधन भरी हुई ललकार–

जवानों यह तुम्हारी नौजवानी काम कब देगी।
तुम्हारे लाल लोहू की रवानी काम कब देगी।
बढ़ो आखिर शहीदो की निशानी काम कब देगी॥

ने इन वीरो के गर्म रक्त को खौला देने मे कोई कसर बाकी न रखी। जलियाँ-वाला बाग और वहाँ पर डायर और ओडायर के आदेश से ढाये गए सितमो ने भारत की रग-रग को हिला दिया।

सुभद्रा जी ने शोक गीत मे अपनी श्रद्धाजलि समर्पित की जिसमे दुख, उदासी और निराशा प्रत्यक्ष है–

कोमल बालक मरे जहाँ गोली खा खा कर।
कलियाँ उनके लिये गिराना थोड़ी ला कर।
यह सब करना किंतु बहुत धीरे से आना।
यह है शोक स्थान यहाँ मत शोर मचाना।।

श्री कन्हाई लाल दत्त, राम प्रसाद बिस्मिल ने अपने देश के लिए नौनिहाल जिन्दगी के जौहर दिखाये तथा फाँसी के फदे को गले मे डालकर इस दुनियाँ से विदा हो गये। बिस्मिल की गजल की कड़ियाँ भी आत्मोत्सर्ग की प्रतीक है :–

मालिक तेरी रजा रहै और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरजू रहे।
अब न पिछले वलवले हैं,
और न अरमानों की भीड।
एक मिट जाने की हसरत,
अब दिले बिस्मिल में है।

क्रातिकारी शहीदो की अपनी हमजोलियो मे सम्भवतः सब से अधिक ताकतवर सरदार भगत सिंह ने जब 'वादिये गुरबत मे कदम रक्खा' और उन्होने 'मादरे हिंद के लिए खाक मे मिल जाने का' बीडा उठाया तब उस समय' 'याद वतन दूर तक उन्हे समझाने आयी।' 'देशसेवक जेल मे मूँजे कूट रहे थे,' स्वार्थी भारतीय ऐश से दिन रात बहारे लूटने मे पडे थे, दीवाने सरदार ने इस जीने पर मर जाने की तरजीह दी थी और उसने दर्दमन्दो से मुसीबत की हलावत जानकर, मिटने वालो से शहादत का लुत्फ समझकर, परवाने से सोज (जलन) की कैफियत समझी थी तथा कौम के सिदके मे माता को जवानी देने का आवाहन कर के तथा खून की होली खेलने का निश्चय किया था–

अब तो हम डाल चुके अपने गले मे झोली।
एक होती है फकीरों की हमेशा बोली।
खून से फाग रचायेगी हमारी टोली।
जब से बगाल में खेले है कन्हाई होली।
कोई उस दिन से नहीं पूछता बरसाने को।

और फिर इरशाद बजा लाने वालो की प्रतीक्षा मे जम कर बैठ गये। लाहौर जेल मे यह वीर शहीद हुआ। आखिरी बलिदान सन् १९३१ में जवाँ-मर्द चन्द्रशेखर आजाद का इलाहाबाद मे हुआ। भारत माँ के ३३ नौनिहाल

बेटे विश्व के परतत्र देशों के सम्मुख अपनी शहादत की नजीर पेश करते हुए तवारीख के वर्कों पर अपना अमिट नाम लिख गये कि देश के लिए अपनी जिदगी वसीअत कर के हमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और हम अपने पीछे आने वालो के लिए रास्ता खोले जा रहे है। क्रातिकारी वीरो का रास्ता बडा गोपनीय था और भारत मे चद चाँदी के टुकडो पर उनका गुप्त राज खोल देने वालो की कमी न थी, यद्यपि उनसे सहानुभूति रखने वाले भी पर्याप्त मात्रा मे थे। परिणाम स्पष्ट था। और वे बेचारे फाँसी के तख्ते पर झूले ही। ब्रिटिश शासन ने इनके मित्रो और सबधियो तक को यातनाये दी। निराशा की एक गहरी और तेज लहर इन हुतात्माओ के वलिदान पर देश मे लहरा गई। पक्षपाती भी निराशा के अधकार मे डूबने-उतराने लगे। इन भावनाओ का प्रकटीकरण चकबस्त की निम्न पक्तियो से होता है–

चमकता है शहीदो का लहू पर बह पै कुदरत के।
शफक का रग क्या है शोखिये रगे हिना क्या है ?
उमीदें मिल गयीं मिट्टी में दौरे जब्ते आखिर ही।
सदाये गैब बतला दे हमें हुक्मे खुदा क्या है ?

आजाद के वलिदान के उपरान्त सशस्त्र क्राति मे विश्वास रखने वाले इन योद्धाओ ने सम्भवत यह भलीभाँति देख और समझ लिया कि उनके अपनाये हुए मार्ग द्वारा सफलता प्राप्त नही हो सकती और इसी के फलस्वरूप इस वर्ग के अन्य शहीदो का उल्लेख हम आगे नही पाते। वैसे सन् १९४० ई० का ऊधम-सिह का प्रयत्न भी इसी ढग का था, यद्यपि उसमे व्यक्तिगत प्रतिशोध की मात्रा अधिक थी।

मूक होते हुये भी हमारे अनेक अज्ञात कवियो ने अत्याचार की आँधी का परदा फाश किया और कठोर अत्याचारो के उपरान्त भी उनकी लेखनी शिथिल न हुई, चलती ही रही।

राष्ट्र मे चेतना हो रही थी। आसार स्पष्ट थे। राष्ट्रीय जागरण और देशभक्ति के उद्बोधक आदेश हमारे कवियो ने जनता मे प्रसारित करने प्रारम्भ कर दिये थे। भारतेन्दु काफी पूर्व 'धन विदेश चलि जात' का रहस्यो-द्घाटन कर ही चुके थे। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने क्षत्रियो को उनके कर्तव्य का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया था–

क्षत्रिय सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेंट दो॥

–गुप्त जी, भारतभारती–सन् १९१२ ई०

और वीरागणा यशोधरा के शब्दो के मिस उन्होने भारतीय नारी की हुकारात्मक वीर ललकार साकार की थी–

बाधा तो यही है मुझे बाधा नहीं कोई भी।
विघ्न भी यही है, जहाँ जाने से जगत में,
कोई मुझे रोक नहीं सकता है–धर्म से,
फिर भी जहाँ में आप इच्छा रहते हुए,
जाने नहीं पाती। यदि पाती तो कभी यहाँ
बैठ रहती मैं? छान डालती धरित्री को।
सिंहिनी सी काननो में योगिनी सी शैलो में,
शफरी सी जल में विहंगिनी सी व्योम में,
जाती तभी और उन्हें खोज कर लाती मैं!

माधव शुक्ल की राष्ट्रीय वीणा के तार झनझनाये, सनेही ने अपना त्रिशूल उठाया और भारतीय आत्मा (माखनलाल चतुर्वेदी) आगे आये।

जिस समय ब्रिटिश शक्ति क्रांति के पौधे का समूलोच्छेदन कर देने के लिए अनेक निर्दोषो को भी यातनाये दे रही थी, परतत्र भारतवासी निराशा मे डूबे हुए परमात्मा से मार्ग प्रदर्शित होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। निराशा चाहे जो रही है किन्तु हृदय मे स्वतन्त्र होने की अग्नि पूर्णरूपेण प्रज्ज्वलित हो रही थी। देश के लिए वलिदान व त्याग की बात खुले आम कही-सुनी जाने लगी थी–

मिटा जो नाम तो दौलत की जुस्तजू क्या है।
निसार हो न वतन पर तो आबरू क्या है।
लगा दे आग न दिल में तो आरजू क्या है।
न जोश खाये जो गैरत से वह लहू क्या है।

–चकबस्त

व्यक्तिगत क्रातियो की असफलता देखकर हिन्दू व मुसलमान काग्रेसी झडे के नीचे शातिमय ढग से देश की स्वतन्त्रता की राह देख रहे थे और कटि-बद्ध हो गये थे सम्मिलित रूप से माँ भारती की जजीरो को काटने के लिए। बाल गगाधर तिलक ने महाराष्ट्र मे, विपिन चन्द्र पाल ने बगाल मे और लाला लाजपतराय ने पजाब मे अपने हुकारात्मक शखनाद से नवचेतना की लहर उत्पन्न कर दी थी। इसी समम दूसरे बुद्ध और भारतीय ईसा महात्मा गाधी का आविर्भाव हुआ। सन् १९२१ से अफ्रीका मे अपने सिद्धान्तो की परीक्षा मे सफल महात्मा गाधी ने काग्रेस की बागडोर सँभाली। इस महापुरुष ने पद-दलित, निरीह और निहत्थी भारतीय जनता को सत्याग्रह और अहिंसा नीति के गर्त से ऊपर उठाकर स्वतन्त्रता की आशा दिलाई। विषम परिस्थिति समझने मे उसे देर न लगी और अपने लिए अहिंसात्मक मार्ग निर्धारित करके उसने यह स्पष्ट देख लिया कि भारतीय जनता स्वतत्रता प्राप्ति के लिए न केवल तैयार और तत्पर ही है वरन् उसके लिए व्यग्र हो रही है, आवश्यकता केवल

इतनी ही है कि वह सगठित कर दी जाय और उसकी अपरिमेय सगठित शक्ति का उचित नेतृत्व किया जाय।

यही से हमारे वीर काव्य का वर्तमान चरण प्रारम्भ होता है जिसके अमर गीतो का अध्ययन अनादि काल तक मानवता की याद दिलाता रहेगा कि शत्रु को मारने या मारने के प्रयास मे मर जाने मे ही वीरता के स्थायी भाव उत्साह और पौरुषेय साहस की साधना नही होती वरन् प्राणो का उत्सर्ग करके भी सत्य सकल्प की रक्षा मे रस की सागोपाग साधना हो सकती है। पहले प्रकार का वीर रस यदि उग्र कोटि का होता है, तो यह वीरता का दूसरा रूप सहिष्णु वर्ग का है। वीरताजन्य पौरुष का यह रूप ससार के मनुष्य जीवन को तो मिला ही, साथ ही इसकी प्रेरणा ने कम से कम भारतीय साहित्य मे वीर रस के एक पचम कोटि की विशेष रूप से स्थापना कर दी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि वीर रसान्तर्गत युद्धवीर को छोडकर अन्य तीन अर्थात्–दान-वीर, धर्मवीर और दयावीर के उदाहरण अनेक नही मिलते, किन्तु सहिष्णु-वीर या वलिदान-वीर काव्य की जो सृष्टि पिछले चालीस वर्षो मे हिन्दी साहित्य मे हुई है वह भारतीय साहित्य के लिये एक अमूल्य एव अनुपम देन है। आततायी उत्पीडक इसमे आलम्बन है, आर्तनाद और कर्तव्यपालन की दृढ चेतना उद्दीपन है, मुख-मुद्रा पर दृढ सकल्प की स्पष्ट रेखा और आत्मोत्सर्ग की स्पष्ट घोषणा अनुभाव है तथा सात्विक गर्व, आर्तसवेदन और पीडक सवेदन सचारी है। माधव शुक्ल ने गाधीवादी सहिष्णु-वलिदान-वीर का इस प्रकार चित्रण किया है–

इसका व्रती महा निर्भय है जुल्मो पर वह हँसता है।
तपे हुए सोने का सा दिन दिन उसका तेज दमकता है।
उसे सताता जो उसको वह गले लगा करता है प्यार।
सत्याग्रह ही एक मात्र है दीन निर्बलो का हथियार।

स्वय तिल-तिल कटकर विरोधी के दमन और अत्याचार समाप्त करने का उपदेश देने वाले गाधी ने जो कुछ सोचा अद्भुत एव मौलिक सोचा। सन् १९२१ ई० से महात्मा का गुलामो मे वीरता वाला असहयोग आन्दोलन प्रारभ हुआ। अत्याचारी को करने दो मनमाने अत्याचार, मिट आओ, नष्ट हो जाओ परन्तु उसे बताते रहो नम्रता के साथ कि वह अन्यायी है, अन्याय छोड दे, हमारे छीने हुए हको को लौटा दे। अपूर्व मौलिकता के साथ नमक कर बन्द और लगानबन्दी के आन्दोलन चलाए गए। स्वतन्त्रता मृत्यु के बलिदान चाहती है। भारतवासी मरना भूल गए थे। गाधी ने उन्हे एक बार फिर भारत की परिस्थिति विशेष मे मरने का ढग सिखाया। गाधीवाद का मरना असा-धारण था। सारी आत्मशक्ति का सतुलन कर आततायी के प्रहारो को प्रसन्नता से झेले जाना, उफ़ न करना, प्रतिकार मे हाथ भी न उठाना–एक विलक्षण

साहस और आत्मोत्सर्ग का रूप था। गाधीवादी वीर अपनी हस्ती फना कर देने के लिए सन्नद्ध था और वह इस बात की परीक्षा पर तुला बैठा था कि उसके सर को काटने वाले के हाथो मे कितनी शक्ति है और तभी काग्रेसी योद्धा गा उठा—

सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल मे है,
देखना है जोर कितना बाजुये क़ातिल में है।

तथा उसी दीवानगी मे उसने लदन की गोल मेज कान्फ्रेस से लौटते हुए गाधी का स्वागत किया था—

या फिर इग्लिश चैनल से तेरा पाचजन्य हुकार उठे।
भारत यह तरुणो का भारत तेरी ध्वनि पर ललकार उठे।
तू जरा बजाकर क्षण भर को हो जा फिर से डमरू वाला।
हम अपने शीशो की तुझको पहना देंगे मोहन माला।

सन् १९२१ से १९४५ ई० तक ब्रिटिश भारत की जेले हज़ारो और लाखो काग्रेसी वीरो द्वारा भरती और खाली होती रही। लाठी चार्ज, गैस और गोलियों की बौछार क्या-क्या जुल्म उन पर नही हुए। जालियाँवाला बाग और चौरीचौरा आदि के नृशसता और पाशविकता के काण्ड क्या कभी भुलाये जा सकेंगे। परन्तु गाधी जी ने तो उन्हे भी भूलने का उपदेश दिया। मर्ज बढता ही गया ज्यो-ज्यो दवा की। ब्रिटिश दमन ने असहयोगी वीरो का धैर्य और साहस बढाया और उन्हे अधिक सगठित और सहनशील बना दिया। जो काम तलवारे, गोलियाँ और गोले सन् १८५७ मे न कर सके वह असहयोग के जादू ने कर दिया। विदेशी शासक अपने शस्त्र निरर्थक देख थर्रा उठा। सन् १९४५ ई० मे अपनी पूर्ण मानवी प्रतिभा समन्वित करो या मरो (Do or Die) मारो या मरो (Kill or Die) नही का आन्दोलन युग प्रवर्त्तक गाधी ने रखा। अत्याचार की चक्की के पाट पूरे वेग से चले, परन्तु महात्मा के भारत विजयी नही वरन् विश्वविजयी तिरगे झडे ने—(विजयी विश्व तिरगा प्यारा। झडा ऊँचा रहे हमारा, श्यामलाल पार्षद) सात समुद्र पार ब्रिटिश शक्ति को हिला दिया।

दूसरी ओर नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की अदम्य सगठन शक्ति का पता देश को उस दिन चला था जब वे अग्रेजी हुकूमत की निगरानी से कौशलपूर्वक भाग कर जर्मनी पहुँचे थे और वहाँ से पनडुब्बी द्वारा दक्षिणी अमेरिका की परिक्रमा करते हुए जापान से सिगापुर पहुँच कर, आजाद हिन्द फौज की रचना कर के—

क़दम क़दम बढ़ाये जा, खुशी के गीत गाये जा।
ये जिन्दगी है क़ौम की, तू क़ौम पर लुटाये जा।

का तराना छेड़ते और उस सेना का नेतृत्व करते भारतमाता के पाश काटने के लिये प्राणो का सहर्ष हवन करते-कराते पूर्वी भारत की सीमा के अन्दर दृढता और सकल्प से घुस कर सगीनो और गोलियो के बल पर ब्रिटेन की अदम्य तथा अपराजेय शक्ति को ललकार कर चुनौती दे बैठे थे। १९४५ मे अकाल ही इस वीर सेनानी को यह लोक छोडना पडा।

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतत्र हो गया। मानवता के आगे सात समुदर पार से आने वाली हिसक दानवता को अतत. झुकना पडा।

सन् १८५७ से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक जिन जाने अनजाने वीरो ने अपना रक्त चढाया उनके प्रति श्रद्धलियाँ अर्पित की गई, जो हिन्दी साहित्य की अमर निधि है। अचल जी की निम्न पक्तियाँ चिरस्मरणीय रहेगी।

देश प्रेम के ओ मतवालो उनको भूल न जाना।
महाप्रलय की अग्नि साध लेकर जो जग मे आये।।
विश्वबली शासन के भय जिनके आगे सकुचाये,
चले गये जो शीश चढ़ाकर अर्घ्य लिये प्राणों का,
चलो मजारो पर हम उनके आज प्रदीप जलायें।
टूट गई बधन की कड़ियाँ स्वतन्त्रता की बेला।
लगता है मन आज हमें कितना अवसन्न अकेला।
देश प्रेम के ओ मतवालो उनको भूल न जाना।

सुभद्रा जी की दुख., उदासी और निराशा से परिपूर्ण शोक गीत की कोमल भावुक पक्तियाँ युगो तक उत्पीडन और अत्याचार की स्मृति दिलाती रहेगी :—

कोमल बालक मरे जहाँ गोली खा खा कर,
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी ला कर।
यह सब करना किन्तु बहुत धीरे से आना।
यह है शोक-स्थान वहाँ मत शोर मचाना।

अत मे हमारा महात्मा भी शहीद हो गया। धार्मिक असहिष्णुता की वेदी पर उसकी बलि हो गई। परन्तु हमारे कवि चिरतन काल तक उसकी अलौकिक सहनशीलता, तपस्या, त्याग और अहिसक वीरता के गुण गाते रहेगे। उसका शरीर नश्वर था, एक न एक दिन नष्ट ही होता। आततायी की गोली ने उसे भयभीत नही किया, वह अत तक अडिग था, विश्व के लिये शुभ कामनाये लिये और मानव जाति को उन्नति का पथ दिखाने के लिये। मरते-मरते वह विश्व को अपना अमर सदेश दे गया है। गाधी मारे गये, परन्तु गाँधीवाद अमर है, शाश्वत है, चिरतन है, सत्य है।

अवसर के अनुकूल कवियो ने अपने शोकाकुल उद्गार प्रकट किये। रणधीर का एक छद देखिये—

लुट गया वो दीन का ज़मीन का सुहाग है।
छिप गया वो झोंपड़ी का चाँद सिर्फ दाग़ है।
अधकार में ज़मी की रूह आज रो रही।
विश्व को प्रकाश देके बुझ गया चिराग़ है।
पाप के जुगुनू को लेके नाग विष बिखेरता ।।
पुण्य का प्रकाश ले जमी के दीप तुम बनो।
तो खुद से तुम खुदा बनो।
जमी के आदमी बनो ।।

इसमे शोक है, महापुरुष की कीर्ति की प्रशस्ति है और है वर्तमान तथा आगामी मानव पीढियो के लिए ईश्वरीय मानवता और प्रकाश बन जाने का उद्बोधन।

इस आधुनिक काल की वीर रचनाये मुख्यत व्यक्ति की कीर्ति और वीरता का बखान नही करती वरन् सामूहिक प्रेरणा और आह्वान का उनमे घोष है।

भारत फिर स्वतत्र हो गया है, साढे सात सौ वर्षो की दासता भुगतने के उपरान्त और आवश्यकतानुसार शैली का परिधान ओढ कर अवसर के अनुकूल आगे भी वीर गानो की रचना होगी।

अद्भुत रस

वीर रस से विकसित होने के कारण अद्भुत रस वीर रस के प्रसग मे बहुधा देखा जा सकता है। अत्यन्त उत्साह की प्रतिमूर्ति बनकर ही व्यक्तियो ने विस्मय मे डालने वाले काम किये है।

भारतीय वीर काव्यो के अन्तर्गत युद्ध की चर्चा मे वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धाओ का अप्सराओ द्वारा वरण तथा देव विमानो पर बैठकर विभिन्न लोको को प्रस्थान, कबधो द्वारा भीषण युद्ध आदि अद्भुत व्यापार वर्णन करने की कवि-परम्परा सी देखी जाती है।

पृथ्वीराजरासो मे एक तपस्विनी वैश्य कुमारी द्वारा अपना सतीत्व नष्ट करने के फलस्वरूप अजमेर नरेश वीसलदेव को नरभक्षी असुर हो जाने के श्राप का वर्णन है। इसको कवि चन्द ने अद्भुत रस मे व्यजित किया है। तपस्विनी के श्राप से राजा की बुद्धि विकृत हो गई और इसी अवसान मे जूते मे बैठे हुए सर्प के काटने से उनकी मृत्यु हो गई तथा अर्थी के मध्य से विष की ज्वालाये उगलता हुआ असुर प्रगट हुआ जिसने मनुष्यों का भक्षण प्रारम्भ कर दिया—

जिन रथी मद्धि ऊठे असुर, धवै ज्वाल तिन मुष विषै ।
नर भषै जहाँ लसकर सहर, मिलै मनिष ते ते भषय ।।

छ० ५११ स० १

अतएव मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् असुर होने का प्रत्यक्षीकरण कराके कवि ने अद्भुत रस का परिपाक किया है। यहाँ असुर आलम्बन है तथा अर्थी से उसकी उत्पत्ति होना उद्दीपन है।

इस वीसल दानव ने अपने पुत्र सारगदेव को मार डाला और ढूंढ-ढूंढकर मनुष्यो को खाने के कारण ढूंढा नाम से विख्यात हुआ–

ढूंढि ढूंढि खाये नरनि, तातै ढूंढा नाम।
देवपुरी अजमेर पुर, रम्य करी वेराम॥

इस दानव को आना (अर्णोराज) ने अपनी सेवा से तुष्ट कर लिया जिसके फलस्वरूप उसने आना को अजमेर का राज्य दे दिया और स्वय आकाश मे उडकर काशी पहुँचा तथा अपने अग प्रत्यग काट काटकर हवन करता हुआ यशस्वी हुआ। ढुढा दानव का यह सम्पूर्ण प्रसग कवि ने अद्भुत रस मे लिखा है।

पृथ्वीराजरासो मे गडे हुए खजाने खोदे जाने पर कटाक्ष करने वाली पुतलियो आदि का निकलना भी विस्मय का प्रसग है।

कबीर प्रभृति निर्गुणोपासक सतो ने उद्दीपन के सहारे विस्मय उत्पन्न करने वाली उलटवाँसियाँ कही है जो बरवस मन को आकर्षित कर उत्सुकता से भर देती है–

१– **एक अचम्भा देखा रे भाई, ठाढा सिंह चरावै गाई।**
पहलैं पूत पीछैं भइ माई, चेला कै गुर लागै पाई।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।
बैलहि डारि गूँनि घरि आई, कुत्ता कूँ लै गई बिलाई।
तल करि साखा ऊपरि कर मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद कौं बूझै, ताकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझै॥

२– **हरि के षारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिनि षाये।**
ग्यान अचेत फिरै नर लोई, ताथैं जनमि जनमि डहकाये।
धौल मदलिया बैलर बाबी, कउवा ताल बजावै।
पहरि चोलनां गादह नाचै, भैंसा निरति करावै।
उंदरी बपुरी मगल गावै, कछू एक आनन्द सुनावै।
कहै कबीर सुनहुँ रे सतौ गडरी परवत खावा।
चकवा बैसि अंगारे निगलै, समन्द अकासां धावा॥

३– **'रमैया की दुलहिन लूटा बजार'**–शीर्षक पद भी आश्चर्य की उत्पत्ति करता है।

सूर ने कई स्थलो पर अद्भुत रस की सृष्टि की है। "नन्द बाबा शालिग्राम का पूजन कर रहे है। कृष्ण कहते है कि बाबा तुमने इन्हे प्रसाद अर्पित किया लेकिन ये खाते नही हैं। नन्द ने यशोदा से कहा कि श्याम की बात सुन

रही हो। तदुपरान्त नन्द ध्यान-समाधि लगाकर बैठ गये और कृष्ण ने चुपके से आकर देवता का प्रभुत्व देखने के लिए शालिग्राम की बटिया मुँह मे रख ली। आँखे खोलने पर नन्द चकित रह गये। यशोदा ने कहा कि कान्हा का मुँह तो देखो। मुँह से बटिया तो निकली ही परन्तु तीनो लोको के दर्शन वहाँ करके नन्द चकित रह गये।"–

पूजा करत नन्द रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई।
चुपकहि आनि कान्ह मुख मेल्यौ देखौं देव बडाई।
खोजत नन्द चकित चहुँ दिसि तें, अचरज सौ कछु भाई।
कहाँ गए मेरे इष्ट देवता को लै गयो उठाई।
तब जसुमति सुत मुख दिखरायौ, देखौं बदन कन्हाई।
मुख कत मेलि देवता राख्यौ, घाले सबै नसाई।
बदन पसारि सिला जब दीन्ही, तीनौ लोक दिखाये।
सूर निरखि मुख नन्द चकित भए, कछू वचन नहिं आये॥

इसी प्रकार 'माटी भक्षण प्रसग' मे वर्णन है कि यशोदा ने लक्ष्य किया कि कृष्ण ने चुपके से मिट्टी खा ली है। माँ की ताडना पर कृष्ण ने मुँह खोला और अपना नाटक दिखाकर स्तम्भित कर दिया। सूर ने सात पदो मे इस एक प्रसंग का बार-बार भाँति-भाँति से वर्णन किया है। उन्ही मे से एक पद देखिये–

मोहन काहैं न उगिलौ माटी।
बार बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी।
महतारी सौं मानत नाहीं, कपट चतुरई ठाटी।
बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी।
बडी बार भई लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी।
सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी खाटी॥

अपनी 'विनय पत्रिका' मे केसव कहि न जात का कहिए' पद मे अद्‌भुत रस का परिपाक करने वाले तुलसी ने अपने मानस मे विभावना अलकार के सहारे ब्रह्म का कौतूहलजनक चित्र खीचा है–

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड जोगी॥

के अतिरिक्त उत्तरकाण्ड मे कागभुशुण्ड जी का विस्मय देखिये–

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्‌भुत देखउँ बरनि कवनि विधि जाइ॥
भिन्न भिन्न मै दीख सबु अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह विसेखा॥

भक्त रसखान ने छछिया भर छाछ पै अहीर की छोहरियो द्वारा कृष्ण को नाच नचाने और राधिका के पैर दबाने की स्थिति मे देखकर अद्भुत रस मे उसका वर्णन किया है। देखिये–

१– सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर ध्यावै ।
जाहि अनादि अखण्ड अनन्त अछेद अभेद सुवेद बतावै ।।
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछि पै नाच नचावैं ।।

२– ब्रह्म में ढूँढ्यौ पुरानन गानन वेद ऋचा सुनि चौगुने चायन ।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितू वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन ।
हेरत हेरत हारि पर्‌यौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन ।
देख्यौ दुर्‌यौ वह कुंज कुटीर में बैठ्यो पलोटत राधिका पायन ।।

रीतिकालीन कवियो ने अद्भुत रस के उदाहरण अपने रीति ग्रथो मे उक्त रस समझाने के प्रसग मे दिये है। केशव के तीन छद देखिए–

१– आसीविष, सिंधुविष, पावक सों नातो कछू,
हुतो प्रहलाद सौं, पिता को प्रेम टूटो है।
द्रोपदी की देह में खुथी ही कहा दुस्सासन,
खरोई खिसानो खैंचि बसन न खूटो है।
पेट में परीक्षित की पारथ बचाई मीचु,
जब सब ही को बल विधिवान लूटो है।
केसव अनाथन को नाथ जौ न रघुनाथ,
हाथी कहा हाथ कै हथ्यार करि छूटो है।

२– आप सितासित रूप चितै चित स्याम सरीर रँगे रग राते।
केसव कानन ही न सुनै सु कहै रस की रसना बिन बातें।
नैन किधौं कोऊ अन्तर्यामी री जानत नाँहि न बूझति ताते।
दूर लौं दौरत है जिन पायन दूर दुरी दरसै मति जाते।

३– कर्ण से दुष्ट से पुष्ट हते भट पाप से पुष्ट न शासन टारे।
सोदर से न दुसासन से सब साथ समर्थ भुजा उस तारे।
साथी हजारन के बल केसव खेंचि थके पट कोऊ न डारे।
द्रोपदी को दुर्योधन पै तिल अंक तऊ उघर्‌यौ न उघारे।

पद्‌माकर ने अपने जगद्विनोद मे अद्भुत रस के चार उदाहरण दिये हैं। एक यथेष्ट होगा। प्रसग है कालीनाग नाथन और उसके फन पर वनमाली का नर्तन–

गोपी-ग्वाल-माली जुरे आपुस में कहैं आली,
कोऊ- यसुदा के औतर्‌यौ इंद्रजाली है।

"देवी है कि दानवी है देखो सखे ध्यान से,
मायामयी लङ्का है, प्रपूर्ण इन्द्रजाल से,
अग्रज तुम्हारा काम रूपी है।· ·· ···

—तृतीय सर्ग

नाथूराम शकर शर्मा ने काम द्वारा समस्त विश्व पर विस्मय कारक ढग से विजय दिखाकर अद्‌भुत रस का परिपाक किया है—

ऐसे शूरमान को शिरोमणि प्रतापी पुत्र,
पायो मन चचल नपुसक कहाये ने।
सेवा करें रसराज ऋतुराज साथी सदा,
ब्याही रति रमणी छबीली छवि छाये ने।
काम केलि बन्धन में बाँध नर नारिन कों,
बोरे प्रेम सिधु में मनोज नाम पाये ने।
शकर के कोप ने अनग करि डारचो तऊ,
सारो जग जीति लियो हिजड़ा के जाये ने।

यहाँ चचल और नपुसक मन के पुत्र होना अनुभाव है तथा उस मनोभव कदर्प का शकर द्वारा अनग होने पर भी विश्व-विजेता होना उद्दीपन है। इस प्रकार की अनहोनी चर्चा सुनकर नेत्रो का विकसित होना अनुभाव तथा वितर्क और उत्सुकता सचारी है।

रौद्र रस

युद्ध से अनिवार्य रूप से सबधित होने के कारण तथा युद्धवीर भाव का तत्कालिक अनुसरण करने के कारण युद्धो से आच्छादित हिंदी के वीर गाथा युग मे रौद्र रस खोजने का श्रम नही करना पडता, वह तो चारो ओर बिखरा पडा है। शत्रु ने आक्रमण किया अथवा शत्रु पर आक्रमण हुआ और आमना-सामना होते ही उद्दीप्त प्रचड हिसक क्रोध से साक्षात् हो गया है। युद्धस्थल पर प्राय वीर, रौद्र और वीभत्स प्रतिफलित होते पाये जाते है। पृथ्वीराज रासो का एक प्रसग यथेष्ट होगा—

बज्जे बज्जन लाग दल, उभै हंकि जगि वीर।
विकसे सूर सपूर बढ़ि, कंपि कलत्र अधीर॥ २२६

छुट्टिय हथ नारि बुहदल, गोम व्योमह गज्जियं।
उड्डिय आतस झार झारह, धोम धुंधर सज्जियं॥
छुट्टियं वान कमान पानह, छाह आयस रज्जिय।
निरषंत अच्छरि सूर सुब्बर, सज्जि पारथ सज्जियं॥ २२७

परि सीस हक्कहि धर हहक्कहि अंत पाइ अलुझ्झरं।
उठि उट्टि ऋक्कसि केस उऋसि सांइ सुथ्थल जुझ्झर।।
एकेक चंपहि पीठ नंषहि धरनि धर परिपूरयं।
हकिय सु वेगं अली महमद करिय द्रग्ग करूरय।। २३१ स० ५८

यहाँ पर युद्ध के उत्साहार्थ बाजे आदि बजना वीर रस की व्यजना करता है। दोनो पक्षो से हथनाल, आतसझार, बाण आदि का चलना रौद्र रस का स्रष्टा है। कबधो का डहकना, आँतों का पैरो मे उलझना आदि जुगुप्सात्मक दृश्य होने के कारण वीभत्स रस के जनक है।

निर्दिष्ट तीन रसो से विकसित क्रमश अद्भुत, करुण और भयानक मे करुण को छोडकर क्योकि भारतीय कवि परिपाटी युद्ध मे करुण को अवाछित मानती आई है, शेष दोनो अर्थात् अद्भुत और भयानक भी पाये जाते है।

विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता मे राजा कीर्ति सिह के लिये वीर सिह का युद्ध दिखाया है—"हुँकारो से वीर गर्जन करते थे, पैदल चक्रो को तोडते थे। दौडने पर धाराये (पक्तियाँ) टूट जाती थी। सन्नाह वाणो से फूट जाते थे। राउतो को गुस्सा आता था, तलवारो से तलवारे टूटती थी। क्रुद्ध शूरवीर आते थे और मार्ग उन्मार्ग मे दौड पडते थे। एक-एक से भिडते थे, पराई लक्ष्मी को मेटते थे। अपने नाम का उच्चारण करते हुए शत्रु को मारते थे। वार पार जानकर क्रुद्ध बाणो से जूझ जाते थे। दोनो ओर से सेनाये उठी, सग्राम के मध्य मे भेटे हुई। तलवार से तलवार मिलाकर आग की चिनगारियाँ निकल पडी। अश्वारोही की तलवार की धार राउत के घोडे से टूटती थी। बेल का शरीर वज्र निर्घात के तुल्य शब्द के साथ कवच से फूटता था। वैरी के हाथियो से पजर आहत हुए। आकाश रुधिर की धाराओ से भर गया। राजा कीर्तिसिह के कार्य के लिये वीरसिह सग्राम कर रहे थे।"

हुङ्कारे वीर गज्जन्ता पाइक्का चक्का भज्जन्ता।
धावन्ते धारा टुट्टन्ता सन्नाहा वाणे फुट्टन्ता।।
राउत्ता रोसं लग्गीआ खग्गेही खग्गा भग्गीआ।
आरुट्ठा सूरा आवन्ता ऊँमग्गे मग्गे धावन्ता।।
एकक्के एक्के भेटन्ता परारी लच्छी मेट्टन्ता।
अप्पा नामाना सारन्ता बेलक्के सत्तू मारन्ता।।
ओआरे पारे बूझन्ता, कोहाणे वाणे जूझन्ता।
दुहुँ दिसि पाखर ऊँठ माँझ संग्राम भेट हो।।
खग्गे-खग्गे सघलिअ, फुलुग उप्फलइ अग्नि को।
अस्सवार असिधार तुरअ राउँत सञो टुट्टइ।
बेलक बज्ज निघात काअ कवचहु सञो फुट्टइ।।

अरि कुंजर पंजल सल्लिरहू रुहिर धारे गए गगण भर ।
रा किर्त्तिसिह को कज्ज रसें वीर सिंहू सग्राम कर ।।

वीरगाथाकाल की ऐतिहासिक और कल्पित तथा प्रबधात्मक एव गेय सभी प्रकार की रचनाओ मे हमे उन कवियो द्वारा वीर, रौद्र, वीभत्स, अद्भुत, भयानक आदि के वर्णन किये हुए मिलते है जिन्होने रणस्थल मे जाकर इन दृश्यो से साक्षात् किया था। इसमे कोई सदेह नही कि वीर युग की आद्योपात सामग्री इतिहास की तुला पर पूर्णतः नही लाई गई और उसकी कई प्रसिद्ध कृतियाँ विवादास्पद है फिर भी इतना कहने का साहस तो किया ही जा सकता है कि भक्तिकाल के कवियो द्वारा प्रेमाख्यानक कवियो की कथाओ के कल्पित अथवा ऐतिहासिक पात्रो तथा कृष्ण और राम के युद्धो के वर्णन जायसी, सूर, तुलसी सदृश समर्थ कवियो के द्वारा होने के कारण विधिवत् विविधता और अपने सागोपाग विधान मे कही हेठे नही ठहरते परन्तु उनमे से शायद ही किसी कवि ने कभी युद्ध-भूमि या युद्धो से साक्षात् किया हो।

जायसी ने अपने पदमावत मे क्रोध का प्रसग वहाँ दिखाया है जहाँ राजा रत्नसेन को अलाउद्दीन का पत्र प्राप्त होता है परन्तु वहाँ भी रौद्र रस का विस्तृत सचार नही है। देखिये—

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा, जानहुँ देव तड़पि घन गाजा।
का मोंहि सिंघ देखावसि आई, कहो तो सारदूल धरि खाई।
तुरुक जाइ कहु मरै न धाई, होइहि इसकंदर कै नाई।।

यद्यपि इसमे अनुभाव के रूप मे डाट-डपट और उग्र वचन तथा अमर्ष संचारी वर्तमान है और अपने मुँह से आप अपनी बड़ाई करने वाला अनुभाव भी आगे है परन्तु जायसी रौद्र रस का परिपाक नही कर पाये। आचार्य रामचद्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"न तो अनुभावो और सचारियो की मात्रा ही यथेष्ट है, न स्वरूप ही पूर्ण स्फुट है। जायसी का कोमल भावपूर्ण हृदय उग्र वृत्तियो के वर्णन के उपयुक्त नही था।"

सूरदास ने कृष्ण द्वारा अनेक वध अपने सूरसागर के दशम स्कध मे दिखाये परन्तु उनमे क्रोध की सम्यक् भूमिका तथा उसका परिपाक दिखाना उन्होने किसी कारणवश उचित नही समझा। इससे यह अनुमान कर लेना कि वे रौद्र रस की अभिव्यजना करने मे क्षम नही थे, बहुत बडा दुस्साहस होगा। सूर सागर के प्रथम स्कध मे महाभारत की कथा के अन्तर्गत भीष्म की प्रतिज्ञा दृष्टव्य है जो कि भगवान् के प्रति भक्त का आक्रोश भरा, दर्पपूर्ण, दुर्निवार हठ है तथा जिसमे उन्ही की शपथ खाकर उनके ही वचनो को तुडवा देने की गर्व और जोम भरी ललकार है देखिये—

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु सुत न कहाऊँ।
स्यंदन खडि महारथ खडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ।
पाडव-दल-सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय गतिहि न पाऊँ।
सूरदास रनभूमि विजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊँ।

इस पद मे भक्त का वैसा ही हठ है जैसा कि सूर ने एक अन्य स्थल पर अपने जन्म-जन्मातर के पापी होने पर भी भगवान् को उनकी भक्तवत्सलता का स्मरण दिलाकर अपना उद्धार करने के लिये ललकारा है। उपर्युक्त पद मे रौद्र रस पूरी तरह अभिव्यजित होते-होते "इती न करौ सपथ तौ हरि की" के कारण पुष्ट न होकर आराध्य विषयक रति भाव मे ढग विशेष से परिवर्तित हो गया।

तुलसी ने यथा अवसर क्रोध की व्यजना की है। राम की कथा मे उग्र स्वभाव वाले लक्ष्मण का क्रोध सर्वविदित है। कवितावली मे शिव धनुष टूटने पर परशुराम-लक्ष्मण सवाद अवलोकनीय है—

गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राज सभा 'धनु को दल्यौ ?' हौं दलिहौं बल ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको॥

और मानस मे राजा जनक के यह कहने पर कि 'वीर विहीन मही मै जानी' लक्ष्मण उफन पडे—

रघुबंसिन महँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहै न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानु कुल पकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुह्मारि अनुसासन पावौं। कदुक इव ब्रह्माड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौ बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥
तोरौं छत्रक दड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौ न करौं प्रभु पद सपथ पुनि न धरौं धनु नाथ॥
लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥

तथा राम द्वारा शिव जी का धनुष टूटने पर और लक्ष्मण की कटूक्तियों पर परशुराम का रौद्र रूप भी देखिये—

छुअत टूट रघुपतिहि न दोसू । मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ॥
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही । केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही । विश्व विदित छत्रियकुल द्रोही ॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं । विपुल बार महि देवन्ह दीन्हीं ॥
सहस बाहु भुज छेदनि हारा । परसु बिलोकु महीप कुमारा ॥

मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीस किसोर ।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥

रीतिकाल मे अवतरित होने वाले वीर रसात्मक प्रबध और स्फुट काव्यो के प्रणेता जोधराज, भूषण, सूदन, लाल, श्रीधर, चन्द्रशेखर तथा पौराणिक देवी-देवताओ की वीर प्रशस्तियो का गान करके भारतीय जनता को जगाने वालो को छोडकर उन सब रीति मुक्त और बद्ध शृगारी कवियो ने अपने काव्य शास्त्रीय ग्रथो मे अन्य रसो के निरूपण के साथ रौद्र का भी विवेचन किया है तथा उसके उदाहरण भी दिये है ।

छद और अलकारो का वैविध्य तथा पौराणिक ज्ञान और शाब्दिक पाडित्य का चमत्कार प्रदर्शित करने वाली केशव की रामचन्द्रिका मे सवादो का अनोखापन प्रसिद्ध है । उसमे शिव धनु भग होने पर परशुराम का क्रोध देखने योग्य है—

बोरौं सबै रघुवस कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं ।
बान की वायु उड़ाइ कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं ।
रामहिं बाम समेत पठै बन कोप के भार में भूँजौं भरत्थहिं ।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं ॥

अपनी रसिकप्रिया मे केसव ने 'श्री कृष्ण को रौद्र रस' शीर्षक मे निम्न उदाहरण दिया है—

मींडि मारचो कलह वियोग मारचो बोरि कै,
मारोरि मारचो अभिमान भारचो भय भान्यो है ।
सबको सुहाग अनुराग लूटि लीनो दीनो,
राधिका कुँवरि कहँ सब सुख सान्यो है ।
कपट कपटि डारयौ निपट कै औरनि सो,
मेटी पहिचानि मन में हूँ पहिचान्यो है ।
जीत्यो रति रन मथ्यो मनमथ हू को मन,
केसोदास कौन कहूँ रोष उर आन्यो है ।

भिखारीदास ने अपने काव्यनिर्णय मे रौद्र रस के निम्न उदाहरण मे राम का दशानन और उसकी मदाध सेना पर क्रोध दिखाया है—

देखत मदंध दसकध अंधधुंध दल,
बंधु सो बलकि बोल्यो राजा राम बरबंड।
लच्छॅन विचच्छॅन सँम्हारे रहौ निज पच्छ,
देखि हौं अकेलें हों-ही अरि-अनी परबंड।
आज अघवाऊँ इन सत्रुंन के स्रोनितॅन,
दास भनि बाढ़ी मेरे बानहि तृषा अखड।
जाँन पॅन सक्कस, तरक्क उठयौ तक्कस,
करक्क उठ्यौ कोदंड, फरक्क उठे भुजदंड।

दिल्ली दरबार मे पहुँचकर जब शिवाजी ने देखा कि उनकी वाछित आवभगत नही हुई वरन् दिये गये वचनो के प्रतिकूल उन्हे कही छोटा वाछित मरतबा मिला तो वे अपने क्रोध के वेग को न रोक सके। भूषण के शब्दो मे वह दृश्य देखिये—

सारी पातसाही के अमीर जुरि ठाढ़े तहाँ,
लाय कै बिठायौ कोऊ सूबन के नियरे।
देखिकै रसीले नैन गरब गसीले भए,
करी न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत जबै धरयौ कर मूठ पर,
तबै तुरकन के निकसि गए जियरे।
देखि तेग चमक सिवा को मुख लाल भयो,
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे।

पद्माकर ने अपने जगद्विनोद मे राक्षस कुल पर हनुमान का क्रोध दिखाकर निम्न ढग से रौद्र रस की पुष्टि की है—

वारि टारि डारौं कुंभकर्नहिं विदारि डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यौं बल-अनत हौं।
कहै पदमाकर त्रिकूट ही को ढाहि डारौं,
डारत करेई यातुधानन को अत हौं।
अच्छहि निरच्छ कपि तच्छ ह्वै उच्चारौं, इमि,
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछूवै न गत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं, रावन को तो मैं हनुमंत हौं।

चन्द्रशेखर वाजपेयी ने अपने 'हमीर हठ' मे हम्मीर देव और सुलतान के युद्ध को फाग से तुलित किया है। क्रोधावेश मे भरे पक्षी-विपक्षी किस प्रकार परस्पर प्रहार कर रहे है, दृष्टव्य है—

वीर हमीर इतै रनधीर लरै उत सौं सुलतान सु हेलैं ।
मार परी तरवारिन की बरसै सर सूल भयंकर सेलैं ।।
टोप कटे कुलही तन त्रान मची घमसान भए दल भेलैं ।
लोहू अधायल ह्वै रहे घायल घूमत घायल फाग सी खेलैं ।।

आधुनिक कवियो मे से कुछ के रौद्र रस के प्रकरण देखिये । नाथूराम शर्मा ने शृंगार का रौद्र रस मे वर्णन किया है–

ताकत ही तेज न रहेगो तेजधारिन में ,
मगल मयंक मंद-मद पड़ जायँगे ।
मीन बिन मोर मर जायँगे तड़ागन में ,
डूब-डूब शंकर सरोज सड़ जायँगे ।
खायगो कराल काल केहरी कुरंगन को ,
सारे खजरीटन के पंख झड़ जायँगे ।
तेरी अँखियान सो लड़ैंगे अब और कौन ,
केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जायँगे ।

नायिका की विश्वविजयिनी आँखो का मुकाबिला केवल नायक के अडीले दृग ही कर सकते है और कोई नही ।

जगन्नाथदास रत्नाकर ने भी भीष्म पितामह की गर्वोक्ति मे रौद्र रस की अनूठी व्यजना की है । देखिये–

भीषम भयानक पुकारयो रन भूमि आनि ,
छाई छिति छत्रिन की गीति उठि जायगी ।
कहै रतनाकर रुधिर सों रुंधैगी धरा ,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठ जायगी ।
जीति उठि जायगी अजीत पडु पूतन की ,
भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी ।
कै तो प्रीति रीति की सुनीति उठ जायगी ,
कै आज हरि प्रन की प्रतीति उठि जायगी ।

यहाँ दुर्योधन पक्ष की पराजय आलबन है, पाडवो की अपराजेयता और कृष्ण की प्रतिज्ञा उद्दीपन है, भीष्म के ललकार युक्त भयकर वाक्य अनुभाव हैं तथा गर्व, अमर्ष आदि सचारी है । परन्तु इतना सब होकर भी, 'कै तौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जायगी' कहने से देव-विषयक रति-भाव हो गया है ।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'जयद्रथ वध' तथा साकेत' मे रौद्ररस का श्रेष्ठ परिपाक दिखाया है । साकेत मे राम के निष्कासन पर और कैकेयी के आह्वानात्मक दुर्वाद पर लक्ष्मण अपनी भावनाओं को अधिक सयत न कर सके । देखिये–

गई लग आग-सी सौमित्र भड़के, अधर फडके, प्रलय घन तुल्य तड़के ,
"अरे मातृत्व तू अब भी जनाती ! ठसक किसको भरत की है बताती ।
भरत को मार डालूँ और तुझको, नरक में भी न रक्खूँ ठौर तुझको ,
युधाजित आततायी को न छोड़ूँ, बहन के साथ भाई को न छोड़ूँ ।
बुलाले सब सहायक शीघ्र अपने, कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने ,
सभी सौमित्र का बल आज देखें, कुचकी चक्र का फल आज देखें ।

करुण रस

यो तो मानव के हृदय मे प्रस्फुटित होने वाले प्रधान रसो मे श्रृगार और वीर है परन्तु इनके बाद साहित्यिक राशि करुण रस का ही पता देती है ।

भारत के आदिकाव्य रामायण का मूलाधार करुण ही है। ऋषिवर वाल्मीकि व्याध की निष्ठुरता के परिणामस्वरूप मादा क्रौंच पक्षी के करुण चीत्कारपूर्ण विलाप से द्रवित होकर उसे शाप दे बैठे ।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम शाश्वती समा. ।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ।।

और तदुपरान्त अपने मुँह से निकले हुए इस अनुष्टुप छद पर विचार करते हुए नारद से प्रेरित हो उन्होने रामकाव्य का प्रणयन किया । सुधियो को पता है कि राम की कथा आदि से अत तक करुणा से ओतप्रोत है। विविध कसौटियो पर खरे उतरने वाले राम का जीवन अनवरत उत्सर्ग और बलिदान की कहानी है तथा यह किसी से छिपा नही है कि बलिदान करने वाले को कितने महान् आत्मसयम, दृढता, धैर्य, साहस और असीम कष्टो की सहन-शक्ति का पाठ पढना पडता है। राजगद्दी के शुभ सम्वाद के उपरान्त अयोध्या से निष्कासन, वनवास के कष्ट, सीता का अपहरण, लका युद्ध, सीता का त्याग, सीता का भूमि प्रवेश, लक्ष्मण का शरीर त्याग तथा छोटी-छोटी न जाने कितनी अन्य घटनायें—कथाये रामायण मे पग-पग पर हमे शोक से अभिभूत करती हुई करुणा की अजस्र धारा मे डुबाती, उतराती, तैराती ले चलती है । आदि काव्य वास्तव मे करुण रस का अन्यतम ग्रन्थ है । इसका अध्ययन करने वाले स्थल-स्थल पर अपने अश्रु प्रवाह को नही रोक सकते ।

महाकाव्यो के लिये यह नियम बन चुका था कि श्रृगार और वीर को ही अगरस होना चाहिये जिसका निर्वाह भवभूति को छोडकर सबने किया है। परवर्ती महाकवि भवभूति रामायण की सीता-त्याग की तथा उनके भूमि-प्रवेश की कथा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने 'एकोरस' करुण एव निमित्त भेदात्' को ही उच्चस्वरित नही किया वरन् अपने उत्तररामचरित नाटक से उसे प्रतिपादित

भी कर दिया। भवभूति ने जो कुछ कहा उसे करके भी दिखा दिया यह उनके सम्पूर्ण नाटक और उसके निम्न स्थल से विशेष रूप से प्रकट है–

'अपिग्रावा रोदिति अपि दलति वज्रस्य हृदयम्
भिन्न पृथक पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।'

यह बात दूसरी है कि अन्य कविगण समानातर परिस्थितियो का विश्लेषण कहाँ तक कर सके। भवभूति को छोडकर अन्य किसी ने करुण को अगी रूप मे नही प्रतिष्ठित किया है।

सस्कृत साहित्य मे यथाविधि करुण के दर्शन होते है परन्तु अगी (प्रधान) रूप मे न होकर अग रूप मे। इसका कारण आशिक रूप से यह भी हो सकता है कि भारतीय काव्य परम्परा शोक के स्थान पर हर्ष और आह्लाद को ही प्रश्रय देती आई है। हमारे नाटक इसी आधार पर सुखात है तथा यूनानी नाटको की भाँति दुखात नही है।

जिस प्रकार दन्त और नख छद साधारणत दु खद होते ह परन्तु कामिनी के साथ सुखद। उसी प्रकार पुत्र शोक आदि सामाजिक दु ख काव्यजनित नाटक मे सुखजनित हो जाते है। कविराज विश्वनाथ ने भी कहा है–

'सुख सजायते तेभ्य. सर्वेभ्योऽपि इति काक्षत।'

काव्य और नाटक आदि मनोविनोद और आनद के लिये देखे जाते है। दु.ख प्राप्ति के लिए कौन अपना समय और धन व्यय करना पसद करेगा। यदि हरिश्चन्द्र आदि नाटक देखने से दुःख हो तो कौन उन्हे देखने का अभिलाषी होगा। आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल ने लिखा है–

"जीवन की चादर सुख और दु.ख या सफलता और असफलता के ताने वाने मे बुनी रहती है,–यह है जीवन की वास्तविकता, किन्तु जीवन का आदर्श नही। भारतीय नाटक का मूल उद्देश्य आदर्शोन्मुखी था। उपर्युक्त कोटि के चरित्रो के सफल प्रदर्शन का माध्यम लेकर रग-मच–इसी उद्देश्य की क्षति-पूर्ति किया करता था कि इन चरित्रो के जीवन-चित्रो मे वह उनकी असाधारण कठिनाइयो को उपस्थित करके आये दिन की घटने वाली विषमताओ से दर्शक वृन्द को परिचित करा दे, किंतु साथ ही उन कठिनाइयो को असाध्य न होने दे। वास्तव मे ऐसी कोई कठिनाई है भी नही, और न शायद हो ही सकती है जिस पर मनुष्य अपने कौशल, बुद्धि-बल और अपनी सात्विक चेतना से विजय न पा सके। महापुरुपो के चरित्र इन्ही के प्रतीक है। उनके प्रदर्शन के माध्यम से साधारणजन अपेक्षित कौशल और बल का सकेत पा जाता है। यही सफल हो जाती है नाटक की आदर्शोन्मुखता। यही तो ध्येय था भारतीय नाटच-विधान का। यही रहस्य है भारतीय नाटच परम्परा मे दु खान्त के निषेध का।"[1]

---

१ साहित्य जिज्ञासा, भारतीय नाटचकला मे दु खात निषेध, पृ० ८५-८६

अभिज्ञानशाकुन्तलम् मे कालिदास ने महाराज दुष्यत द्वारा अनादृत और तिरस्कृत शकुन्तला के मुख से जहाँ कहलाया है–

'भगवति वसुन्धरे देहि मे अन्तरम् ।'

(अर्थात्–हे देवी वसुन्धरे, मुझे अपने गर्भ मे स्थान दो), वहाँ श्रोतागण शोक से अभिभूत हो जाते है ।

विक्रमोर्वशी मे राजा का विलाप अत्यत करुण है । वेणीसहार मे वीर रस की प्रधानता होते हुए भी करुण के दर्शन हो जाते है । मृच्छकटिक मे चारुदत्ता के दरिद्र होने पर उसकी दयनीय स्थिति अति करुणाजनक है ।

भास ने अपने प्रतिमा नाटक मे भरत के मदिर मे पहुँचने पर अन्य मूर्तियो के साथ जहाँ राजा दशरथ की प्रतिकृति दिखाई है उसे देखते ही भरत को ज्ञान हो जाता है कि राजा का निधन हो गया और वे 'मब शून्य ही दिखाई पडता है' इत्यादि कहने लगते है । इस स्थल पर भास ने करुण रस से साक्षात् करवा दिया है ।

पालि साहित्य मे करुण की प्रधानता इतने से ही समझ ली जा सकती है कि भगवान बुद्धदेव का जीवन ही करुणा से परिचालित हुआ था और अहिसा परमोधर्म. को मूलमत्र मानने के कारण हिंसा और हिसक वृत्ति रोकने के लिए उनकी, उनके शिष्यो एव अन्य काल्पनिक पात्रो की जन्म और पुनर्जन्म की कथाये आविष्कृत हुई थी जिनमे शोक के कारण विराग और बुद्ध धर्म की शरण जाने का प्रकारातर से उपदेश है ।

धार्मिक उपदेश तत्वो से भरे हुये पालि साहित्य के समान ही प्राकृत साहित्य मे करुण की स्थिति है तथा प्रकाशित रूप मे सुलभ अपभ्र श साहित्य अधिकाशत. जैन विद्वानो द्वारा रचित होने के कारण रस को अग रूप मे लेता चलता है ।

हिंदी साहित्य का प्रकृष्ट रूप वीरगाथा काल से दिखाई देता है । वीरो के उस युग मे शोक के न तो कही लक्षण हैं और न उसके लिए स्थान ही है क्योकि मरना और जीना तो हक है तथा यश युगो तक चलने वाला है । प्राणो को हथेली पर लिये हुये क्षत्रिय शूरमा स्वामिधर्म और नमक के लिये किसी क्षण जीवनाहुति हेतु प्रस्तुत है । यदि शोक का कोई मार्मिक प्रसग कहा जा सकता है तो आज की मनोस्थिति मे सती होने वाला, परन्तु वह इतना प्रशात है कि कर्तव्य की वेदी पर इस आहुति को करुणा का अचल नही छूने देता । वीर हिंदू नारी का आत्मोल्लास से धधकती हुई अग्नि चिताओं मे प्रवेश परम प्रशात पर अति मर्मभेदी है । यह आत्मोत्सर्ग की पूर्ण आहुति स्वतन्त्र भारत की हिंदू नारियो तथा विशेषकर क्षत्राणियो का चरित्र विशेष था । वीरगाथा युगीन कवियो ने इस सती धर्म को उल्लासपूर्ण शब्दो मे वर्णन

किया है जिनमे उस कठिन कर्तव्य पथ पर प्रेरित होकर चलने का सबल मिलता है न कि उधर से 'चित्त उपराम होता है। पृथ्वीराजरासो मे अतिम युद्ध की समाप्ति और पृथ्वीराज की पराजय के समाचार पर सती होने वाला दृश्य देखिये—

विविह तरुनि दिय दान, अवर सामत सूर भर।
अप्प अस्स हय लीय, मिलिय रह हित्त धाम घर।
चित चितै रव रवनि, गवनि पावक प्रज्जारिय।
प्रेम प्रीत किय प्रेम, नेम गेमह प्रति पारिय।
उज्जलिय झाल आयास मिलि, हर हर सुर हर गोम भौ।
जह जहा सुवास निज कत किय, तहं तहां तिय पिय मिलन भौ॥

छ० १६२४ सर्ग ६१

आधुनिक छायावादी काव्य तक जब तक अग्रेजी साहित्य की प्रणाली पर शोक गीत लिखने को प्रेरणा नही आई हिंदी साहित्य मे करुण रस अग होकर ही परिपुष्ट हुआ है प्रधान अर्थात् अगी रूप मे विवेचित नही और प्रबध काव्यो मे ही हमे उसके दर्शन होते है।

रासो काव्यो के अतिरिक्त विद्यापति की भक्ति श्रृगार पूर्ण पदावली मे भी करुण के लिए स्थान नही है केवल उन अतिम पदो के जहाँ जीवन की विषम गति और उत्ताल वासना-पूर्ति परम विषाद मे फूट पडी है। यथा—

तातल सैकत वारि-बिंदु सम
सुत–मित रमनि समाज।
तोहे बिसरि मन ताहे समरपिनु
अब मझु हब कोन काज॥
माधव हम परिनाम निरासा
तुहु जग तारन दीन दयामय, अतए तोहर विसवासा।

सूफी काव्यो मे विप्रलभ का इतना गहरा पुट है और जीवात्मा द्वारा परमात्मा से मिलन की इतनी उत्कट प्रतीक्षा है कि उसके आगे अन्य कुछ भी नही है फिर भी अन्योक्ति रूप मे ली गई कथाओ मे करुण भी कही-कही आ गया है यथा जायसी के पदमावत मे एक तो राजा रत्नसेन के योगी होने पर और दूसरा उनके वीरगति पाने पर इन दोनो प्रसगो मे से प्रथम मे पात्र द्वारा अभिव्यजना है और दूसरे मे केवल करुण दृश्य चित्रित है। प्रथम इस प्रकार है—

रोवहिं रानी तजहिं पराना। नोचहिं बार करहिं खरिहाना।
चूरहिं गिउ-अभरन उर हारा। अब कापर हम करब सिगारा।
जकहँ कहहि रहसि कै पीऊ। सोइ चला काकर यह जीऊ।
मरै चहहिं पै मरै न पावहिं। उहै आगि सब लोग बुझावहिं।

यहाँ करुण रस पूरी तौर से अभिव्यजित हुआ है क्योकि यहाँ पर विभाव के अतिरिक्त रोना और बाल नोचना अनुभाव है तथा विषाद सचारी है ।

दूसरा, हिंदू सती का हृदय विदारक सती-धर्म का पालन है। लोक की अग्नि सती हेतु शीतल हो गई क्योकि वह पति लोक का द्वार उन्मुक्त करती है–

आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड़ ।
आजु नाचि जिउ दीजिय, आजु आगि हम्ह जूड़ ।।

जिसका परिणाम यह हुआ–

लेइ सर ऊपर खाट बिछाई । पौढ़ीं दुवौ कत गर लाईं ।।
लागी कंठ आगि दिय होरी । छार भईं जरि अग न मोरी ।।

अपने को राम की बहुरिया मानने वाले सत कबीर एव अन्य सतो के लिए ससार के सुख व आनन्द झूठे है क्योकि जगत तो काल का चबेना है–

झूठे सुख को सुख कहै मानत है मन मोद ।
जगत चबेना काल का कुछ मुख मे कुछ गोद ।।

तथा नश्वर शरीर की कोई हस्ती-हैसियत नही क्योकि जीव के गमन के पश्चात्–

हाड़ जरै जस लाह कड़ी के, केस जरै जस घासा ।
सोना जैसी काया जरि गई, कोइ न आयौ पासा ।।

ससार के लोग जिसे सुख कहते है और जिस काया के प्रति आकर्षित होकर पोषण करते है । वह सब निर्गुण उपासकों के लिए मिथ्या है । उनके लिए शोक का प्रसग यदि है तो झूठे ससार की माया-मरीचिका मे पडना तथा इद्रियो के विषय भोग मे रत रहना । मृत्यु करुण का प्रसग है परन्तु कबीर आदि के यहाँ तो वह आत्मा की परमात्मा से परिणय की योजना है–

आई गवनवाँ की सारी उमरि मोरी बारी ।

अस्तु परिवार को 'नदी नाव सयोग' बताने वालो के यहाँ काव्यशास्त्रीय शोक का कोई प्रयोजन नही है।

कृष्ण भक्त कवियो ने राधा प्रभृति गोपियो की कान्हा के प्रति असीम अगाध प्रीति को स्वसवेद्य बनाकर जो कुछ लिखा है उसमे सयोग और वियोग के अन्यतम चित्र है तथा विप्रलम्भ की दशाओ मे करुणा यथाविधि सचारिणी है। कृष्ण का आद्योपात चरित्र यदि लिया जाता तो उसमे शोक के प्रसग आ सकते थे। कृष्ण भक्त कवियो ने प्रबन्ध काव्य नही लिखे, मुक्तक रूप मे अधिकाशत· कृष्ण की बाल-लीला और किशोर-लीला का चित्र मात्र ही उन्होने खीचा है। इन चित्रो मे काली नाग नाथन लीला मे कृष्ण के कालीदह मे कूदने पर माता-पिता और गोप सखाओ का शोक सूर ने बडे ही सम्यक् रूप से दिखाया है–

सुपनौ परगट कियौ कन्हाई ।
सोवत ही निसि आजु डराने, हमसौं यह कहि बात सुनाई ।
धरनि परी मुरझाइ जसोदा, नद गए जमुना तट धाई ।
बालक सब नदहि सग धाए, ब्रज घर जहँ तहँ शोर मचाई ।
त्राहि त्राहि करि नद पुकारत, देखत ठौर गिरे भहराई ।
लोटत धरनि परत जल भीतर, सूर स्याम दुख दियो बुढाई ।

रामभक्त शाखा के प्रमुख तुलसीदास का मानस हिंदी साहित्य का अनमोल रत्न है। भाव, अलकार, छद, चरित्र-चित्रण, जीवन से सबध आदि सभी के चित्रण मे तुलसी अपूर्व है। प्रत्येक रस के निरूपण मे उन्होने जिस ढग से पृष्ठ-भूमि बाँधी है उससे कौन विमुग्ध नही हो जाता। मानस के करुण रस के स्थल तक आते आते स्वभाव, चरित्र, घटना, द्व द और समन्वय का ऐसा वातावरण बँधता है कि कवि के विवेक बुद्धि तथा अवगाहन शक्ति का स्वत: उद्‌घोष हो उठता है। चक्रवर्ती महाराज दशरथ की पुत्र-वियोग मे मृत्यु का दृश्य लीजिए। सीता, राम, लक्ष्मण वन को चले गये, इधर दशरथ की विह्वलता देखिए–

आसन सयन विभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
लेइ उसास सोच एहि भाँती । सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती ॥
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पख परेउ सपाती ॥
राम राम कह राम सनेही । पुनि कह राम लखन वैदेही ॥

इसी व्याकुलता की स्थिति मे मत्री सुमत्र लौट कर राम को वन तक पहुँचाने का समाचार देते है। राम का विदाई सन्देश सुनकर तथा व्यवहार जानकर राजा ग्लानि, उद्वेग व परिताप मे निमज्जित हो जाते हैं–

सूत बचन सुनतहि नर नाहू । परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत विषम मोह मन मापा । माजा मनहुँ मीन कहुँ व्यापा ॥

उनकी यह दशा देखकर रनिवास मे शोक छा गया और उधर क्रमशः राजा के प्राण कठगत होने लगे–

प्राण कंठगत भयउ भुआलू । मनि विहीन जनु व्याकुल व्यालू ॥
इद्री सकल विकल भई भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी ॥

कौशिल्या ने नाना भाँति से प्रबोधा परन्तु राजा को सतोष न हुआ; अधे तापस के श्राप की बात स्मरण करके वे बोले—

सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा ॥
हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम बिन जियत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुबर । हा पितु हित चित चातक जलधर ॥
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह राउ गयउ सुरधाम ॥

और अवसर न चूकने वाले तुलसी ऐसे घोर दु ख के प्रसंग मे भी राम की भक्ति का प्रचार कर गये—

जिअन मरन फलु दशरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा ।।
जिअत राम विधु बदन निहारा। राम विरह करि मरनु सँवारा ।।

तथा करुण के सचारी विषाद की योजना करके तुलसी ने चित्र पूरा कर दिया—

सोक विकल सब रोवहिं रानी। रूप सीलु बलु तेज बखानी ।।
करहि विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहि बारा ।।

लोक को रुलाने वाले आततायी रावण की मृत्यु पर ऐसा ही करुण का सागोपाग चित्र स्मृति और विषाद आदि सचारियो की सहायता से तुलसी ने लकाकाड मे खीचा है।

रीति-बद्ध और रीति-मुक्त शृ गारी तथा तत्कालीन भक्त कवियो के पास वीर काव्य प्रणेताओ को छोड कर प्रबध काव्य प्रणीत किये जाने की सभवत कोई प्रेरणा अथवा योजना न थी अस्तु अगी रूप मे करुण रस की चर्चा करने के लिये उनके पास कोई अवसर न था। रीति काल के अनुशासन का पालन करते हुए उनमे से कई ने नायिका भेद के अतिरिक्त नव रसो की भी लक्षणो और स्वरचित उदाहरणो समेत चर्चा की है। ऐसे ही स्थलो पर हमे करुण रस के दर्शन हो जाते है। पद्माकर ने अपने जगद्विनोद मे करुण रम के निम्न दो उदाहरण दिये है—

आँसुन अन्हाय हाय हाय कै कहत सब,
औधपुरी वासी कै कहा यौं दुख दाहिये।
कहै पदमाकर जुलूस युवराजी को सु,
ऐसो धनी है न जाय जाके सीस बाहिये।
सुत के पयान दशरथ ने तजे जो प्रान,
बाढ्यो सोक सिंधु सो कहाँ लों अवगाहिये।
मूढ़ मथरा के कहे बन को जु भेजे राम,
ऐसी यह बात कैकेयी को तो न चाहिए।

राम भरत मुख मरन सुनि दशरथ के माँह।
महि परि भे रोदति उचरि, 'हा पितु हा नरनाह' ।।

भारतेंदु ने करुण रस के सम्यक् चित्र अपने विविध नाटको मे यथा अवसर प्रस्तुत किये है। आचार्य महाबीरप्रसाद द्विवेदी ने नारी-उत्थान का स्वर उठाया और मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओ मे शृ गार और सचारी करुण के माध्यम से पुराने आदर्श नारी पात्रो को खोजकर उन्हे नवीन ज्योति से

आलोकित किया तथा उस वर्ग पर सहानुभूति एव सवेदना से विचार करने का दिग्दर्शन निम्न पक्तियो से कराया–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

अपने साकेत मे उन्होंने महाराज दशरथ के परलोक गमन का इस प्रकार चित्रण किया है–

मेरे कर युग हैं टूट चुके,
कटि टूट चुकी, सुख छूट चुके।
आँखों की पुतली निकल पड़ी,
वह यहीं कहीं है विकल पड़ी!
खाकर भी बार बार झटके—
क्यों प्राण अभी तक हैं अटके?
हे जीव चलो अब दिन बीते,
हा राम, राम, लक्ष्मण सीते!"
बस यहीं दीप निर्वाण हुआ,
सुत विरह वायु का बाण हुआ।
धुंधला पड़ गया चंद्र ऊपर,
कुछ दिखलाई न दिया भूपर।
अति भीषण हाहाकार हुआ,
सूना सा सब ससार हुआ।
अर्द्धांग रानियाँ शोक कृता,
मूर्छिता हुईं या अर्द्ध मृता!

बँगला कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने अपने मेघनादवध काव्य मे वासव-विजेता की मृत्यु पर प्रमीला और रक्षोराज रावण के हृदय विदारक शोक का चित्र खीचा है–

कैसे मैं फिरूँगा—मुझे कौन बतलायेगा–
कैसे मैं फिरूँगा हाय! शून्य लका धाम में?
दूँगा सान्त्वना क्या मैं तुम्हारी उस माता को,
कौन बतलावेगा मुझे हे वत्स? पूछेगी
मन्दोदरी रानी जब कह यह मुझसे—
'पुत्र कहाँ मेरा? कहाँ पुत्रवधू मेरी है?
रक्षः कुलराज, सिंधु तीर पर दोनों को
किस सुख संग कहो छोड़ तुम आये हो?'

किस मिस से मैं उसे जाके समझाऊँगा–
कहके क्या उससे हा! कहके क्या उससे?
हा सुत! हा वीर श्रेष्ठ! चिर रण विजयी।
हाय! वधू, रक्षोलक्ष्मि, रावण के भाल में,
विधि ने लिखी है यह पीड़ा किस पाप से।
दारुण?

हिंदी के छायावादी कवियो मे विशेषत. निराला ने शोकगीत लिखा। अपनी दिवगता कन्या को लेकर उन्होने 'सरोज स्मृति' शीर्षक एक बडी मर्म स्पर्शिनी रचना की है जिसकी अतिम पक्तियाँ इस प्रकार है–

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल,
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही!
हो इसी कर्म पर वज्रपात,
यदि धर्म रहे नत सदा माथ,
इस पथ पर मेरे कार्य सकल,
हो भ्रष्ट शीत के से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण,
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

वीभत्स रस

वीरगाथा काल से प्रारभ होने के कारण हिंदी साहित्य मे तलवारो की चमक और वाणो की सनसनाहट तथा नगाडों के घोष के साथ युद्ध हेतु अभियानो के दर्शन होते है जिनमे जय-पराजय को छोडकर अतिम दृश्य जुगुप्सा कारक ही पाये जाते हैं। कई वास्तविक और अनेक कल्पित युद्धों के भडार पृथ्वीराजरासो का एक छद यथेष्ट होगा–

पत्र भरें जुग्गिनि रुधिर, गिद्धिय मंस डकारि।
नच्चौ ईस उमया सहित, रुंड माल गल धारि॥ छं० १६ स० २९

विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता मे तिरहुत के राजा कीर्तिसिंह और नवाब असलान के युद्ध की समाप्ति पर रण का निम्न दृश्य दिखाया है–

पले रुण्ड मुण्डो खरो बाहुदण्डो,
सिआरू कलङ्कोइ कङ्काल खण्डो,
धरा धूरि लोट्टन्त टुट्टन्त काया,
सरन्ता बलन्ता पआलेन्नि पाआ।

अरुज्झाल अन्तावली जाल वद्धा,
वसा बेग बूडन्त उड्डन्त गिद्धा।
गअन्डी करन्तो पिबन्तो भरन्तो,
महामासु खंडो परन्तो भरन्तो।
सिआसार फेक्कार रोल करन्तो,
बुभुष्या बहू डाकिनी डक्करन्तो।
बहुप्फाल बेआल रोल करन्तो,
उलट्टो पलट्टो पेलन्तो कबंधो।
सरोसान भिन्ता करे देइ सानो,
उमस्से विमस्से विमुक्केइ पाणो।
जहाँ रत्त कल्लोल नाना तरगो,
तहा सारि सज्जो निमज्जो मयगो।
रकत कराङ्कन माँथ डफरि फेरनी फोरि षा।
हाथे न उट्ठय हाथि छाड़ि बेआलु पाछु जा॥
नर कबध धर फलइ मम्म बेआवह पेल्लइ।
रुहिर तरङ्गिणि तीर भूत गण जरहरि खेल्लइ॥

[अर्थात्--रुड-मुड पडे हैं। बाहुदड खडा है। शृगाल ककाल के टुकडे खखोल रहे हैं। कटते हुए शरीर पृथ्वी पर धूलि मे लोटते थे। लडते हुए, चलते हुए पैर शांत हो जाते थे। गिद्ध उलझाने वाली आँतों मे उलझकर, चर्बी मे जल्दी से डूबकर फिर उड़ जाते थे। प्रेत गाता हुआ, पीता हुआ, भरता हुआ महामास के खंड (पेट में) भर रहा था। बहुत सी डाकिनियाँ सी-सी फे-फे शोर करती हुई भूख के मारे डकरा रही थीं। वेताल तरह-तरह के शोर मचा रहे थे। कबध उलटे-पलटे होकर गिर पड़ते थे। सरोष हाथ मे शस्त्र लिये, उच्छ्वास-निश्वास मे प्राण छोड़ देते थे। जहाँ रुधिर की लहरे बहती हों, ऐसा स्थान ढूँढ़कर हाथी मग्न होता था। वेताल रक्त, ककाल और मत्स्य से तृप्त होकर फिर उसे फोडकर खाने लगता था। हाथी के हाथ से न उठाये उठने पर उसे छोडकर उसके पीछे चला जाता था। नर कबध चरफराते थे, उसके मर्मस्थल मे बेताल घुस जाते थे। भूत रुधिर की नदी के किनारे जरहरि खेलते थे।]

प्रेम की पीर वाले सूफी संत सयोग और वियोग के चित्रण मे परम दक्ष थे परन्तु यह अभिप्राय कदापि नहीं कि वे अन्य रसो की योजना मे समर्थ न थे। युद्ध की भीषणता के बीच भारतीय कवि-परपरा गिद्ध, शृगाल, कौए आदि के रूप मे जुगुप्सात्मक योजनायें करने की अभ्यस्त है और ये दृश्य प्रासगिक होने के कारण स्वाभाविक लगते हैं। जायसी का चित्रण देखिये--

आनँद ब्याह करहिं मँसखावा । अब भख जनम-जनम कहँ पावा ॥
चौंसठ जोगिनि खप्पर पूरा । बिग जबुक घर बाजहिं तूरा ॥
गिद्ध चील सब मंडप छावहिं । काग कलोल करहिं औ गावहिं ॥

निर्गुण सत कवियो को वीभत्स से कोई प्रयोजन न था और जहाँ कहीं कबीर आदि ने सचारी जुगुप्सा का सहारा लिया भी है वहाँ शात रस के परिपाक हेतु निर्वेद को स्थायी बनाने के लिये ही। यथा—

हाड़ जरें जस लाह कड़ी को केस जरें जस घासा।
सोना जैसी काया जरि गई कोउ न आयो पासा ॥
घर की तिरिया ढूंढ़न लागी ढूंढ़ि फिरी चहुँ देसा।
कहत कबीर सुनो भइ संतो छोड़ो जम की आसा ॥

सगुणोपासक कवियो की कृष्ण भक्त शाखा मे अग्रगण्य सूर ने पुराण शैली पर लिखे गये अपने विशालकाय सूरसागर में कृष्ण द्वारा अनेक वध किये जाने का उल्लेख किया है परन्तु वीभत्स रस का चित्रण उन्होंने कहीं नहीं किया। प्रतीत होता है कि अपने प्रधान सुकुमार रस की रक्षा के कारण वे इस रस को युक्तिपूर्वक बचा गये हैं। कुवलयापीड-वध मे सचारी जुगुप्सा के सहारे वे इतना मात्र कहते है—

कबहुँ लै जात इत उतै ल्यावत कबहुँ, भ्रमत व्याकुल भयौ पील भारी ॥
गेंद ज्यों गयंद कौं पटकि हरि भूमि सों, दत दोउ लिए निज कर उपारी ॥
भभकि कै दत तें रुधिर धारा चली, छींट छबि बसन पर भई भारी ॥
केसरी चीर पर अबिर मानों पर्‌यौ, खेलतें फागु डार्‌यौ खिलारी ॥

अन्य वधों में यहाँ तक कि कस वध में तो इतना भी नहीं है। रस के परिज्ञान और उसकी स्थापना में परम निपुण सूर को संभवतः वीभत्स का परिपाक दिखाना अभीष्ट नहीं था।

सूर के विपरीत तुलसी को लीजिये। क्या मानस और क्या अन्य रचनायें, जहाँ जिस रस का प्रसंग आया उसे विधि विधान सहित साकार कर दिया। मानस के लकाकाड मे वीभत्स का एक स्थल देखिये—

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला ॥
काक कक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं ॥
एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सकहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥
कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे ॥
खेंचहिं गीध आँत तट भए। जनु बसी खेलत चित दए ॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं ॥
जोगिनि भरि-भरि खप्पर संचहिं। भूत पिसाच वधू नभ नंचहिं ॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना विधि गावहिं ॥

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥

तथा कवितावली से लका युद्ध के प्रसंग मे स्थायी जुगुप्सा का दृश्य लीजिये—

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडल, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुग झुंड झुंड बनी तापसी-सी,
तीर तीर बैठीं सू समर सरि खोरि कै।
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै।

रीतिकालीन कवियों के लिये वीभत्स चर्चा का कोई प्रसंग नहीं था। जिन्होंने रस विवेचन सम्बधी ग्रंथ लिखे उन्होंने अवश्य ही वीभत्स के भी उदाहरण दे दिये हैं। इन कवियों मे प्रबन्ध काव्य के रचयिताओं ने प्रसंगानुसार वीभत्स का सम्यक् चित्र खींचा है। आचार्य केशव ने अपनी रामचद्रिका में लका मे हनूमान के बाँधे जाने पर उनके दडविधान स्वरूप राक्षसो की जुगुप्सात्मक वृत्ति का बड़ा अच्छा परिचय दिया है—

कोरि कोरि यातनानि फोरि फोरि मारिए।
काटि कटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिए।
खाल खेंचि खेंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे।
पौरि टाँगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे।

अपनी रसिकप्रिया में केशव ने नील वर्ण के वीभत्स को देख सुनकर, तन-मन में उदासी छाने वाले 'राधिका की कौ वीभत्स' को शृ गार मे इस प्रकार घटाकर वर्णन किया है—

माता ही को मास तोहि लागत है मीठो मुख,
पियत पिता को लोहू नेक ना घिनाति है।
भैयनि के कंठनि को काटत न कसकति,
तेरो हियो कैसो है जु कहति सिहाति है।
जब जब होत भेंट तब तब मेरी भटू,
ऐसी सौहैं दिन उठि खाति न अघाति है।
प्रेतिनी पिसाचिनी निसाचरी की जाई है तू,
केसौदास की सौं कहि तेरी कौन जाति है।

तथा 'श्रीकृष्ण कौ वीभत्स रस' इस प्रकार लिखा है—

टूटे ठाट घुन घुने धूम धूरि सो जु सने,
झींगुर छगोड़ी साँप बीछिन की घात जू।

कटक कलित त्रिन बलित बिगध जल,
तिनके तलप-तल ताको ललचात जू।
कुलटा कुचील गात अंध तम अधरात,
कहि न सकत बात अति अकुलात जू।
छेंड़ी मे घुसो कि घर इँधन के घनस्याम,
पर घरनीनि पहँ जात न घिनात जू।

भिखारीदास ने अपने काव्य-निर्णय मे जुगुप्सा भाव का पूरा आस्वादन शास्त्रोक्त विधि से कराया है—

बरखा के सरे मरे मृतक हू खात,
न घिनात खरे कृमि भरे मासन के कौर को।
जीवत बराह कौ उदर फारि चूसत है,
भावै दुरगंधवौ सुगंध जैसें और कों।
देखत सुँनत सुधि करत हू आवै घिन,
साजे सब अँगन घिनामने हिंडोर कों।
मति के कठोर मौंन धरँम को तारे,
करैं करम अघोर डरैं परम अघोर को।

वीर रस के ख्यातनामा कवि भूषण का वीभत्स रस सबधी छद देखिये—

भूप सिवराज कोप करि रन मडल मैं,
खग्ग गहि कूद्यो चकता के दरबारे मैं।
काटे भट विकट रु गजन के सुंड काटे,
पाटे उर भूमि काटे दुवन सितारे मैं।
भूषन भनत चैन उपजैं सिवा के चित्त,
चौंसठ नचाईं जबै रेवा के किनारे मैं।
आँतन की ताँत बाजी खाल की मृदंग बाजी,
खोपरी की ताल पशुपाल के अखारे मैं।

इस छद मे जुगुप्सा सचारी होकर शिवाजी के प्रताप का अग बन गई है अस्तु राजा विषयक रति भाव है न कि वीभत्स रस।

हम्मीरहठ के रचयिता चद्रशेखर ने, रणथभौर दुर्ग हेतु अलाउद्दीन खिलजी की चढाई और युद्ध मे निम्न जुगुप्सात्मक चित्र खीचा है—

चुंचनि चुत्थैं गृद्ध मांस जंबुक मिलि भच्छैं।
चाटैं चरबि पिसाच प्रेत गहि हाड़ प्रतच्छैं।
भखैं मोद भरि भूत रुंड भैरव लै भज्जैं।
गहिं कपाल रत पान करत चंडी गल गज्जैं।

नाचै निहारि जुरि जोगिनी, सुभट जच्छ कन्या बरैं।
रनभुम्मि भए कायर विमुख, सूर समर साका करैं।। ३३१

किसी अज्ञात कवि रचित पिशाच सुन्दरी का चित्र भी दृष्टव्य है–

आंत के तार जु मगल कंगन, हाथ में बाँधि पिसाच की बाला।
कांनन हाड़न के झुमका, पँहरे हिय में हियरांन की माला।
लोहू के कीचर सों उबटे सब अंग बनाएँ सरूप कराला।
पीतम के सग हाड के गूदे की मद्य पिये खुपरीन के प्याला।

पद्माकर ने अपने जगद्विनोद मे वीभत्स के दो उदाहरण दिये हैं–

पढ़त मंत्र अरु यंत्र, अत्र लीलत इमि जुग्गिन।
मनहुँ गिलत मदमत्त, गरुड़-तिय अरुन उरुग्गिन।
हरवरात हरषात, प्रथम परसत पल पगत।
जहँ प्रताप जिति जंग, रग अँग-अंग उमंगत।
जहँ 'पदमाकर' उतपत्ति अति, रन रक्कत-नद्दिय बहत।
चख चकित चित्त चरबीन चुभि, चकचकाइ चंडी रहत।

तथा

रिपु अन्नन की कुंडली, कर जुग्गिन चु चबाति।
पीबहि में पागी मनो, जुवति जलेबी खाति।।

कवि लाल ने अपने छत्रप्रकाश में हाथियो का रक्त पीने, घोडो को चबाने, अँतड़ी लपेटी हड्डियों को हाथो मे धारण करने आदि के घृणा उत्पादक कार्यों का वर्णन किया है–

कोटि कुंड सुंडनि के रुंड में लगाय तुंड,
झुंड झुंड पान कै कै लोहू भूत चेटी है।
घोड़न चबाय चरबीन सों अघाय लेटी,
भूखे सब मरे मुरदान में समेटी है।
लाल अंग कीन्हे सीस हाथन में लीन्हें,
अस्थि भूषन नगीने आँत जिन पै लपेटी है।
हरख बढ़ाय अँगुरिन को नचाय पियँ,
सोनित पियासी सी पिसाचिनी की बेटी है।।

राम और रावण के युद्ध मे मारे गये शवो पर गिद्ध मँडरा रहे हैं। योगिनियाँ प्रसन्नता से खोपडियो के प्याले मे रुधिर भर-भर कर पी रही हैं और पिशाच आँतो की माला गले मे डाले चरबी चबाते घूम रहे हैं। इस चित्र के प्रस्तुतकर्त्ता लछिराम हैं देखिये—

समर समीप रामचंद्र और रावण के,
बानन की बरसा घटा सी घिर जाति हैं।

कोटिन सुभट परें परिहरि प्राण भूमि,
तिन्हें हेरि गीधन की सेना मँडराति है।
कवि लछिराम कालिका की किलकारें सुनि
जग जोरि जोगिनी-जमाति हरषाति हैं।
खोपरी के प्यालन में करति रुधिर पान,
आँतन की माला गर चरबी चबाति हैं॥

और देखिये भुक्खड़ो को भोज क्या मिला चारो ओर नरक बिखर गया—

सिर पै बैठो काग आँखि दोउ खात निकारत।
खैंचति जीर्वाह स्यार अतिहि आनद उर धारत।
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै माँस उपारत।
श्वान आँगुरिन काटि काटि कै खान विचारत।
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद मढ्यौ सब कौ हियौ।
मनु ब्रह्म भोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियौ॥

आधुनिक काल के कवियो मे भारतेंदु ने वीभत्स रस के दर्शन अपने नाटकों मे यथास्थान कराये हैं। हरिश्चन्द्र नाटक में उनका मरघट वर्णन जुगुप्सा-कारक तो है ही भयोत्पादक भी है जिसमे पिशाचों और डाकिनियों का गाना देखिये—

पिशाच— हम काट काट कर सिर का गेंदा उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा बालेंगे॥

डाकिनी— हम माँग में लाल लाल लोहू का सेंदुर लगावेंगी।
हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बनावेंगी॥

सब— हम धज से सज के बज के चलेंगे चमकेंगे चम चम-चम।

पिशाच— लोहू का मुँह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ेंगे।
माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोड़ेंगे।

डाकिनी— हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावेंगी।
कफ़न बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी॥

रामचरित उपाध्याय ने वीभत्स का निम्न दृश्य प्रस्तुत किया है—

अतिथि है श्वान गीदड़ गिद्ध तेरे।
सदा सब है मनोरथ सिद्ध तेरे।
कहीं जल में बहे शव आ रहे है।
उन्हीं पर काक कड़खे गा रहे हैं॥

पुराने और नये कवियों ने प्राय. युद्ध से सबधित वीभत्स रस के चित्र खीचे हैं जो लगभग एक समान चित्र प्रस्तुत करते है।

परन्तु नाथूराम शंकर शर्मा ने शवो आदि की दुर्दशा से सम्बधित दृश्यो के अतिरिक्त किसी फूहड स्त्री को हूबहू चित्रित करने के प्रयास के साथ जुगुप्सा भी उत्पन्न कर दी है—

भोड़े मुख लार बहै आँखिन में ढीड़ राधि—
कान में सिनक रेंट भीतिन पै डारि देति।
खर्र खर्र खुरचि खुजावै मटुका सो पेट,
टूंड़ी लौं लटकते कुचन को उघारि देति।
लौटि लौटि चीन घांघरे की बार बार फिरि,
बीनि बीनि डींगर नखन धर मार देति।
लंगरा गँधात चढ़ी चीकट सी गात मुख—
धोवै ना अन्हात प्यारी फूहड़ बहार देति।

हरिऔध जी ने बालिकाओ और विधवाओ पर अत्याचार करने वालो की खबर सचारिणी जुगुप्सा के माध्यम से निम्न छंद मे ली है—

साँप ते डरावने भयावने हैं भूतन ते,
काक जैसे कुटिल अपार अरुचिर हैं।
अपजस भाजन कलंक के निकेतन हैं,
कामुकता मदिर के निंदित अजिर हैं।
हरिऔध मानव सरूप माँहि दानव हैं,
आँख कान अछत ते आँधर बधिर हैं।
हाड़ जे चिचोरत विचारी विधवान के हैं,
भोली बालिकान के जे चूसत रुधिर हैं।

रत्नाकर जी ने अपने श्मशान के चित्र मे वीभत्स रस को साकार कर दिया है—

कहूँ श्वान इक अस्थि खंड लै चाटि चिचोरत।
कहुँ कारो महि काक ठोर सों ठोकि टटोरत।
कहुँ शृगाल कोउ मृतक अग पर ताक लगावत।
कहुँ कोउ शव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत।
जहँ तहँ मज्जा मांस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे।
भए एकट्ठा आनि तहाँ डाकिनि पिशाच गन।
कूदत करत कलोल किलकि दौरत तोरत तन।

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा प्रस्तुत वीभत्स का निम्न दृश्य भी देखिये—

इस ओर देखो रक्त की यह कीच कैसी मच रही;
है पट रही खंडित हुए बहु रुंड मुंडों से मही।

कर पद असंख्य कटे पड़े शस्त्रास्त्र फैले है तथा,
रणस्थली ही मृत्यु की एकत्र प्रकटी हो यथा।
झुकते किसी को थे न जो नृप मुकुट रत्नों से जड़े,
वे अब शृगालो के पदो की ठोकरें खाते पड़े।
पेशी समझ माणिक्य को वह विहग देखो ले चला,
पड़ भोग की ही भ्राति में ससार जाता है छला।

छायावादी कवियो को घिनौने रूपो के प्रति कोई आकर्षण या अनुराग न था और सुकुमार रसो मे अपनी भाव-भूमियो को अवतरित करने के कारण उन्हे जुगुप्सा की कोई आवश्यकता भी न थी। यही कारण है कि पत, निराला और महादेवी की रचनाओ मे वीभत्स रस की कोई योजना नही मिलती। प्रसाद जी ने अवश्य ही फारसी शैली से प्रभावित होकर सचारिणी जुगुप्सा के सहारे अपने करुण-विप्रलभ को और अधिक तीव्र करने की चेष्टा की है। यथा—

छिल छिन्न कर छाले फोडे
मल मल कर मृदुल चरण से।
घुल घुल कर बह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।

प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवि यथार्थ लिखने के लिए प्रसिद्ध है। उनका ढंग और तर्ज़ अपने है। कुँवर नारायण 'लुढक पड़ी छाया' शीर्षक कविता मे लिखते है—

एक फीकी किरण सूजी लाश पर,
स्वप्न कोई हँस रहा आकाश पर,
देह से कुछ भूख गायब, कुलबुलाती आँत;
खोपड़ी से देह गायब, खिलखिलाते दाँत;

—तीसरा सप्तक

जगदीश गुप्त ने अपने 'शब्द दश' नामक सग्रह मे 'सीधी बात का काँटा' शीर्षक मे लिखा है—

मौत भी क्या खूब—
जो खन्ती भरे उन पर न रख कर दाँत
मरभुखों की खिंची सूखी आँत पर गीधी।

और अपने 'क्षुधा काम स्तोत्र' मे उन्होने क्षुधा का जुगुप्साकारक रूप खीचा है—

जयति क्षुधे !
रक्त मांस मज्जा के दाह से
दीपित जिसका माथा।

भू····ख····भ····ख
अवनी-अम्बर–वाची ध्वनियो से
विरचित जिसकी गाथा ।
जठर ज्वलित काया को घेरकर
बज उठती आँतो की किंकिणी।
षट रस का राग मुखर, ग्रास रास रगिणी।
अपने ही अडे खा जाने वाली भुजगी,
खिंची नसो वाली चामुंडा की प्रतिमा सी
आमाशय वासिनि, भासिनि बहुधे !
जयति हुताशन तनये जयति क्षुधे।

इन प्रसगो मे सचारिणी जुगुप्सा से काम लिया गया है।

भयानक रस

हिंदी के वीरगाथा कालीन काव्य मे हमे भयानक रस के दर्शन यथा विधि होते है। पृथ्वीराजरासो मे ढुंढा दानव का प्रसग अतीव भयोत्पादक है। यह दानव पाँच सौ हाथ ऊँचा था, हाथ मे विकराल खड्ग लिये रहता था और मुँह से ज्वालाये फेका करता था–

अगह मान प्रमान, पंच सै हथ्थ उनै कह।
छह ऊँचौ उनमान, विनय लछ्छिनह विवेकह।
हथ्थ खड्ग विकराल, मुष्ष ज्वालंघन सद्दह ।।

ढूंढ ढूंढ कर नरो को खाने के कारण इसका नाम ढूंढा पड़ा और उसने सुन्दर अजमेर नगर उजाड डाला–

ढूंढि ढूंढि खाये नरनि तातें ढूंढा नाम।
देवपुरी अजमेर पुर, रम्य करी बेराम ।।

चन्द ने बावन वीरों को वशीभूत कर लिया और उनका आवाहन किया। उनके रूप भय पैदा करने वाले थे। देखिये–

को इक कुंजर मद बहुत, को इक सिंघ सरूप।
को इक पन्नग विष गरल, को इक दिष्षित भूप।
अग्नि ज्वाल तन किन उठत, किन तन बरसै मेह।
चक्र पवन डंडूर के, के तन ककर खेह ।।

रासो मे भय पैदा करने वाले भूत, प्रेत, भैरव और योगिनियों के नृत्य भी है। यथा–

किलकारति भैरव भूत करैं, हलकारत षेतरपाल परैं।
गलै राग गावंत सिंधू सगिधू, गलै माल जा सूल कप्पैर बंधू ।।

अगे षेचरं षेतपाल बेतालं, तहां भैरवं नद्द जोगीहृ कालं ।।

गुफा मे सिंह के भ्रम से धुआँ करने पर एक क्रोधित ऋषि निकले और उन्होने पृथ्वीराज को उनके शत्रु द्वारा चक्षु-विहीन किये जाने का श्राप दे दिया। उस श्राप के भय से पृथ्वीराज की निम्न दशा हो गई—

सुनिय बयन्न श्रवन्न, कंपि प्रथिराज थरथ्थर,
जिते सथ्थ सामत, सूर उर त्रास धरद्धर।
गये वदन कुमिलाय, सषिक अति अधर अद्ध उध।
बोलत बोल न बनै, सबै संताप साप दध।
रिषि श्राप दाप कौ अग मैं, को ठिल्लै पग एक लगि।
जगल न जाइ न न जाइ घर, भरि न सरक्कै भूप डग ।।

रण की विभीषिका से भयभीत होकर भागने वाले कायरो का उल्लेख प्राय. प्रत्येक वीर काव्य मे प्राप्त होता है। प्रबन्ध काव्यो के अतिरिक्त आल्हा जैसे वीर काव्य मे भी उनका समावेश है। देखिये—

ऊँचे खाले कायर भागे। जे रन दूलह चले बराय ।।

प्राणोत्सर्ग की बाज़ी मे बहुधा योद्धागण विचलित होते पाये गये है जो भयभीत होकर युद्धभूमि से भाग निकलते है।

सूफियो के प्रेमाख्यानक काव्यो मे भी भयानक रस की योजना मिलती है। जायसी ने अपने पद्मावत मे 'सात समुद्र खड' के अतर्गत 'किलकिला समुद्र खड' के अतर्गत किलकिला समुद्र का भयभीत करने वाला वर्णन किया है। यथा—

पुनि किलकिला समुद पहुँ आये। गा धीरज देखत डर खाए।
भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा।
उठै लहरि परबत कै नाईं। फिरि आवै जोजन सौ ताईं।
धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद जानहुँ भा ठाढ़ा।
नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रभ समुद जस होई।
फिरत समुद जोजन सौ ताका। जैसे भँवै कोहांर क चाका।
भै परलै नियराना जबहीं। मरै जो जब परलै तेहिं तबहीं
गै औसान सबन्ह कर, देखि समुद कै बाढ़ि।
नियर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढ़ि।

और 'देश यात्रा खड' मे उन्होने समुद्र मे एक राक्षस के रूप-रग का निम्न वर्णन किया है—

पाँच मूँड़ दस बाहीं ताही। दहि भा सावँ लंक जब दाही।
धुआँ उठै मुख साँस सँघाता। निकसै आगि कहै जो बाता।
फेंकरे मूँड़ चँवर जनु लाए। निकसि दाँत मुँह बाहर आए।

देह रीछ कै, रीछ डेराई। देखत दिस्टि धाइ जनु खाई।
राते नैन नियर जौ आवा। देखि भयावन सब डर खावा॥
धरती पायँ सरग सिर, जनहुँ सहस्राबाहु।
चाँद सूर और नखत महँ अस देखा जस राहु।

सूरदास ने अपने सूरसागर मे दावाग्नि का बडा ही भयकर दृश्य वर्णन किया है। यथा–

भहरात झहरात दवानल आयौ।
घेरि चहुँ ओर करि सोर अंदोर बन,
धरनि आकास चहुँ पास छायौ।
बरत बन काँस, थरहरत कुस काँस,
जरि उड़त हैं बाँस अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, पटकि फल चट चटकि,
फटत लट लटकि द्रुम द्रुम नवायौ।
अति अगिनि झार भभार धुंधार करि,
उचटि अगार झझार छायौ।
बरत बन पात भहरात झहरात,
अर्रात तरु महा धरणी गिरायौ।
भये बेहाल सब ग्वाल ब्रज बाल तब,
सरन गोपाल कहि कै पुकारयौ।
तृना केसी सकट बकी बक अघासुर,
वाम कर राखि गिरि ज्यो उबार्यौ।

मानस मे लक्ष्मण के क्रोध के कारण भय की उत्पत्ति तुलसी ने इस प्रकार दिखाई है–

लखन सकोप वचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोक सब भूप डराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥

कवितावली मे उन्होने लका मे हनुमान की पूँछ मे तेल के पलीते बाँधकर आग लगाने के प्रसग मे उनका क्रुद्धालु रूप दिखाया है जिसने राक्षसो को भयभीत कर दिया था। फिर पवनपुत्र ने सम्पूर्ण हेमलका मे आग लगा कर सबको त्रस्त कर दिया। सुन्दरकाड मे यह मब विस्तृत रूप से दृष्टव्य है। यहाँ एक कवित्त पर्याप्त होगा–

लाइ-लाइ आगि, भागे बाल जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुक, गिरि मेरु तें विसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो।

तुलसी विराज्यौ ब्योम बालधी पसारी भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।
तेज के निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख विकराल, मुख तैसो रिस लाल भो।।

अपने मानस मे भक्त कवि ने कुम्भकर्ण के युद्ध का भयपूरित करने वाला चित्र खीचा है—

कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई।
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलत महि गर्दा।
रन मद मत्त निसाचर दर्पा। विस्व ग्रसिहि जनु एहि विधि अर्पा।
कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी।।

महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस।।

भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा।
चले भागि कपि भालु भवानी। विकल पुकारत आरत बानी।।

करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि।।

रीतिकालीन कवियो ने प्रसंगानुसार भयानक रस की व्यजना की है और इस युग के वीर रसात्मक प्रबधकाव्यकारो ने तो अपने अवसर खोये ही नही है। सर्वप्रथम केशव की रसिकप्रिया मे 'राधिका जू को भयानक रस' देखिये—

भुव मडल मडित कै घनघोर उठे दिवि मंडल मंड गटी।
घहराति घटा घन बात के सघट घोष घटै न घटी हूँ घटी।
दस हूँ दिसि केसव दामिनि देखि लगी प्रिय कामिनि-कठ-तटी।
जनु पंथहि पाप पुरदर के बन पावक की लपटै झपटी।।

तथा 'श्रीकृष्ण को भयानक रस' इस प्रकार दिया है—

रोष में रस के बोल विष तें सरस होत,
जानै सो प्रबल पित्त दाखै जिन चाखी हैं।
केसोदास दुख दीबे लायक भयेऽब तुम,
आज लगि जाकी जी मैं आँखें अभिलाखी हैं।
सूधे ह्वै सुधारिबे कौं आए सिखवन मोहि,
सूधे हूँ मै सूधी बातै मो सो उन भाखी हैं।
ऐसे में हौं कैसे जाउँ दुरि हूँ धौं देखौ जाइ,
काम की कमान सी चढ़ाइ भौंह राखी हैं।।

श्याम के मथुरा आने पर कस का सारा सयानापन सियारपन मे परिणत

हो गया। इस भय का पता देने वाले है अपने 'काव्यनिर्णय' मे भिखारीदास। देखिये—

आयौ कान्ह सुनि भूल्यौ सकल सौंयनपॅन,
स्यार-पॅन कस को न कहत सिरात हैं।
ब्याल बर पूरब चॅडूर द्वार ठाढ़े तऊ,
भभरि भगाइ भयौ भीतर-ही जात है।
दास ऐसी डर-डरी मति है तहाँ-हू ताकी,
भरभरी लागी मॅन थरथरी गात है।
खरक हूँ के खरकत, धकधकी धरकत,
भोन कोन में सिकुरत सरकत जात है॥

भूषण ने निम्न पद्य मे शिवा जी के नगाडो के घोष की धाक से गोलकुडा के कुतुबशाह का थरथराना तथा शत्रुओं की छाती-धडकने का वर्णन किया है।

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखात विजैपुर पति,
फिरत फिरंगिनि की नारी फरकति है।
थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा शिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पादसाहन की छाती दरकति है।

पदमाकर ने अपने जगद्विनोद मे भयानक रस के चार उदाहरण दिये हैं जिनमे दो नीचे उद्धृत हैं—

झलकत आवै झुंड झिलम-झलानि झप्यो,
तमकत आवै तेगवाही औ सिलाही है।
कहै पदमाकर त्यौं दुंदुभी धुकार सुनि,
अकबक बोलै यौं गनीम औ गुनाही है।
माधव को लाल काल हू तें बिकराल, दल,
साजि धायो ए दई दई धौं कहा चाही है।
कौन को कलेऊ धौं करैया भयो काल अरु,
कापै यों परैया भयो गजब इलाही है॥

तथा

भुवन धुंधुरित-धूलि धूलि-धुंधुरित सु धूम हु।
पदमाकर परतच्छ स्वच्छ लखि परत न भूम हु।

भग्गत अति पर पग्ग मग्ग लग्गत अँग-अंगनि ।
तहँ प्रताप पृथिपाल ख्याल खेलत खुलि खग्गनि ।
तहँ तबहिं तोपि तुंगनि तड़पि तँतड़ान तेगनि तड़कि ।
धुकि धड़ धड़ धड़ धड़-धड़ा-धड़ धड़धड़ात तद्धा धड़कि ।।

आधुनिक काव्य के प्रवर्तक भारतेंदु ने अपने हरिश्चन्द्र नाटक मे श्मशान का बडा डरावना वर्णन किया है। यथा—

रुरुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी ।
फटफटाय दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी ।
अंधकार बस गिरत काक अरु चील करत रव ।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव ।
रोवत सिआर गरजत नदी स्वान भोंकि डरपावहीं ।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावहीं ।।

नवीन परिपाटियो के पोषक नाथूराम शकर शर्मा ने वियोगिनी की आह निकल जाने की आशका पर भय का निम्न ढग से चित्रण किया है—

शंकर नदी नद नदीसन के नीरन की,
भाप बन अंबर ते ऊँची चढ़ जायगी ।
दोनों ध्रुव छोरन लो पल में पिघलकर,
घूम घूम धरनी धुरी से बढ़ जाय ी ।
झारेंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारेंगे खमडल में आग मढ़ जायगी ।
काहूँ विधि विधि की बनावट बचैगी नाहि,
जो पै वा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी ।

और हरिऔध जी ने प्रलय का बडा रोमाचकारी चित्र खीचा है—

धँस के धरातल में धँसि जैहैं नाना जीव,
ज्वाल माल जगे गेह धू धू धू धू जरि हैं ।
परि परि पावक में विपुल पहार पंक्ति,
प्रलय पटाका ह्वै प्रचंड रव करि हैं ।
हरिऔध बार बार भू पै बज्रपात ह्वै है,
काल पेट दहत भुवन भूरि भरि हैं ।
काँचे घट तुल्य सारे लोक फूटि फूटि जै हैं,
टकराए कोटि कोटि तारे टूटि परि है ।।

रत्नाकर जी ने भी श्मशान का बडा भयावना वर्णन किया है—

हरहरात इक दिसि पीपर को पेड़ पुरातन,
लटकत जामे घंट घने माटी के बासन ।

वर्षा ऋतु के काज और हू लगत भयानक,
सरिता बहति सवेग करारे गिरत अचानक।
ररत कहुँ मडूक कहूँ झिल्ली झनकारे,
काक मडली कहूँ अमगल मत्र उचारें।
भई आनि तब साँझ घटा आई घिरि कारी,
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी।
भए एकट्ठे आनि तहाँ डाकिनि पिसाच गन,
कूदत करत किलोल किलकि दौरत तोरत तन।
आकृति अति विकराल धरे कुइला से कारे,
वक्र वदन लघु लाल नयन जुत जीभ निकारे ।।

छायावादी कवियो मे प्रसाद ने अपनी कामायनी मे मनु के इडा की ओर कामवासना से बढने के अतिचार पर लिखा—"भय का विलाप हुआ, पृथ्वी काँपने लगी, अतरिक्ष मे शिव हुकार उठे, आकाश मे दैवी शक्तियाँ क्रोध से तमतमा उठी, शकर का भयानक और विनाशक नेत्र खुल गया, सारा नगर व्याकुल हो कर काँपने लगा, प्रजापति के मर्यादा तोडने पर देवताओ ने अशिव रूप प्रकट किया, इसी से अजगव पर प्रतिशोध की प्रत्यचा चढ गई ; प्रकृति भयभीत थी, भूतेश्वर ने प्रलय नृत्य हेतु अपने पद को चचल किया, भौतिक जगत स्वप्नवत् होने वाला प्रतीत हुआ, सब आश्रय प्राप्ति हेतु व्याकुल हो उठे और अपने पाप मे संदेह की अवस्था मे पडे हुए मनु पृथ्वी का थर-थर काँपना देखकर इस निश्चय पर पहुँचे कि आज फिर कुछ होने वाला है"—

आलिंगन फिर भय का क्रंदन वसुधा जैसे काँप उठी,
वह अतिचारी दुर्बल नारी, परित्राण पथ नाप उठी !
अंतरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल थी,
अरे आत्मजा प्रजा ! पाप की परिभाषा बन शाप उठी।

उधर गगन में क्षुब्ध हुईं सब देव शक्तियाँ क्रोध भरी,
रुद्र नयन खुल गया अचानक, व्याकुल काँप रही नगरी ;
अतिचारी था स्वयं प्रजापति, देव अभी शिव बने रहें !
नहीं, इसीसे चढ़ी शिंजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी !

प्रकृति त्रस्त थी, भूतनाथ नें नृत्य विकम्पित पद अपना,
उधर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना !
आश्रय पानें को सब व्याकुल, स्वयं कलुष में मनु सदिग्ध ;
फिर कुछ होगा यही समझकर वसुधा का थर थर कँपना।

उपर्युक्त छदों मे प्रसाद ने भय का साम्राज्य स्थित कर दिया है। जो

वाछित विभाव, अनुभाव और सचारियो से पुष्ट होकर भयानक रस की निष्पत्ति करने मे क्षम है ।

निराला जी ने अपने 'अपरा' नामक काव्य-सग्रह मे असुर सहारक देवी दुर्गा का आवाहन एक रचना मे किया है जिसमे सचारी भय से सहायता ली गई है तथा उनकी दूसरी रचना 'नाचे उस पर श्यामा' मे भी भयानक रस का परिपाक कराने का प्रयत्न है परन्तु ये दोनो रचनाये अंतत देव-विषयक रति भाव मे परिणत हो जाती है ।

शात रस

शात रस को प्रधान लक्ष्य बनाकर वैदिक तथा सस्कृत मे विपुल मात्रा मे साहित्य प्रणीत हुआ है । अरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद, गीता, प्रस्थानत्रयी, भर्तृहरिवैराग्यशतक आदि तथा पुराणो के वे अश जो चित्त को मायामय ससार से उपराम करने का उपदेश करते है सब इसी रस के अन्तर्गत आते है। महाभारत को विद्वानो ने शात रस का ग्रन्थ माना है । धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त स स्कृत साहित्य मे शात रस अग रूप मे यत्र-तत्र प्रसगानुसार देखा जाता है । नीतिधर्म उपदेशात्मक पालि, प्राकृत और अपभ्र श साहित्यो मे शात रस के प्रकरण पर्याप्त मात्रा मे सुलभ है । अपभ्र श या गुलेरी जी कथित पुरानी हिन्दी मे लिखी सिद्धो की वाणियाँ शम भाव प्राप्त कराने मे प्रयत्नशील हैं । सिद्ध तिलोपा का निरजन तत्व दृष्टव्य है जिसमे वे कहते है कि मन भगवान् सदृश शून्य है और अहर्निशि सहज भाव मे रहता है अस्तु जन्म-मरण की मिथ्या भ्राति मे मत पड़ो—

सचल णिचल जो सअलाचार । सुण्ण णिरजन म करु विआर ॥
एहु से अप्पा एहु जग जो परिभावइ । णिम्मल चित्त सहाव सो कि बुज्झइ ॥
हॅउ जग हउँ बुद्ध हउ णिरजण । हॅउ अम णिसिआर भव भजण ॥
मणह भअवा खसम म अवई । दिवाराति सहजे राहीअइ ॥
जम्म मरण मा करहु रे भन्ति । णिअ-चिअ तही णिरन्तर होन्ति ॥

हिंदी साहित्य के वीरगाथायुगीन साहित्य मे धर्म और अध्यातम तथा शात रस की आयोजना का दूसरा ही प्रयोजन है । वे युगीन वीर भावना को सुदृढ करके पुष्ट करने तथा स्वामिधर्म हेतु रण मे वीरगति प्राप्त करने के लिए प्रकारातर से आयोजित किये गये है । पृथ्वीराजरासो मे ही देखिये निम्न स्थलो पर किस प्रकार विराग की प्रबल प्रेरणा की गई है—

कौन मरै जीयै कवन, कोन कहाँ विरमाय ।
प्रानी बपु तरु पंषिया, तरु तजि अन तरु जाय ॥

ज्यों जीरन परधान तजि, नर जन धरत नवीन।
यो प्रानी तजि कायपुर, और धरै बपु भीम॥
कबहूँ जीव मरै नहीं, पंच तत्व मिलि भेद।
पंचौ पचन में समै, जीव अछेद अभेद॥
न मे न वध्यते कर्म, कर्मे न बंध प्राप्तिक:।
य कर्म क्रियते प्रानी, सो प्रानी तत्र गच्छति॥

इन प्राचीन सस्कृत श्लोको के हिंदी रूपान्तरो का यदि कोई उपयोग उस वीर युग मे है तो मात्र यही कि क्षत्रिय इस जीवन का राग छोड दे–

धरा सहित नंबै सुधर, सीस जाय धर जीय।
मरन सीस लीनै बहै, कुला क्रम्म षत्रीय॥

मृत्यु और चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण का भय दिखाकर यदि कबीर आदि सतो ने मानव से अपने मन को ईश्वरोन्मुख करने की सलाह दी तो जगनिक ने अनुरूप निस्सार भय की चर्चा करके युद्ध मे वीरगति प्राप्त कर यशस्वी होने का उत्साह भरा–

मरना मरना या दुनियाँ मा एक दिन मरि जैहै संसार।
स्वर्ग मढ़ैया सब काहू कै कोऊ आज मरै कोउ काल॥
खटिया परि कै जो मरि जैहो कोइ न लैहै नाम अगार।
चढ़ी अनी पै जो मरि जैहो तौ जस रहै देस मे छाय॥

हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग अर्थात् भक्तिकाल का मूल स्वर शात रस का विधायक है। यह ससार मिथ्या है, कर्मानुसार आवागमन का वधन मिटाओ, सुख और दु ख का अस्तित्व नही है, वे उपाय करो कि यहाँ से उद्धार हो–यही सक्षेप मे भक्ति युग का सदेश है। जिस विराग तत्व को लक्ष्य करके उपनिषदो मे ऋषियो ने आख्यान किये उसी के लिये भक्तिकाल के सतो की वाणी मुखरित हुई। इन निर्गुण सतो ने आत्मा-परमात्मा मे कोई भेद नही देखा–

जल मे कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कथयो ज्ञानी॥

तथा चारों ओर ब्रह्म तत्व रूपी जल मे पोषित नलिनी रूपी जीवन क्यो व्याकुल और विक्षुब्ध है–

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।
तेरे हि नाल सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में वास।
जल में नलिनी तोर निवास।
ना तल तपति न ऊपर आग, तोर हेत कहु का सनि लाग।
कह कबीर जे उदिक समान, ते नहि मुए हमारे जान॥

ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर जीव ब्रह्म ही हो जाता है–उपनिषदो के 'तत्वमसि' अथवा 'सोह' भाव का यही रहस्य है–

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
बारी फेरी बलि गई, जित देखौ तित तूँ॥

यह प्रेम तत्व सरलता से नही प्राप्त हो सकता, व्यक्तिगत साधना ही इसका मार्ग है जिसमे पूर्ण आत्मोत्सर्ग अभिप्रेत है–

कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहिं तौ पिया न जाइ॥

इस सुरा के पान से तन-मन की सुधि जीवन पर्यंत भूल जाती है–

हरि रस पीया जानियै, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नाहीं तन की सार॥

सूफी सतो ने लौकिक प्रेम कथाओ के आश्रय से भटकी हुई जीवात्मा को परमात्मा से मिलन का मार्ग बताया है। और इन सरस कथाओ के बीच-बीच मे सयोग और वियोग के चित्र खीचते हुए लौकिक दम्पति के प्रेमादर्श को अलौकिक सयोग सुख मे अथवा वियोग व्यथा मे मार्मिकता से चरितार्थ किया है। देखिये–

हाड़ भए सब किंगरी। नसैं भईं सब ताँति॥
रोम रोम से धुनि उठै। कहौं बिथा केहि भाँति॥

जायसी ने अपने हृदय के प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति पदमावत की कथा लिखकर की जिसकी धारा के बीच-बीच मे अलौकिक सत्ता के सकेत भी किये और अत मे सारे रहस्य का उद्घाटन कर दिया–

चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ जेइ पथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनियाँ धधा। बाँचा सोइ न एहि चित बधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥

उस अखिल विश्व के स्वामी के नाम से साधक का हृदय पूर गया और काया भर गई तथा स्थान न रह गया कि कोई दूसरा आ सकता–

साईं केरा नाँव, हिया पूर काया भरी।
मुहम्मद रहा न ठाँव, दूसर कोइ न समाइ अब॥

ये तो नमूने है निर्गुणोपासको के जिनके अखड सत्य की ललकार एव ईश्वर-प्रेम की पीडा सद्-असद् विवेक जाग्रत कर आज भी ससार के क्रियाकलापो से वीतराग बनाने की एव मन को शम स्थिति मे लाने की सामर्थ्य रखती है।

'हौ तौ सब पतितन कौ टीकौ" आदि पदो के मिस अपना दैन्य तथा अकिचनता प्रकट करने वाले चक्षुविहीन भक्त कवि और गायक सूर ने अपने परमाराध्य नटनागर कृष्ण के प्रति राधा एव अन्य किसी सखी भाव से जिस अनन्यता के साथ भावो का तादात्म्य कराया है तथा लीलागान किया है वह सभी को विभोर करता है। चकई रूपी मन को वे उस चरण-सरोवर की ओर चलने को प्रेरित करते है जहाँ प्रेम मे वियोग का दु ख नही उठाना पडता—

चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम निसा होति नहिं कबहूँ सोइ सायर सुख जोग।
जहाँ सनक सिव-हस मीन-मुनि नख-रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि डर गुंजत निगम सुवास।
जिहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत अमृत रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहगम इहाँ कहा रहि कीजै।
लछिमी सहित होत नित क्रीड़ा सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय रस छीलर वा समुद्र की आस॥

सत्य ही है इस सरोवर की प्राप्ति हो जाने पर विषयरसरूपी छिछले गढो का जल कैसे प्रिय हो सकता है।

भक्तो की वाणियो मे हम भले ही सयोग-वियोग के उभय पक्षो वाले शृगार तथा अन्य रसो से साक्षात् कर ले उसका उद्देश्य भगवान की भक्ति है और फल शम भाव को प्राप्त हुए मन मे निर्वेद का उद्रेक है।

मर्यादापुरुषोतम राम के अन्यतम उपासक तुलसी का मानस एव अन्य ग्रथ जहाँ राम के गुणो का प्रसार करके समाज की उच्छृंखलता को रोकने मे समर्थ है वहाँ राम के प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करके ससार की जडता तथा निस्सारता से विमुख करने की शक्ति भी रखते है। विनयपत्रिका के निम्न पद मे अद्भुत तथा शात दोनो मिश्रित है—

केसव, कहि न जाइ का कहिये।
देखत अति रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र रग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरे भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे।
रवि कर नीर बसै अति दारुण मकर रूप तेहि माहीं।
वदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं।
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सोइ आपन पहिचानै॥

मन को सबोधित करते हुए वे कहते है कि ससार के परम स्वामी (राम)

से हे जड ! अनुराग जगा तथा हृदय से दुराशा को त्याग दे क्योकि कामाग्नि विषय भोग रूपी घृत की आहुति से नही बुझाई जा सकती—

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्याग दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते।

यह शरीर पानी का बुलबुला है। मिटते देर न लगेगी। खाना, पीना, सोना, कौन नही जानता ? परन्तु इसी दिनचर्या मे नर-देह की सार्थकता नही है—

काज कहा नर तनु धरि सार्यो ?
पर उपकार सार स्रुति को जो, सो धोखेहु न विचार्यो।

भक्ति काल की रचनाओ ने ही हिंदी मे आचार्यो को भक्ति रस को अन्य रसो से पृथक् विवेचित करने की प्रेरणा दी है। वैसे यह कोई नवीन आविष्कार नही है। शृंगार रस के अतर्गत परमात्मा के प्रति प्रीति को 'भाव' नाम से प्रतिष्ठित किया गया है तथा पुत्रो आदि के प्रति प्रीति को वात्सल्य कहा गया है। भक्तो की कृतियाँ चाहे शृंगार रस के अतर्गत निरूपित हो और चाहे भक्ति रस के अतर्गत उनका परिणाम चित्त को शमित कर निर्वेद की भावना जगाकर आराध्य के प्रति आमुख करना है, यह निर्विवाद है।

रीतियुग का लक्ष्य प्रमुखत: रति-विलास की ओर अग्रसर होने वाली भावना की पूर्ति है अस्तु वहाँ शृंगार रस की मीमासा मे सभोग मे किसी-किसी ने संचारी निर्वेद का तो प्रयोग किया है परन्तु स्थायी निर्वेद के लिये न स्थान है और न अवसर। उन कवियो ने जिन्होने समस्त रसो का विवेचन किया है शात रस के लक्षण व उदाहरण दिये है। केशव ने कविप्रिया मे निम्न उदाहरण दिया है—

देइगो जीवन वृत्ति वहै प्रभु, है सिगरे जग कौं जिहि दैयैं।
आवत ज्यो अन उद्यम ते दुख त्यौं सुख पूरब के कृत पैयैं।
राजा औ रक सुराज करौ सब काहे को केसव काहू डरै यैं।
मारनहार र राखनहार सु तौ सबके सिर ऊपर हैयैं॥

तथा पद्माकर रचित निम्न दो छद भी अवलोकनीय हैं—

बैठि सदा सतसंगहि में विष मानि विषै रस कीर्ति सदाहीं।
त्यो पदमाकर झूठ जितो जग जानि सुझानहि के अवगाहीं।
नाक की नोक में डीठि दिये नित चाहै न चीज कहूँ चित चाहीं।
संतत संत सिरोमनि है धन है धन वे जन बेपरवाही॥

तथा

वन वितान रवि ससि दिया, फल भख सलिल प्रवाह।
अवनि सेज पखा पवन, अब न कछू परवाह॥

कविवर ब्रजेश महापात्र का भी एक छंद विचारणीय है जिसमे निर्वेद सचारी तो है ही परन्तु वह स्थायी की सीमा भी दूर तक स्पर्श कर आया है—

वाहन वाजि के वृंद व्रजेश गयंद खरे के खरे रहि जायेंगे ।
भोजन भाजन भूषन भौन भंडार भरे के भरे रहि जायेंगे ।
अंत समय कफ़ वात तें ग्रासित बैन गरे के गरे रहि जायेंगे ।
पीनस पालकि पालने पाल पलंग परे के परे रहि जायेंगे ।।

हिंदी के आधुनिक काल या भारतेंदु काल से यदि भारतीय जन-जागरण का काल माना जाय तथा देश की स्वतन्त्रता हेतु नवीन प्रणाली से राष्ट्रोद्धार की इच्छा से किये गये उद्योगो पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट हो जावेगा कि जागृति की इस नवीन लहर मे शात रस और उसके स्थायी भाव निर्वेद की आवश्यकता देश को नही थी ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का प्रयोजन विशेष है । साकेत और यशोधरा पुरातनयुगीन उपेक्षिता उर्मिला व यशोधरा को लक्ष्य करके प्रणीत हुए है । भगवान् बुद्ध चिरशाति के प्रतीक है और गोपा का राहुल को उन्हे समर्पण कर स्वय भी संघ की दीक्षा-ग्रहण शात रस प्रसूत करता है—

तुम भिक्षुक बन कर आये थे, गोपा क्या देती स्वामी ?
था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी ?
मेरे दुख में भरा विश्वसुख, क्यो न भरूँ फिर मैं हामी ।
बुद्ध शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरण गच्छामिऽ ।

प्रयोगवादी कवियो ने जहाँ साहित्य के विभिन्न क्षेत्रो मे मौलिकता से नूतनता लाने का प्रयास किया तथा हूबहू चित्र खीचने की सामर्थ्य दिखाई वहाँ कभी जीवन मे निराशा के कारण और कभी जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर निर्वेद को विशेष ढंग से प्रस्तुत किया है । भारत भूषण अग्रवाल लिखित निम्न पक्तियाँ देखिये—

ये ऊषा से होठ, निशा सी घन अलकें,
ये प्रभात से गाल, चकित मृग से लोचन ।
सावन सी मुसकान वसती बोल मधुर,
बरबस बाँधा हुआ दुपहरी सा यौवन ।
बालों पर, गालों पर, अधरों, नयनो पर,
यौवन पर मुसकानों पर मधु वयनों पर ।
लपटों का होता आया अधिकार सदा,
इसीलिये तुम इनसे प्यार नहीं करना ।
काया पर है माटी का अधिकार सदा,
इसीलिये इससे तुम प्यार नहीं करना ।

—(सागर के सीप)

शैशव से युवा और जरा तथा मृत्यु का चित्र खीचते भारतभूषण अपनी

एक दूसरी कविता मे जीवात्मा रूपी दुलहिन को प्रियतम परमात्मा की नगरी की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते है। अलौकिक विप्रलंभ शृंगार तो है ही प्रकारांतर से संचारी निर्वेद भी—

जब मुँद जाये सृष्टि नयन में, खिंचे प्राण की डोर,
बाहर आने को हो जब साँसों का अंतिम छोर।
तन पिंजरे के अस्थि सींखचे टूट टूट गिर जायें,
तोड़ शिराओ के बन्धन जब प्राण अधर पर आयें।
जब प्रियतम के द्वारे गिर जाये शरीर बेदम।
तब निर्भय हो बढ़ जाना तुम केवल एक क़दम!
बढ़ चल मेरी चाह पिया की नगरी चार कदम!

इसी प्रकार के इनके और कई गीत है यथा—

१. पथ हैं हजारों एक पिया की नगरिया।
२, जग री सूतल नार पिया घर जाना है री।
३ रूप का संसार है ये!
धूप का त्यौहार है ये !!

मुनि बुद्धिमल की निम्न पंक्तियो की जिज्ञासा की प्रशमिति भी शात मे है—

जन्म-रम्य-आवेष्ठन-वेष्ठित दु खो का उपहार।
मरण-महाकारा का सहज अयाचित मुक्ति द्वार,
एक, चित्र सा चित्रित, नाना वर्णों से संयुक्त।
इतर, भाव सा गहन बना है सब आकार वियुक्त,
मूक प्रश्न यह, पता न इसकी है समाधि किस ओर।
जन्म मरण हैं इस मायावी जीवन के दो छोर।

—मन्थन

वात्सल्य रस

हिन्दी साहित्य मे वात्सल्य रस को स्वतंत्र रस रूप मे प्रतिष्ठा का पद प्रदान करने वाली रचनाये प्रमुखत. सूर और तुलसी की है, जिन्होने अपने आराध्य क्रमश. कृष्ण और राम की बाल-लीलाओ का ललित गान किया था। सूरदास के दो पद देखिये—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
कितौ बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यो ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हावत पोंछत नागिन सी भुइँ लोटी।

काचो दूध पियावति पचि पचि देति न माखन रोटी ।
सूरस्याम चिरजिव दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी ।।

तथा—

मैया मैं नाहीं दधि खायो ।
खेल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ।
देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचे धरि लटकायो ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो ।
मुख दधि पोछि कहत नदनँदन दोना पीठ दुरायो ।
डारि साँटि मुसुकाइ तर्बाह गहि सुत को कंठ लगायो ।
बाल विनोद मोद मन मोह्यो भक्त प्रताप दिखायो ।
सूरदास प्रभु जसुमति को सुख, सिव विरचि नहिं पायो ।।

इन पदो मे बाल-प्रकृति के चित्रण के आलबन से वात्सल्य रस परिपुष्ट हुआ है ।

तुलसीदास जी ने राम की बाल-लीलाओ का उत्कृष्ट वर्णन किया है और उसके सहारे वात्सल्य भाव की पुष्टि की है--

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं ।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं ।
कबहू रिसियाय कहैं हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में विहरैं ।।

तथा—

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग की दूरि करैं ।
दमकैं दतियाँ दुति दामिनि ज्यौं किलकैं कल बाल विनोद करैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं ।।

तथा—

धूलि-धूसरित श्याम शरीर वाले राम जब किलककर अपने दूध के दो दाँत क्या चमका देते हैं मानो बिजली कौंध जाती है—

वर दंत की, पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलन की ।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की ।
घुंघराली लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की ।
निउछावरि प्रान करैं तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनि की ।।

तुलसी ने राम के घुँघराले केशों, ललित चपल कुडलो और मधुर तोतले वचनो पर अपने प्राण ही न्यौछावर कर दिये हैं ।

राम की बालक्रीड़ा के प्रसग में मानस का निम्न स्थल भी दृष्टव्य है—

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई।
निगम नेति सिव अत न पावा। ताहि धरै जननी हँसि धावा।
धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति विहँसि गोद बैठाए।
भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले मिलकत मुख दधि ओदन लपटाइ।

रसखान ने भी बालकृष्ण के वात्सल्य सबधी कई अच्छे चित्रण किये है। एक यथेष्ट होगा—

धूरि भरे अति शोभित श्याम जू कैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना पग पैंजनी बाजत पीली कछौटी।
वा छबि कौं रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सो लै गयो माखन रोटी॥

मैथलीशरण गुप्त जी ने अपनी यशोधरा मे राहुल-जननी और राहुल के वार्तालाप के अधिकाश प्रसग वात्सल्य रस मे ही अभिव्यजित किये है। देखिये—

किलक अरे मैं नेक निहारूँ;
इन दाँतो पर मोती वारूँ।
पानी भर आया फूलों के मुँह में आज सबेरे,
हाँ, गोपा का दूध जमा है राहुल! मुख में तेरे।
लपटत चरण, चाल अटपट-सी मनभाई है मेरे,
तू मेरी अँगुली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ?
इन दाँतों पर मोती वारूँ।

तथा—

सो, अपनें चचलपन, सो!
सो, मेरे अंचल धन, सो!
पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुंजन सोया कभी भ्रमर में;
सो, मेरे गृह गुंजन, सो।
सो, मेरे अँचल धन, सो!

तथा—

तेरे वैतालिक गाते हैं,
स्वस्ति लिये ब्राह्मण आते है,
गोप दुग्ध भाजन लाते हैं,
ऊपर झलक रहा है झाग।
जाग दु:खिनी के सुख, जाग।

मेरे बेटा, भैया, राजा,
उठ मेरी गोदी में आजा,
भौंरा नचे, बजे हाँ बाजा;
सजे श्याम हय या सित नाग?
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग।

भक्ति रस

भक्ति वैसा ही स्थायी भाव है जैसे कि रति, क्रोध, हास्य, करुण, निर्वेद आदि है और कहना गलत न होगा कि वह अनेक भावो की आधारशिला है। भक्ति सम्बन्धी धारा हिदी साहित्य मे नवीन नही है वरन् उस पुण्यतोया भागीरथी के दर्शन पुरातनयुगीन साहित्य से ही लगभग सर्वत्र होते है। परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि हिदी युग मे यह धारा प्रखर वेग से उमडकर प्रवाहित हुई और प्राचीन आदर्शो को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करते हुए इसकी निम्न नौ शाखाये भक्तो की विभिन्न वृत्तियो का अवगाहन कराने मे समर्थ हुई—

श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दन दास्यं सख्यं आत्म निवेदनम्॥
—भागवतपुराण।

भक्त भगवान् से निर्वाण प्राप्ति की अभिलाषा नही रखता वह तो उनके लोक का वासी होकर निरन्तर उनकी लीला के दर्शन मे तल्लीन रहना चाहता है। मानस के उत्तरकाड मे तुलसी ने कागभुसुण्ड और वैनतेय के वार्तालाप मे ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की सरलता, महत्ता और श्रेष्ठता प्रतिपादित की है—

भगतिहीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥
ग्यान कै पथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परमपद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवइ बरिआईं॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा॥

तुलसी ने पहले तो प्रत्येक क्षेत्र मे आदर्श स्थापित करते हुए राम के लोकोत्तर रक्षक और मर्यादावादी परमभागवत् रूप की प्रतिष्ठा की तदुपरात उनके प्रति तन्मयकारिणी भक्ति का प्रतिपादन किया। ऋषिवर वाल्मीकि के उपरान्त भगवान् राम और उनके नाम का तुलसी सदृश दूसरा अनन्य

और निष्ठावान भक्ति का प्रचारक नही हुआ। दास्य भाव की तन्मयता मे की गई आराधना हृदय की वह प्रबल और मार्मिक पुकार है जो आज भी उपासना पद्धति मे भक्ति का पलडा भारी करके अपनी ओर बरबस आकर्षित करती है। मानस के पाठक परिचित है कि तुलसी की वाणी मे आत्मविभोर करने वाली भावुकता मात्र ही नही है वरन् उसे विशद और निरुत्तर करने वाला तर्कजाल भी है जो बुद्धिवादियो को अपने साये मे समेट लेने की क्षमता रखता है। उत्तरकाड मे राम की कथा के श्रोता और वक्ता कागभुशुड और गरुड रखे गये है। इसे साभिप्राय आयोजित किया गया है। तुलसी जहाँ एक ओर "समुझैं खग खग ही की भाषा" कहकर मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का परिचय देते हुए विनोद की उत्पत्ति करते है वहाँ अनायास ही और अचित्य रूप से वे कागभुशुड के पूर्व जन्मो मे उनके मानव-शरीर के आख्यानो के माध्यम से एव उनके काग-शरीर से की गई राम की अनन्य उपासना के मिस श्रोता और पाठक के अन्त.करण पर 'सब सुख खानि भगति' की अमिट और दृढ छाप डालते चलते है। कागभुशुड की अमित महिमा की योजना भी भली-भाँति सोच विचार कर की गई है। देवता और ऋषि भी उन्हे राम का भक्त जानकर उनके पास विविध पक्षियो का रूप धारण करके राम की कथा सुनने पहुँचते है। अपने अन्य कुशल प्रयासो के अतिरिक्त इस उद्योग से भी भक्त कवि तुलसी 'सब भाँति अपावन' और 'शकुनाधम' कागराज के दृष्टात द्वारा मानव को राम का भक्त बना डालने के प्रयोग मे नि सशय सफल हो जाते है।

भक्तो की वाणी मे वह सामर्थ्य ही नही वह जादू है जो भक्ति के देश मे आने वाले पापी-शापी सबका मुक्तहस्त उद्धार करने की उन्मुक्त घोषणा के बल से समन्वित है। ससार को रुलाने वाले रावण और उसके साथियो का सहार करके विश्व मे शाति और सौख्य का साम्राज्य कायम करने वाले जिन राम के चरणो की धूलि पाषाणमयी अहिल्या का उद्धार कर गई, कस और कालनेमि सदृश परस्वहर्ता आततायियो का वध करने वाले कृष्ण के नाम का स्मरण करने पर द्रोपदी का चीर बढ़ाकर उसकी लज्जा की रक्षा जब हो गई तब राम और कृष्ण के पतितपावन नाम का सहारा जन क्यो न ले। उन राम और कृष्ण की अमित-अगाध महिमा के अविश्रात गायक तुलसी और सूर की अमर भारती मानव-मन को वाछित दिशा मे प्रेरित करने मे क्षम है।

लोक मे जब हम किसी लौकिक पुरुष का गुणानुवाद सुनते है तो अपने को उसके समकक्ष न पाकर हम उसके प्रति साधारणत: ही श्रद्धा करने लगते है और अवसर निकालकर उसका सम्पर्क प्राप्त करने के आकाक्षी बन जाते है; तब भाँति-भाँति की दुर्बलताओ से ओतप्रोत, अनिश्चितताओ से घिरा और बिडंबनाओ से पीड़ित मानव जब गोपीजनवल्लभ कन्हैया की अमोघ शक्ति एव

उनके दृढता, साहस और शौर्य-पराक्रम बढाने वाले अलौकिक कृत्यो को सूर सदृश समर्थ भक्त कवियो के मुख से अपने उद्धार हेतु विनय भरी अनुनय करता पाता है तो वह अनिर्वचनीय सतोष और शाति से भरकर उस कान्हा के समक्ष अपने प्रायश्चितपूर्ण हृदय से अपने त्राण हेतु भक्त बनकर आर्तभाव से स्वभावतः ही पुकार उठता है। अपनी दीनता का स्पष्टीकरण करते हुए तथा साहसपूर्वक अपने उबारने की प्रार्थना करने वाले सूर का निम्न पद देखिये—

प्रभु मैं सब पतितन को टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के में तौ जन्मत ही कौ ॥१॥
बधिक अजामिल, गनिका त्यारी और पूतना ही कौ।
मोहि छाड़ि तुम और उधारै मिटै शूल केसें जी कौ ॥२॥
कोउ न समरथ सेव करन को खेंचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितन में कहत सबन में नीकौ ॥३॥

वीरगाथा काल मे विविध देवी-देवताओ की उपासना की सूचना तत्कालीन सस्कृत, अपभ्रश और हिंदी साहित्य से प्राप्त होती है तथा विष्णु और शकर की मूर्तियो की स्थापना तथा मदिरो का निर्माण उस समय के शिलालेखो एव ताम्रपत्रो से लगता है, जिन सबका विधायक शासकवर्ग है परतु इस निष्ठाभरी भक्ति की उस शौर्य-युग मे एक ही पुकार है और वह है प्रतिपक्षी की पराजय और स्वामिधर्म हेतु आत्माहुति। मृत्यु के उपरान्त यदि चिर यौवना अप्सराओ की प्राप्ति और विविध लोको मे निवास सुनिश्चित किया गया है तो वह रणक्षेत्र मे वीरगति प्राप्त होने वालो के लिये ही।

निराकार की साधना करने वाले निर्गुण सत और प्रेममार्गी सूफियो के पथो मे यदि सासारिक बखेड़ो को त्याग कर, माया-मोह के बधनो को काट कर तथा अपने मे और उस परब्रह्म मे अभेद भाव मानकर मोक्ष-प्राप्ति की प्रेरणा है तो चित्त को सब ओर से हटाकर दिशा विशेष मे निग्रह करना उस भावभूमि मे भक्ति (devotion) के सहारे ही सभव हुआ है। निश्छल मन से जब निर्गुणोपासक सत अपने प्रबल तर्क जाल से सहारा लेते हुए संसार की असारता दिखाकर दुर्लभ मानव जीवन पाकर, उसके माध्यम से आवागमन के फेरे सदा के लिए काट देने की प्रेरणा देते है तब उसे सुनकर कौन प्रभावित नही होता। इसी प्रकार प्रेम की पीडा जगाने वाले सूफी सत जब लौकिक कथा के मिस अलौकिक ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग-दर्शन कराते है तब जन-जन उससे अभिभूत हो उधर चलने के लिये व्यग्र हो जाता है। परन्तु यह नि सदेह सत्य है कि निराकारोपासको की वाणियो की अपेक्षा सगुणोपासको का प्रभाव भारतीय जनता पर आनुपातिक रूप से अधिक और स्थायी पडा है।

यौवनोन्माद की समाप्ति और जरावस्था के आगमन पर संसार से विराग

और परमात्मा के प्रति निष्ठा स्वाभाविक है। राधा-माधव के बहाने गहरे शृगार के चित्र खीचने वाले विद्यापति ने भक्ति की प्रगाढ़ता मे भर कृष्ण और शिव की जो सस्तुतियाँ की है वे अत्यत ही मर्मस्पर्शिनी है क्योकि उनमे हमे प्रायश्चित और निवेदन का सच्चा स्वर मिलता है। आचार्य केशव ने राम-काव्य भी लिखा और कृष्ण-काव्य भी परन्तु कृष्ण को लेकर ही उन्होने रस और अलकार शास्त्र प्रणीत किये। केशव की रामचद्रिका भी भक्ति के स्थान पर पाडित्य-प्रदर्शन से प्रेरित होकर लिखी गई है। यदि श्वेत केशो वाली जनश्रुति ठीक है तो दरबारी कवि की रसिकता को वृद्धावस्था मे युवतियो द्वारा बाबा सबोधन पर अवश्य आघात पहुँचा था। आचार्य भिखारीदास ने अपने काव्य मे भक्ति का इस प्रकार स्मरण किया 'आगे के कवि रीझि है तो कविताई न तौ राधा माधव के सुमिरन कौ बहानौ है'।

रीतिकालीन शृगारी कवियो ने राधा और कृष्ण के नाम से रचनाये करते हुए भक्ति का वैसा ही ढकोसला रचा है जैसे कोई एक चषक वारुणी मे एक बूँद गगाजल डालकर उसे धर्मपूत जल घोषित करके पान करे। इस युग के घनआनन्द प्रभृति भक्त कवियो की रचनाये अवश्य विचारणीय है जिन्होने राधा और कृष्ण के प्रेम की गहराई को वक्रोक्ति आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए उसका प्राजल, दिव्य और हृदयस्पर्शी रूप प्रस्तुत किया है। घनआनद का निम्न सवैया इस वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने के लिए उचित होगा–

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जा मधि सोधि सुधार है लेख्यो।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यो पचि कै रचि राखि विसेख्यौ॥
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जो आन कथा न कहूँ अवरेख्यो।
सो घन-आनँन्द जान अजान लौं टूक कियौ, पर बाँचि न देख्यो॥

आधुनिक युग मे भारतेंदु ने भक्तिभाव से ओतप्रोत अनेक पद, सवैये और कवित्त लिखे है। उदाहरणस्वरूप निम्न छद दृष्टव्य है––

१ **हम तो मोल लिये या घर के।**
दास दास श्री बल्लभ कुल के चाकर राधावर के।
माता श्री राधिका पिता हरि बधु दास गुन करके।
हरीचद तुमरे ही कहावत, नहि विधि के नहि हरि के।

२. **काले परे कोस चलि चलि थक गये पाव**
सुख के कसाले परे ताले परे नस के।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे
मदन के पाले परे प्रान पर-बस के।

हरीचद अगह्न हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले परे तन बल खसके।
पगन में छाले परे नाँघिबे को नाले परे
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के॥

३. मारग प्रेम को को समुझै हरिचद यथारथ होत यथा हैं।
लाभ कछू न पुकारन में बदनाम ही होन की सारी कथा है।
जानत है जिय मेरो भली विधि और उपाय सबै बिरथा है।
बावरे हैं वृज के सगरे मोहिं नाहक पूछत कौन विथा है॥

परवर्ती कवियो मे सत्यनारायण कविरत्न का 'भ्रमरदूत' सूर और नददास के भ्रमरगीतो के ढग का है। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक ओर जहाँ भारत-भारती, जयद्रथ-वध काव्य प्रणीत किये वहाँ दूसरी ओर वैष्णव कवि ने 'साकेत' सदृश काव्य रचा जिसमे उर्मिला को महत्ता प्रदान करने के अतिरिक्त भक्ति-भावना भी मुखरित है जो निम्न दो पक्तियो से ही स्पष्ट हो जाती है—

राम, तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

आधुनिक काल मे हिंदी के धार्मिक मासिक पत्रो 'कल्याण' आदि मे भक्ति सम्बन्धी पद और रचनाये निकलती रहती हैं परन्तु आज सासारिकता का दावा करने वाले युग की पुकार धर्म, आत्मा-परमात्मा, मदिर-मूर्तियाँ नही वरन् रोटी, कपडा, मकान तथा दैनदिन की आवश्यकताये हैं। वैसे यह सत्य भुलाया नही जा सकता है कि भक्ति की सरिता हिंदी साहित्य में आदि से अन्त तक कभी मथर, कभी मद और कभी क्षिप्र गति से प्रवहमान दिखाई देती रही है।

अध्याय ३

अलंकार

'अलङ्करोतीति अलकार' अर्थात् शोभा बढाने वाले पदार्थ को अलकार कहते है। जिस प्रकार स्वर्ण निर्मित रत्नजटित आभूषण शरीर को अलकृत करने के कारण अलकार कहे जाते हैं उसी प्रकार काव्य को शब्द और अर्थ की चमत्कारक रचना द्वारा जो अलकृत करते है उन्हे साहित्य-शास्त्र मे अलकार कहते है। अलकार काव्य के बाहरी शोभाकारक धर्म है अतएव इन्हे अलकार (आभूषण) सज्ञा दी गई है।

आचार्य दडी ने अपने काव्यादर्श (२।१) मे कहा है कि काव्य को अलकृत करने वाले शब्दार्थ की रचना को अलकार कहते है। आचार्य वामन (काव्य-लकार ३।१) मे गुणो को काव्य के शोभाकारक धर्म बतलाते है परतु दडी अलकारो को। आचार्य मम्मट ने (काव्यप्रकाश) मे गुणो और अलकारो को अलग करके गुणो को काव्य का साक्षात् धर्म और अलकारो को काव्य का अगभूत शब्द और अर्थ का शोभाकारक धर्म कहकर स्पष्ट किया है। काव्य की आत्मा रस है और काव्य शब्द तथा अर्थ के आश्रित है। अतएव अलकारो को काव्य का उत्कर्षक मानने मे किसे आपत्ति हो सकती है।

आचार्य भामह ने (भामह काव्यालकार १।३६ और २।६५ मे) शब्दार्थ वैचित्र्य को वक्रोक्ति संज्ञा दी है। और इस वक्रोक्ति को ही सम्पूर्ण अलकारो मे व्यापक बतलाते हुए उसे उसका एक मात्र आश्रय माना है। आचार्य दडी ने (काव्यादर्श २।२२० मे) इस उक्ति वैचित्र्य को 'अतिशयोक्ति' सज्ञा देते हुए उसे सारे अलंकारो का आश्रय कहा है। श्री अभिनवगुप्ताचार्य ने (ध्वन्या-लोकलोचन, पृ० २०९) मे भामह की वक्रोक्ति और दडी की अतिशयोक्ति के

विषय मे लिखा है कि लोकोत्तर अतिशय से कहना ही उक्ति वैचित्र्य है। अतएव किसी वक्तव्य को लोगो की साधारण बोलचाल से भिन्न शैली द्वारा अनूठे ढग मे चमत्कारपूर्ण वर्णन करने को ही काव्य का अलकरण कहा जाता है।

जिस प्रकार शरीर मे प्राण की आवश्यकता है उसी प्रकार काव्य मे रस की। 'रसात्मक वाक्य काव्य' अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है। यह सत्य है कि जिस प्रकार सौन्दर्यमयी रमणी का सौन्दर्य ही यथेष्ट होता है उसे अलकारो की अपेक्षा नही उसी प्रकार काव्य का भी भाव (रस) के अतिरिक्त अलकारो की आवश्यकता नही है किन्तु इसमे सशय नही कि जिस प्रकार रत्नजटित अलकार सुन्दरी के सौन्दर्य को द्विगुणित कर देते है उसी प्रकार रसरूपी आत्मा वाला काव्य यदि उचित अलकारो द्वारा अलकृत हो जाय तो वह सुन्दरतम हो जाता है। अलकार काव्य-सौष्ठव के सुन्दर व स्वाभाविक साधन है तथा भावानुभूति के प्रकाशन के उत्कर्ष के अग है। अत काव्य का अनिवार्य उपकरण न होने पर भी कोई भी सुन्दरतम कविता अलकारो से पूर्णतया विहीन नही हो सकती।

यहाँ यह स्मरणीय है कि काव्य मे अलकारो का प्रयोग स्वाभाविक रूप मे ही होना चाहिए। अस्वाभाविक, अवाछित अथवा अत्यधिक अलकारो का प्रयोग काव्य के रस को उसी प्रकार भग कर देता है जिस प्रकार रमणी के पद का आभूषण कर मे, कर का कर्ण मे, गले का नासिका मे डाल देने से अथवा कभी आभूषण बाहुल्य से उसका सौदर्य विरूप, कुरूप, भोडा, भद्दा ही नही बहुधा भयावना भी हो जाता है।

स्वाभाविक रूप से अलकारो के प्रयोग से जहाँ काव्य की चेतना और आकर्षण को बल मिलता है वही उनकी अनावश्यक ठूँस-ठाँस से काव्य की स्वाभाविक शोभा भी नष्ट हो जाती है। अलकार-प्रदर्शन जिस रचना मे उसका गौण सहकारी न होकर प्रधान हो जाता है वहाँ रस-भग होने के साधन प्रस्तुत हो जाते है। रीतिकाल के अनेक कवियो की कृतियाँ इस अलकार-ज्ञान-प्रदर्शन की भ्राति मे पडकर मात्र विरसता को ही प्राप्त हो सकी है।

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र और व्यास के अग्निपुराण के उपरान्त पाँचवी शताब्दी से लेकर आठवी शताब्दी तक के आचार्यो भामह, दडी और उद्भट ने रस, भाव आदि को अलकारो के अतर्गत रखकर अलकारो को ही काव्य मे प्रधानता दी तथा उन्हे ही काव्य की उत्कृष्टता का प्रधान साधन स्वीकार किया। किंतु ८ वी शताब्दी के उपरात प्रादुर्भूत होने वाले ध्वनिकार (आनदवर्द्धन) और मम्मट (११ वी) ने काव्य को तीन भागो मे विभाजित किया—

(१) **व्यग्यात्मक ध्वनि काव्य**–जिसमे रस का प्रमुख स्थान होता है। इसको प्रथम श्रेणी का उत्तम काव्य ठहराया गया।

(२) **गौण व्यग्यात्मक काव्य**–यह मध्यम श्रेणी का काव्य माना गया।

(३) **अलकारात्मक काव्य**–यह तृतीय कोटि मे आया।

यद्यपि अलकारो को तृतीय श्रेणी मे रखा गया फिर भी सस्कृत साहित्य के आचार्यो ने इस कोटि का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि से अत्यत विस्तारपूर्वक गभीर विवेचन किया है।

प्राचीन साहित्य-ग्रन्थो मे भरत मुनि के नाट्यशास्त्र को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। यद्यपि नाट्यशास्त्र के प्रसगो से प्रकट होता है कि भरत मुनि के पूर्व भी अनेक साहित्याचार्य हो चुके है परतु उनके नाम और कृतियाँ अज्ञात है। भरत मुनि का समय वेदव्यास से पूर्व माना गया है। नाट्यशास्त्र मे ४ अलकार निर्धारित किये गये है–उपमा, दीपक, रूपक और यमक। भरतमुनि के उपरात वेदव्यास रचित अग्निपुराण मे १५ अलकारो का विधान पाया जाता है। इसके बाद लगभग ३५०० वर्षो तक का इतिहास अधकार पूर्ण है। इस दीर्घ काल मे रचा हुआ कोई ग्रन्थ अभी तक नही प्राप्त हुआ है। भट्टि रचित भट्टि-काव्य रीति ग्रन्थ नही है परतु उसके तीसरे काड के दसवे सर्ग मे ३८ अलकारो के उदाहरण दिए गए है। भट्टि का समय ५०० से ६५० ई० तक माना गया है। तदुपरात ईसवी छठी शताब्दी का आचार्य भामह रचित काव्यालकार मिलता है जिसमे ३८ अलकारो का निरूपण किया गया है। काव्यालकार मे अनेक अलकारिको के नामोल्लेख होने के कारण यह स्पष्ट है कि आचार्य भामह के पूर्व अनेको अलकार ग्रथ रचे गए थे और अग्निपुराण के बाद अलकारो की सख्या वृद्धि तथा उनका विकास भट्टि, भामह और उनके पूर्ववर्ती विद्वानो के क्रमश उद्योग और परिश्रम का परिणाम है।

अलकारो के क्रम-विकास का द्वितीय काल ईसा की ६वी शताब्दी से ८वी शताब्दी तक है जिसे भट्टि से लेकर आचार्य वामन तक समझना चाहिये। ७ वी शताब्दी के अतिम चरण मे आविर्भूत होने वाले महाकवि भारवि के प्रपौत्र आचार्य दडी ने अपने काव्यादर्श मे ३६ अलकारो की विवेचना की, जिनमे आवृत्ति दीपक नवीन था। ८वी शताब्दी के आचार्य उद्भट ने अपने काव्यालकार-सार-सग्रह मे ४१ अलकार निर्दिष्ट किये जिनमे दृष्टात, काव्यलिग और पुनरुक्तवदाभास नवीन थे।

उद्भट के समकालीन आचार्य वामन ने अपने काव्यालकारसूत्र मे ३३ अलकारो पर प्रकाश डाला जिनमे व्याजोक्ति और वक्रोक्ति नवीन थे। भट्टि और भामह द्वारा निरूपित ३८ अलकारो के पश्चात् दडी, उद्भट और वामन द्वारा १४ नवीन अलकार निरूपति किये गये। इस प्रकार ८ वी शताब्दी तक

५२ अलकारो का विधान हो गया था । यद्यपि अलकारो की सख्या मे अधिक वृद्धि नही हुई परतु इस दूसरे काल के तीन आचार्यो (जिनमे मुख्यत दडी) ने अलकार विवेचना विस्तृत और सुस्पष्ट करदी ।

८ वी शताब्दी से अगली चार शताब्दियाँ अलकार विकास का स्वर्ण युग सिद्ध हुई । ९ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे रुद्रट ने अपने काव्यालकार मे ५५ अलकारो की व्यवस्था की । ११ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे धारा नगरी के महाराज भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण मे ७२ अलकारो का वर्णन किया जिनमे पूर्वाचार्यों की अपेक्षा ९ अलकार नवीन थे । भोज के उपरान्त ११वी शताब्दी मे ही आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश मे ७० अलकारो का निरूपण बडी ही विद्वत्तापूर्ण ढग से किया जिनमे अतदगुण, मालादीपक, विनोक्ति सामान्य और सम अलकार नये थे । काव्यप्रकाश को जो गौरव प्राप्त हुआ वह आज तक किसी दूसरे ग्रन्थ को उपलब्ध नही हो सका । १२वी शताब्दी के मध्यकाल मे रुय्यक ने अपने अलकारसूत्र मे ८४ अलकार स्थापित किए जिनमे उल्लेख, काव्यार्थापत्ति, परिणाम, विचित्र और विकल्प नवीन थे । इन आचार्यो के उपरान्त १२वी शताब्दी मे जैन विद्वान् वाग्भट प्रथम ने वाग्भटालकार नामक सूत्रबद्ध ग्रन्थ रचा जिसमे ३९ अलकारो पर प्रकाश डाला । १२वी शताब्दी के सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन मे ३५ अलकारो का सक्षिप्त परतु महत्त्वपूर्ण वर्णन किया । इस युग मे अलकारो की सख्या बढकर १०३ हो गई जो ८वी शताब्दी तक ५२ से अधिक न बढ पाई थी । सख्या वृद्धि के साथ विषय की विवेचना भी अधिकाधिक सूक्ष्म और गम्भीर हो गई । अलकार सम्प्रदाय को रुद्रट, भोज, मम्मट और रुय्यक इन चार आचार्यों ने परिष्कृत करके एक प्रतिष्ठित पद पर पहुँचा दिया ।

१३वी शताब्दी से लेकर १७वी शताब्दी तक अलकारो के क्रम विकास का अन्तिम काल था । १२वी—१३वी शताब्दी के अन्तर्गत होने वाले पीयूषवर्ष जयदेव ने अपने चन्द्रालोक मे ८ शब्दालकार और ८२ अर्थालकारो का निरूपण किया जिनमे १६ पूर्ववर्त्ती ग्रथो मे नही थे । १४वी शताब्दी के प्रथम चरण मे वर्तमान विद्याधर ने अपने 'एकावली' ग्रन्थ की रचना ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश और अलकार-सर्वस्व के आधार पर की । विद्याधर के समकालीन विद्यानाथ ने अपने प्रतापरुद्रयशोभूषण ग्रथ मे काव्यप्रकाश और अलकारसर्वस्व का अधिकाशतः अनुसरण किया । १४वी शताब्दी के द्वितीय वाग्भट ने अपने काव्यानुशासन मे अन्य और अपर अलकारो को स्वतन्त्र रूप से वर्णित किया । १४वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण मे १२ शब्दालकार, ६९ अर्थालकार, ७ रसवदादि और सकर तथा संसृष्टि अर्थात् कुल ९० अलकारो का निरूपण किया जिनमे ४ अलकार नवीन अवश्य थे परन्तु महत्त्वपूर्ण

नही। आचार्य मम्मट और रुय्यक के उपरान्त विश्वनाथ अलकार शास्त्र के उल्लेखनीय रचयिता हुए। १६वी शताब्दी के अन्तिम चरण और १७वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे होने वाले अप्यय्य दीक्षित ने अपने सरल और सुबोध ग्रथ कुवलयानन्द मे १०० अर्थालकार, ७ रसवद आदि, ११ प्रत्यक्ष आदि प्रमाणालकार और १ समृष्टि तथा १ मकर इस प्रकार १२० अलकारो को निश्चित किया। दीक्षित जी ने अलकार विषयक अपना आलोचनात्मक ग्रथ चित्रमीमासा भी महत्त्वपूर्ण रचा जो अपूर्व है और जिसका थोडा सा अश ही अभी तक प्रकाशित हो सका है। इन ग्रथो मे चन्द्रालोक का अनुकरण किया गया है। शोभाकार ने अपने ग्रथ अलकार रत्नाकर मे पूर्वाचार्यो से २७ अधिक अलकारो की सृष्टि की जो निरूपित अलकारो के अन्तर्गत थे। पण्डितराज जगन्नाथ ने इनके ग्रन्थ का खण्डन किया है, इसगे शोभाकर को उनका पूर्ववर्ती मानना उचित होगा। यशस्क ने अपने अलकारोदाहरण मे ६ नए अलकार लिखे जो महत्त्वपूर्ण नही है। इनका समय ज्ञात नही है। १७वी शताब्दी के प्रथम तीन चरणो मे वर्तमान शाहजहाँ के समकालीन पण्डितराज जगन्नाथ त्रिशूली' ने अपना रसगगाधर एक अपूर्व आलोचनात्मक ग्रथ रचा। ध्वन्यालोक और काव्यप्रकाश के बाद मौलिकता मे इसी का स्थान है। पण्डितराज ने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थो की विशद और विवेचनात्मक मार्मिक आलोचनाएँ की है। परन्तु यह ग्रन्थ अपूर्व है और इसमे उत्तरालकार तक ७० अलकार निरूपित हुए है। रसगगाधर अलकार शास्त्र का अन्तिम ग्रन्थ है। इस समय तक विभिन्न आचार्यो के अध्यवसाय से अलकारो की सख्या १८० मे ऊपर पहुँच गयी थी। पण्डितराज के बाद सस्कृत साहित्य मे कोई उल्लेखनीय आचार्य नही हुआ। अस्तु यह काल अलकार विकास का उत्तरकाल था।

यद्यपि हिन्दी आदि अधिकाश आधुनिक भारतीय भाषाओ की जननी सस्कृत तो नही है परन्तु सस्कृत से उमका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध अवश्य है। सम्पूर्ण सस्कृत साहित्य हिन्दी को पृष्ठभूमि अथवा पैतृक सम्पत्ति की भाँति प्राप्त हुआ। अत हिन्दी के साहित्याचार्यो के सम्मुख अलकार विषयक वे समस्याये नही आई जैसी सस्कृत मे अलकारो के उत्तरोत्तर विकास मे दिखायी गई है। यहाँ तो सस्कृत साहित्य की अपूर्व पृष्ठभूमि आश्रय के लिए पहले से ही प्रस्तुत मिली। सिद्धान्त प्रतिपादित थे, ढाँचे तैयार थे और रूप निर्धारित था जिसमे अपनी भाषा को सजाने मात्र की आवश्यकता थी।

परन्तु हिन्दी मे अलकार ग्रन्थो की भरमार है क्योकि यहाँ तो एक युग वह आया था जब कि कवि के लिए यह अनिवार्य हो गया था कि वह पहले अलकार और नायिका भेद पर रचना करे। यह युग रीतिकाल के नाम से विख्यात है। उस काल मे रीति ग्रन्थो की वह बाढ़ आई कि कविगण साहित्य

के अन्य अगो को प्राय विस्मृत कर बैठे। इन रचनाओ मे उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट सभी देखने को मिलती है। यहाँ हमारा अभीष्ट उन्ही का उल्लेख करना मात्र है जो श्रेष्ठ और अधिक प्रचलित है।

स० १६५९ वि० मे रचित महाकवि केशव की कविप्रिया हिन्दी के उपलब्ध ग्रन्थो मे श्रेष्ठ और प्रथम स्थान पर है। इसमे ३७ अलकारो का निरूपण किया गया है। साहित्य सम्बन्धी तथा अन्य उपयोगी विषयो पर भी प्रकाश डाला गया है जिनमे काव्यादर्श का प्रभाव परिलक्षित होता है। फिर जोधपुर के महाराज जसवतसिह (प्रथम) की वि० १८वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना भाषाभूषण काफी प्रचलित और प्रतिष्ठित ग्रथ है। यह ग्रथ कुवलयानद के आधार पर है। इसमे ४ शब्दालकार और १० अर्थालकारो का विधान किया गया है। कविप्रिया और भाषाभूषण उस समय की रचनाये है जब हिन्दी मे अलकार-शास्त्र के ज्ञान के लिए कोई साधन न था। हिन्दी साहित्य मे इनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

स० १७९९ वि० मे उदयपुर के वशीधर और दलपतराय रचित अलकाररत्नाकर भाषा-भूषण का वैसा ही परिवर्द्धित रूप है जैसा कि चन्द्रालोक का कुवलायानन्द। प्रत्येक अलकार के कई-कई उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया गया है। उक्त समयानुसार इसकी रचना का महत्त्व निर्विवाद है।

स० १९०३ वि० मे भिखारीदास रचित काव्यनिर्णय, काव्यप्रकाश और कुवलयानन्द के आधार पर लिखा गया है जिसका क्रम इन ग्रन्थो के अनुसार न होकर रचयिता की इच्छा पर निर्भर रहा है। इसमे १०० अर्थालंकार और १२ प्रमाणालकार है परन्तु विषय का स्पष्टीकरण विस्तृत विवेचना होते हुए भी अधिकाशत भ्रामक है।

विक्रमीय १७ वी और १८ वी शताब्दी मे वर्तमान महाकवि भूषण रचित शिवराजभूषण हिदी का अपूर्व ग्रथ है जिसमे कुवलयानद के आधार पर लक्षणो का विधान है। विषय-विवेचना की परिपाटी रीतिकाल मे थी नही अतएव उसका हम इन सभी ग्रथो मे अभाव पाते है। हिदी साहित्य के गौरव की श्रीवृद्धि करने वाले मतिराम का ललितललाम, पद्माकर का पद्माभरण, दूलह का कविकठाभरण, सोमनाथ का रसपीयूष, गोकुल की चेतचद्रिका, गोविद का कर्णाभरण, लछिराम का रामचद्रभूषण और ग्वाल का अलकार-भ्रम-भजन आदि अन्य अलकार ग्रथ है जिनमे लक्षणो का आधार प्राय कुवलयानद से ही लिया गया है।

हिंदी के आधुनिक अलकार ग्रथो मे कविराजा मुरारिदान चारण का स० १९५४ वि० रचित जसवतजसोभूषण विद्वत्तापूर्ण और उल्लेखनीय रचना है। स०

१९५३ वि० मे सेठ कन्हैयालाल पोद्दार रचित अलकार-प्रकाश जिसका परिवर्द्धित सस्करण (स० १९८३ विक्रम) काव्यकल्पद्रुम है, हिदी के प्रकाशित ग्रथो मे श्रेष्ठ है। इसके उपरान्त कालक्रम के अनुसार जगन्नाथप्रसाद भानु का काव्य-प्रभाकर, भगवानदीन 'दीन' की अलकारमजूषा, डा० रामशकर शुक्ल 'रसाल' का अलकार-पीयूष और सेठ अर्जुनदास केडिया का भारतीभूषण आदि अलकार निरूपण विषयक ग्रथ है। प० रामदहिन मिश्र का स० २००४ वि० मे प्रकाशित ग्रथ काव्यदर्पण इस समय सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस ग्रथ की अन्य विशेषताओ के साथ एक विशेषता यह भी है कि इसमे आधुनिक कवियो की रचनाये भी विवेचित है।

यूरोपीय साहित्य मे अलकारो का उद्भव भिन्न कारणो को लेकर हुआ था। वहाँ वक्तृता को इच्छानुसार प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अलकारो अथवा विशेष शैलियो का जन्म हुआ था। सिराक्यूज नगरवासी कोरैक्स रिटारिक को एक कला रूप मे जन्म देने के लिए विख्यात है। सन् ४६६ ई० पू० मे सिराक्यूज मे एक प्रजातत्र की स्थापना होते ही मुकदमो की बाढ आ गई और कौरैक्स की कला को अत्यधिक प्रश्रय मिला। प्राचीन यूनान मे यह शास्त्र अति महिमान्वित हुआ था। कौरैक्स के शिष्य टिसियाज ने इसका समुचित विकास किया है। परतु इस कला का गहन और विस्तृत अध्ययन आरिस्टाटिल की रिटारिक (३२२-३२० ई० पू० रचित) से होता है। इसके उपरान्त (११० ई० पूर्व मे) हरमैगोरस ने इस विषय को उन्नत करके प्रौढ बनाया। तदुपरात सिसरो का नाम उल्लेखनीय है, जिसने शास्त्रोक्त अध्ययन की अपेक्षा अपनी प्रतिभा से इन शैलियो की सौष्ठवता बढाई। सन् ९० ई० के लगभग होने वाले क्विटिलियन, हरमोजिन्स, ऐपथोनियस (चौथी शताब्दी) और ऐलियसथियोन के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

रोमन साम्राज्य की प्रथम चार शताब्दियो मे इस कला की विशेष उन्नति दृष्टिगोचर होती है। रिटारिक का शिक्षक सोफिस्ट उपाधिभूषक हो गया था। हेड्रियन और ऐन्टोनाइन्स के राज्यकाल (सन् ११७-१८० ई०) मे रिटोरिक के शिक्षकों का स्थान न केवल महत्वपूर्ण ही था वरन् वह एक आकाक्षित पद भी प्राप्त कर चुका था। रिटोरिक की शिक्षा के लिए सोफिस्ट और पोलीटिकल दो विभाग बना दिए गए थे। सोफिस्ट के अतर्गत अलकरण कला के साहित्यिक रूप का अध्ययन कराया जाता था। और पोलिटिकल विभाग मे न्यायालयो मे प्रयोग मे लाई जाने वाली राजनैतिक आलकारिक शैलियाँ थी। वैसे पोलीटिकल से सोफिस्ट विभाग की महिमा कही अधिक थी। इस कला के शिक्षको को राज्य की ओर से अन्य कई प्रकार की सुविधाएँ भी प्राप्त थी। इसके साहित्यिक विभाग की श्रीवृद्धि करने मे ईसवी प्रथम शताब्दी के डिओक्रिजोस्टम, द्वितीय

शताब्दी के एलियस अरिसटीडस और चतुर्थ शताब्दी के थोमिस्टियस, अरमेरियस तथा लाइबेनियस जैसे विद्वानो के नाम चिरस्मरणीय रहेगे ।

मध्यकालीन शताब्दियो मे पाँचवी शताब्दी के मार्टेयानस कैपेला और कैसियोडोरस तथा सातवी शताब्दी के इसीडोरस ने रिटोरिक्स पर उल्लेखनीय ग्रथ लिखे है । रिनेसाँ के उपरान्त कई नवीन ग्रथ निर्मित हुए और विद्वत् समाज का ध्यान एक बार पुन इस शास्त्र की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ । सोलहवी शताब्दी के लेओनार्डकाक्स, टामसविल्सन, टाकुलियन और कौरसेलेस की प्रसिद्ध रचनायें प्राचीन ज्ञान को लुप्तावस्था से पूर्ण प्रकाश मे लाने मे सफल हुईं । इस युग मे यूरोप और इगलैंड के विश्वविद्यालयो मे पुरातन श्रेष्ठ कलाओ की पुनरावृत्ति और इस उद्योग द्वारा उनकी रक्षा के प्रयत्न स्पष्टत देखे जा सकते है । १८वी शताब्दी से रिटोरिक के अध्ययन को हम गौण रूप को प्राप्त होते देखने लगते है । रिटोरिक का शिक्षक लिखित विषयो का सुधार मात्र करने मे लगा दिया था परतु उसकी प्राचीन पदवी आगे पर्याप्त समय तक चलती रही ।

यही कारण था कि परवर्ती विद्वानो ने इस उपेक्षित दिशा मे अपनी क्षमता का उपयोग करना श्रेयस्कर नही समझा और इसी से आधुनिक शताब्दियो मे यूरोप मे अलकाराचार्य नही हुए । परतु बेकन के सग्रहो का उल्लेख किए बिना हम नही रह सकते क्योकि उनमे हमे आरिस्टाटिल की प्रतिभा के दर्शन होते है । १६ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे रचित ब्लेयर की रिटौरिक की महिमा उसकी लेखन शैली के ढग के कारण है न कि विषय से परचित कराने के लिए । परतु आधुनिक काल की श्रेष्ठ रचना ह्वाटली रचित 'इलीमेन्टस आव रिटारिक' है, जिसमे ह्वाटली ने आरिस्टाटिल के सिद्धान्त 'रिटोरिक तर्क शास्त्र की एक प्रशाखा है' से लेकर उसकी वादात्मक लेखन कला' तक पूर्ण समीक्षात्मक ढंग से विवेचना की है । इस प्रकार स्पष्ट है कि अलकारो का जन्म और उसकी योजना यूरोप मे भिन्न कारणो वश हुई थी । परतु भाषण को अपनी चित्तवृत्ति के अनुरूप ढाल कर वैसा ही श्रोताओ का चित्त भी कर देने के प्रयत्न मे जिन शैलियो का जन्म हुआ उनका प्रयोग वक्तृताओ तक ही सीमित नही रहा वरन् साहित्य मे और विशेष कर काव्य मे उनके अनेकानेक प्रयोग हुए ।

आज विज्ञान के इस वर्तमान युग मे यद्यपि आधुनिक युग की प्रवृत्ति अलकरण की ओर उन्मुख न होकर स्वाभाविक नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रगटीकरण की ओर ही है किन्तु तब भी सम्भव है कि विश्व के विभिन्न साहित्यो के परस्पर अनुशीलन, अध्ययन, सम्पर्क व आदान-प्रदान के फलस्वरूप विभिन्न देशीय साहित्यकार अपनी रचनाओ मे अन्य भाषाओ के साहित्य मे उपलब्ध श्रेष्ठ शैलियो को सम्भवत: अपनायें क्योकि इन चमत्कारक शैलियो मे सदा से आकर्षण रहा है और सतत रहेगा ।

जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है कि कथन की रोचक, चमत्कारपूर्ण, प्रभावमय, स्पष्ट और पुष्ट प्रणाली को काव्य का अलकरण कहते है। यह उक्ति वैचित्र्य अथवा चमत्कृत करने वाली शैली अनेक प्रकार की हो सकती है और इन्ही शैलियो को आचार्यो ने गुणानुसार इनकी पृथकता का बोध कराने के लिए विभिन्न अलकारो के नाम से प्रतिष्ठित किया है। परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नही है कि ये समस्त शैलियाँ नियमबद्ध हो गयी है और अब उनके अतिरिक्त अन्य शैलियाँ नही है और न ही उनका भविष्य मे निर्माण सम्भव है। आधुनिक भारतीय भाषाओ के साहित्य की शैलियाँ सस्कृत साहित्य की देन हैं किन्तु यूरोपीय साहित्य मे हमे इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नवीन प्रभावशाली शक्तिसम्पन्न शैलियाँ दृष्टिगत होती है। अलकारो की नवीन शैलियो को जन्म देना असम्भव तो नही है किन्तु दुष्कर अवश्य है। क्योकि इसके लिए असाधारण प्रतिभा और बुद्धि अपेक्षित है और पूर्वाचार्यो ने इस विषय का पर्याप्त मथन किया है।

अलकार प्रधानत दो प्रकार के होते है –

(१) शब्दालकार—

जहाँ पर शब्द का चमत्कार होता है।

(२) अर्थालकार—

जहाँ पर अर्थ का चमत्कार होता है।

शब्दालंकार–ये ६ प्रकार के होते है –

(१) अनुप्रास (२) यमक (३) श्लेष (४) वक्रोक्ति (५) पुनरुक्तिवदाभास और (६) चित्र।

अनुप्रास (Alliteration)–वर्णो के साम्य को अनुप्रास कहते है। अनुप्रास अर्थात् 'अनु' (=बारम्बार) + प्र (=प्रकर्ष अर्थात् अव्यवधान या पास-पास) + आस (=न्यास अर्थात् रखना) अर्थात् वर्णो का बार-बार प्रकर्षता से पास-पास रखा जाना।

अनुप्रास दो प्रकार के होते है—(अ) वर्णानुप्रास (आ) शब्दानुप्रास।

(अ) **वर्णानुप्रास**–इसमे निरर्थक वर्णो की आवृत्ति होती है। ये दो प्रकार के होते है। (१) छेकानुप्रास (२) वृत्यनुप्रास।

(१) **छेकानुप्रास**–छेक का अर्थ होता है चतुर। इसमे अनेक वर्णो का एक बार सादृश्य होता है। यथा–

१– **जग जुरन जालिम जुझार।**
भुज सार भार भुअ॥ **–चन्द**

२– सर सर हस न होत बाजि गजराज न दर दर ।
तरु तरु सुफल न होत नारि पतिव्रता न घर घर ।।

–नरहरि

३– लपट से झट रूख जले जले ।
नद नदी घट सूखि चले चले ।।
विकल ये मृग मीन मरे मरे ।
विकल ये दृग दीन भरे भरे ।।

–हरिऔध

(२) वृत्यानुप्रास–इसमे एक वर्ण की या अनेक वर्णो की अनेक बार आवृत्ति होती है । इसमे उपनागरिका, परुषा और कोमला वृत्तियाँ प्रयोग मे लाई जाती है । उपनागरिका वृत्ति मे ट, ड, ठ, ढ को छोडकर शेष सारे वर्णो का प्रयोग होता है तथा शृगार, हास्य व करुण रस की अभिव्यजना के लिए यह वृत्ति अत्यन्त वाछित है । उदाहरणस्वरूप–

१– तरणि के ही सग तरल तरग से ।
तरणि डूबी थी हमारी ताल में ।।

–पंत

परुषा वृत्ति द्वारा ओज गुण की व्यजना होती है । इसमें ट, ठ, ड, ढ तथा द्वित्व वर्णो की बहुलता होती है । वीर, रौद्र और भयानक रस इस वृत्ति मे भली प्रकार परिपक्व होते है । उदाहरणस्वरूप –

१– ढिल्लिय ढाल कुलाल,
कुलाहल किन्नरिन ।
ढिल्लिय नाथ सु हाथ,
समथ्थिय अथ्थियन ।।

–चन्द

२– निकला पड़ता था वक्ष फोड़कर वीर हृदय था ।
उधर धरातल छोड़ आज उड़ता सा हय था ।
जैसा उनके क्षुब्ध हृदय में धड़ धड़ धड़ था ।
वैसा ही उस वाजि वेग में पड़ पड़ पड़ था ।
फड़ फड़ करने लगे जाग पेड़ों पर पक्षी ।
अपलक था आकाश चपल वल्गित गति लक्षी ।

–मैथिलीशरण गुप्त

३– दिल्लिय दलन दबाय करि, सिव सरजा निरसंक ।
लूटि लियो सूरति सहर, बंकक्करि अति डंक ।।

बंकक्करि अति डंकक्करि अस सकक्कुलि खल ।
सोचच्चकित भरोचच्चलिय विमोचच्चख जल ।।
तट्ठट्ठइ मन कट्ठट्ठिक ! सोइ रट्ठट्ठिल्लिय ।
सद्दद्दिसि दिसि भद्दद्दविभइ रद्दद्दिल्लिय ।।

—भूषण

कोमलावृत्ति मे माधुर्य तथा ओज गुण व्यजक वर्णो के अतिरिक्त वर्णो की रचना की जाती है । श्रृगार, शात तथा अद्भुत रसो के यह अनुकूल होती है । उदाहरणस्वरूप—

१— नव नव सुमनो से चुनकर
धूलि, सुरभि मधु रस हिमकण
मेरे उर की मृदु कलिका में
भरदे करदे विकसित मन

—पन्त

२— परे तें तुसार, भयौ झार पतझार, रही
पीरी सब डार सो वियोग सरसति है ।
बोलत न पिक, सोई मौन ह्वै रही है आस
पास निरजास, नैन नीर बरसति है ।
सेनापति केली बिन, सुन री सहेली ! माह
मास न अकेली वन वेली बिलसति है ।
विरह तें छीन तन, भूषन विहीन दीन
मानहु बसंत कंत काज तरसति है ।

इसमे र, ल आदि की कई बार बार आवृति हुई है ।

(अ) शब्दानुप्रास—

इसे लाटानुप्रास भी कहते है । इसमे सार्थक वर्णो की आवृत्ति तो होती ही है, शब्द और अर्थ की आवृत्ति भी हुआ करती है । यह नीचे के उदाहरणो से स्पष्ट हो जायगा—

१— त्रैनैनं त्रिजटेव सीस त्रितय, त्रैरूप त्रीसूलय ।
त्रिदेवं त्रिदिसा त्रिभू त्रिगुनय, त्री सधि वेदत्रय ।।

—चन्द

२— वे घर हैं वन ही सदा जो ह्वै बन्धु वियोग ।
वे घर हैं वन ही सदा जो नहिं बन्धु वियोग ।।

—मतिराम

३– नभ लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत आये बन माली न ॥
–बिहारी

४– तुरमती तहखाने तीतर गुसुलखाने,
सूकर सिलहखाने कूकत करीस हैं।
हिरन हरमखाने स्याही है सुतुरखाने,
पाढ़े पीलखाने औ करजखाने कीस हैं।
भूषन सिवाजी गाजी खग्ग सो खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं।
खड़गी खजाने खरगोस खिलवत खाने,
खीसें खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं।
–भूषण

(२) यमक (Repetition of same words or syllables similar in sound) निरर्थक वर्णों की अथवा भिन्न-भिन्न अर्थ वाले सार्थक वर्णों की क्रमशः आवृत्ति या उनके पुनः श्रवण को यमक कहते हैं। यथा–

१– वर जीते सर मैन के ऐसे देखे मै न ।
हरिनी के नैनान ते *हरि! नीके* यह नैन ॥

२– अतर गुलाब चोवा चन्दन सुगन्ध सब,
सहज शरीर की सुवास विकसाती हैं।
पल भरि पलंग तें भूमि न धरति पांव,
तेई खान पान छोड़ि बन बिललाती हैं।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
हार-भार तोरि निज सुध बिसराती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते *बनास पाती* खाती हैं।
–भूषन

(३) सार्थक वर्णो की आवृत्ति–

ऊँचे घोर *मन्दर* के अन्दर रहन वारीं,
ऊँचे घोर *मन्दर* के अन्दर रहाती हैं।
कन्दमूल भोग करें कन्दमूल भोग करें,
तीन *बेर* खातीं सो तौ तीन *बेर* खाती हैं।
भूखन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।

भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती है ॥
—भूषण

४— कग्गर अप्पह राजकर, मुष जपह इह वत्त ।
गोरी रत्तौ तुअ धर्रान, तू गोरी रस रत्त ॥
—चन्द वरदायी

(३) **श्लेष** (Paronomasia)—जिस रचना के शब्दो या अर्थो मे एक से अधिक अर्थ का प्रयोग मिले उसे श्लेष कहते है। इस अलकार को कुछ विद्वानो ने अर्थालकार के अन्तर्गत भी स्थान दिया है परन्तु अधिकाश विद्वान इसे शब्दालकार ही मानते हैं। इसका विषय अति व्यापक है। यह प्राय सभी अलकारो का शोभाकारक है। हिन्दी मे सेनापति की रचना श्लेष अलकारो के लिए प्रसिद्ध है। उदाहरणस्वरूप—

लिये सुचाल विशालबर समद सुरग अबैन ।
लोग कहै बरनै तुरग मैं बरने तुव नैन ॥
—मतिराम

इसमे अर्थ श्लेष का चमत्कार दर्शनीय है।

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरे मोती मानस चून ॥
—रहिमन

यहाँ पर शब्द श्लेष का चमत्कार दिखाया गया है। सेनापति द्वारा वर्णित श्लेष की सहायता से राम और गगा पक्ष पर घटित कवित्त देखिये—

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि,
भाई मन सतन के त्रिभुवन जानी है ।
देव न उपाई कीनौ यहै भौ उतारन कौं,
विसद वरन जाकी सुधा सम बानी है ।
भुवपति रूप देह धारी पुत्र सील हरि,
आई सुरपुर तैं धरनि सियरानी है ।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी,
राम की कहानी गगा-धार सी बखानी है ॥
—सेनापति (कवित्तरत्नाकर)

(४) **वक्रोक्ति** (Crooked speech)—किसी के कहे हुए वाक्य का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा श्लेष से अथवा काकु से अन्य अर्थ की कल्पना किया जाना। वक्ता ने कुछ कहा हो श्रोता का उससे भिन्न अर्थ की कल्पना करके उत्तर देना इस अर्थ का चमत्कार है।

वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है–

(१) श्लेष तथा (२) काकु।

श्लेष वक्रोक्ति–इसमे एक से अधिक अर्थ प्रयोग मे आते है। उदाहरणार्थ–

१– को तुम ! है घनश्याम हम, तौ बरसो कित जाय।
नहिं मनमोहन है प्रिये ! फिरि क्यो पकरत पाय ॥

२– को तुम ! हरि प्यारी ! कहाँ बानर को पुर काम।
श्याम सलोनी ? श्याम कपि क्यों न डरे तब बाम ॥

३– मुह दरिद्र अरु तुच्छ तन, जगलराव सु हद्द।
बन उजार पसु तन ! चरन, क्यो दूबरो, बरद्द ॥

काकु वक्रोक्ति–काकु एक विशेष प्रकार की कण्ठ ध्वनि होती है। जहाँ स्वोक्ति मे ही काकु उक्ति होती है वहाँ काकु व्यग्य होता है उदाहरणार्थ–

अब सुख सोवत सोच नहिं भीख माँगि भव खाहि।
सहज एकाकिन के भवन कबहुँकि नारि खटाहि ॥

इसमे काकाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है न कि काकु वक्रोक्ति।

१– मानस सलिल सुधा प्रतिपाही,
जियइ कि लवण पयोधि मराली।

२– बरखा बिलोकि वीर ! बरसे बधूटी वृंद
बोलत पपीहा पीयु पीयु मन भायेंगे
बल्लभ विचार हिय कहुरी सयानी सखी
ऐसे समय नाथ विदेश तें न आयेंगे ॥

३– हर जिसे दस कन्धर ने लिया,
कब भला फिर फेर उसे दिया।
खल किसे न हुआ मम त्रास है,
निडर हो करता परिहास है।

–रामचरित उपाध्याय

(५) **पुनरुक्तिवदाभास** (Similar tantology)–जहाँ भिन्न अर्थ वाले भिन्न आकार के पद सुनने मे समान अर्थ वाले अनुभूत हो। उदाहरणार्थ–

१– समय जा रहा और काल है आ रहा।
सचमुच उल्टा भाव भुवन में छा रहा ॥–गुप्त जी

यहाँ समय और काल समानार्थक प्रतीत होते हैं परन्तु काल का अर्थ यहाँ मृत्यु है।

२– वन्दनीय किहि के नहीं वे कविद मतिमान।
सुरग गयेहू काव्य रस जिनको जगत जहान ॥ –बिहारी

यहाँ जगत और जहान समान अर्थ वाले जान पडते है परन्तु जगत का अर्थ प्रकाशित और जहान का अर्थ सारे जगत मे है।

(६) **चित्र**–जहाँ पर वर्णो का प्रयोग इस प्रकार किया जाय कि उनसे चित्र भी बन जाय। कमल, छत्र, धनुष, हाथी, घोडा, धेनु, सर्वतोभद्र, दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार, चमर, चौकी आदि इसके अनेक अकार होते है। यह अलकार न तो रस की सिद्धि मे ही कोई सहायता करता है और न इसमे विशेष चमत्कार ही है केवल यह कवि की निपुणता सिद्ध करता है। आचार्य केशव ने अपनी कविप्रिया मे इस अलकार की विशद चर्चा की है। भूषण कवि-रचित कामधेनु का चित्र बनाने वाला निम्न छद देखिए:—

ध्रुव जो गुरता तिनको गुरु भूषन दानि बडो बिरजा पिव है।
हुव जो हरता रिन को तरु भूषन दानि बड़ो सिरजा छिव है।
भुव जो भरता दिन को नरु भूषन दानि बड़ो सरजा सिव है।
तुव जो करता इनको अरु भूषन दानि बड़ो बरजा निव है।

अर्थालंकार

अग्निपुराण मे व्यास का कथन है कि अर्थालकार रहित शब्द-सौन्दर्य भी मनोहर नही होता तथा अर्थो को अलकृत करने वाले ही अर्थालकार है। जो शब्द जिस अलकार के सृष्टा हो उनके बदलने पर भी वह अलकार स्थित रहे तो वह अर्थालकार कहा जाता है।

उपमा– (Simile)

यह सबसे प्राचीन अलकार है। नाट्यशास्त्र मे इसका उल्लेख मिलता हैं। और अग्निपुराण मे दिए हुए चार अलंकारो मे यह सर्वप्रथम हैं। 'उपमेय और उपमान मे सादृश्य की योजना करने वाले समान धर्म का नाम ही उपमा है। उपमा का अर्थ है समीपता से किया गया मान। जैसे 'चद्रमा के समान मुख कातिवान है' मे चद्रमा और मुख समीप लाकर तुल्य किये गए है।

उपमा के चार अग हैं-उपमेय, उपमान, समान धर्म और उपमावाचक शब्द।

उपमेय– जिसको उपमा दी जाय। इसके अन्य नाम वर्ण्य, वर्णनीय, प्रस्तुत, प्रकृत और विषय है।

उपमान– जिससे उपमा दी जाय। इसके अन्य नाम अवर्ण्य, अवर्णनीय, अप्रकृत और विषयी है।

समान धर्म–उपमेय और उपमान दोनो मे समानता रखनेवाले गुण, क्रिया आदि धर्म कहलाते है।

उपमावाचक शब्द–उपमेय और उपमान की समानतासूचक सादृश्यवाचक शब्द उपमावाचक शब्द कहलाते है ।

उपमा के अनेक भेद है जिनमे पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, बिंबप्रतिबिंबोपमा, श्लेषोपमा, मालोपमा अधिक प्रसिद्ध है ।

पूर्णोपमा– वहाँ होती है जहाँ उपमा के चारो अग उपस्थित होते है । यथा-सिह सी मदोन्मत्त चाल।

१– **जा दिन ते छवि सो मुसकात कहूँ निरखे नँदलाल विलासी,**
ता दिन ते मन ही मन में मतिराम दिये मुसकानि सुधासी ।
नेक निमेष न लागत नैन चकी चितवे तिय देव तियासी,
चदमुखी न हलै न चलै निरवात-निवास में दीपसिखा सी ।

यहाँ चद्रमुखी उपमेय है, 'निरवात निवास मे दीपसिखा' उपमान है 'न हलै न चलै' समान धर्म है तथा 'सी' उपमावाचक शब्द है ।

२– **शरों की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे,**
थके, टूटे गरुड़ से त्रस्त पन्नगराज जैसे,
मरण पर वीर जीवन का अगम बल भार डाले,
दबाए काल को, सायास सज्ञा को संभाले;
पितामह कह रहे कौन्तेय से रण की कथा हैं ।

लुप्तोपमा– वहाँ होती है जहाँ उपमा के चार अगो मे से कोई एक लुप्त हो । यथा नागिन सी तलवार ।

१–**पावक तुल्य अमीतन को भयो मीतन को भयो धाम सुधा को ।**
आनँद भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को ।।
भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषन भाखत सत्रु सुधा को ।
बंदन तेज त्यो चदन कीरति सोधे सिंगार बधू वसुधा को ।।

इसके प्रथम चरण मे दो लुप्तोपमाये है । दूसरे मे वाचक लुप्ता और चौथे मे धर्म वाचक लुप्ता है ।

श्लेषोपमा– जहाँ पर एक से अधिक अर्थवाचक उपमा के शब्दो का प्रयोग किया जाता है । यथा–

१— **उदयाचल से निकल मंजु मुसकान कर**
वसुधा मंदिर को सुंदर आलोक से,
भर देनें वाली नवीन पहली उषा
के समान ही जिसका सुंदर नाम है ।

यहाँ उषा शब्द से राजकुमारी और प्रात:काल दोनो का अर्थ लगता है तथा सार्थक उपमालकार है ।

२— महीभृतन में लसत है तू सुमेरु सम सत्त ,
है नृपेन्द्र ! तू काव्य में वृषपर्वा सम नित्त ।।

इसमे महीभृत (राजा या पर्वत) और काव्य (काव्य या शुक्राचार्य) पद श्लिष्ट है तथा सम्पूर्ण छन्द मे श्लिष्टा-परम्परिता-मालोपमा है ।

मालोपमा—जहाँ पर उपमाओ की लडी पिरोई होती है। यथा—

इद्र जिमि जभ पर वाडव सुअंभ पर,
रावण सदंभ पर रघुकुल राज है ।
पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यो सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ।
दावा द्रुम दण्ड पर चीता मृग झुण्ड पर
भूषन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम अस पर कान्ह जिमि कस पर
त्यों मलेच्छ वस पर सेर शिवराज है ।

उपमालकार के और भी अनेक भेद-प्रभेद है ।

रूपक (Metaphor)-(आरोप)-

उपमेय मे उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाना ही रूपक है ।

रूपक दो प्रकार का होता है—अभेद रूपक और ताद्रूप्य रूपक ।

अभेद रूपक—उपमेय मे अभेद से उपमान का आरोप—अर्थात् भेद होने पर भी अभेद रहता है । अभेद का अर्थ हुआ एकता । इस अलकार मे अभेद न होने पर भी अभेद कहा जाता है । जैसे चन्द्रमुख मे चन्द्र और मुख मे भेद होने पर भी उन्हे एक ही कहा गया है । भ्रान्तिमान अलकार मे भी उपमेय और उपमान मे अभेद होता है परन्तु उसमे निश्चित रूप से अभेद न करके भ्राति रूप से अभेद की कल्पना की जाती है ।

अभेद रूपक के तीन प्रकार है—

(१) सावयव (साग) रूपक—जहाँ अवयवो सहित उपमान का आरोप होता है । यथा—

(१) भुगति भूमि किय क्यार । वेद सिंचिय जल पूरन ।।
बीय सुवय लय मध्य । ग्यांन अंकू रस जूरन ।।
त्रिगुन साख संग्रहिय । नाम बहु पत्त रत्त छित्ति ।।
सुक्रम सुमन फुल्लयौ । मुगति पक्की द्रव संगति ।।
दुज सुमन डसिय बुध पक्क रस । बट विलास गुन विस्तरिय ।।
तरु इक्क साख त्रय लोक महि । अजय विजय गुन विस्तरिय ।।

—चंद

यहाँ भोग-भूमि मे क्यारी का, वेदवाणी मे जल का, ज्ञान मे अकुर का, तीन गुणो मे शाखाओ आदि का आरोप किया गया है।

(२) अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा शब्द रसाल।
भरम भर्‌यो मत भयो पखावज चलत असंगत चाल।
तृष्ना नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो लोभ तिलक दियो भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल॥

इस पद मे काम-क्रोध का चोलना पर, विषयो का माला पर, मोह का नूपुरो पर, निंदा का रसीले शब्दों पर, भ्रम भरे मन का पखावज पर, तृष्णा का नाद पर, माया का फेटा पर और लोभ का तिलक पर आरोप किया गया है। तथा इस प्रकार उपमेय के अगो और उपमान के अगो मे अभेद बताया गया है।

(३) बिरति चर्म, असि ग्यान, मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस विचारि॥

—तुलसी

इसमे वैराग्य मे ढाल, ज्ञान मे तलवार और मद-मोह-लोभ मे शत्रु का आरोप किया गया है।

(४) रनित भृङ्ग घण्टावली, झरित दान मद नीर।
मद मद आवत चल्यौ, कुंजन कुज समीर॥

—बिहारी

यहाँ समीर मे हाथी का, भृ ग मे घण्टे का और मकरन्द मे दान (मद-जल) का आरोप किया गया है।

(५) सूखे सिकता सागर में यह नैया मेरे मन की,
आँसू की धार बहाकर खे चला प्रेम बेगुन की॥

—प्रसाद

निरवयव (निरङ्ग) रूपक—अवयवो से रहित केवल उपमेय मे उपमान का आरोप होता है। इसके दो भेद होते है—माला रूपक और शुद्ध रूपक। यथा—

(१) विधि के कमडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही
हरि पद पकज प्रताप की लहर है
कहै पदमाकर गिरीस सीस मण्डल के
मुण्डन की माल ततकाल अघहर है।

भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य पथ
जन्म जप जोग फल फंल की फहर है।
क्षेम की छहर गग रावरी लहर
कलिकाल को कहर जम जाल को जहर है ॥

यहाँ गगा जी मे ब्रह्मा के कमण्डल की सिद्धि आदि अनेक निरवयव उपमानो का आरोप किया गया है। यह माला रूपक है जिसमे एक उपमेय मे अवयवो के बिना अनेक उपमानो का आरोप पाया जाता है।

(१) **इस हृदय-कमल का घिरना अलि-अलकों की उलझन में।**
आँसू-मरन्द का गिरना मिलना नि श्वास-पवन में।

—प्रसाद

इस छद मे चार निरंग रूपको की योजना है।

(२) **ओ चिंता की पहली रेखा, अरे विश्व बन की ब्याली।**
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप सी मतवाली ॥

यहाँ चिंता मे विश्व बन की व्याली आदि निरवयव उपमानो का आरोप होने से माला रूपक है।

(३) **सुरपति के हम ही है अनुचर, जगत्प्राण के भी सहचर,**
मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिरजीवन धर।

—पन्त

इसमे बादल पर चार निरवयव उपमानो का आरोप किया गया है।

(४) **कनक छाया में जब कि सकाल खोलती कलिका उर के द्वार।**
सुरभि पीड़ित मधुपो के बाल तड़प बन जाते है गुंजार ॥

—पंत

यहाँ उर मे द्वार का रूपक है और मधुपो के बाल मे गुजार का अस्तु इसमे निरवयव रूपक का भिन्न रूप पाया जाता है।

उपर्युक्त दोनो छन्दो मे निरवयव रूपक का शुद्ध रूप है जिनमे अवयवो के बिना उपमान का उपमेय पर आरोप किया गया है।

परम्परित रूपक—जहाँ एक आरोप दूसरे आरोप का कारण होता है। इसके दो प्रकार होते है—

(१) श्लिष्ट शब्दमूलक और
(२) भिन्न शब्दमूलक। यथा—

(१) **या भव पारावर को उलँघि पार को जाय,**
तिय छवि छाया ग्राहिनी गहै बीच ही आय।

—तुलसीदास

• यहाँ पर नारी सौदर्य मे जल मे रहने वाले छायाग्राहिणी नामक पौराणिक जीव के आरोप के कारण ससार मे समुद्र का आरोप है। यह श्लिष्ट शब्दमूलक है।

(२) **वाडव ज्वाला सोती थी इस प्रणय सिंधु के तल में।**
प्यासी मछली सी आँखें थी विकल रूप के जल में॥

—प्रसाद

यहाँ पर विरह-वेदना के कारण प्रणय के सागर मे बडवाग्नि बताई गई है तथा उस वेदना से व्यथित मछली सी आँखो का रूप रूपी जल मे व्याकुल भाव दिखाया गया है। इसमे 'सी' उपमा का भ्रामक है परन्तु उपमा नही है वरन् रूपक ही है और वह भिन्न शब्दमूलक है। (अप्पय्य दीक्षित ने अपने कुवलयानन्द मे रूपक की इस विधा का निर्देश किया है)।

(ब) ताद्रूप्य रूपक—

इसमे उपमेय को उपमान का ही दूसरा रूप कहा जाता है। अर्थात् उपमेय उपमान का रूप ग्रहण करता है पर उससे भिन्न कहा जाता है यथा—

(१) **अमिय झरत चहुँ ओर अरु नयन ताप हरि लेत।**
राधा मुख यह अपर ससि सतत उदित सुख देत॥

यहाँ अपर ससि द्वारा उपमेय राधा के मुख को उपमान चन्द्रमा से भिन्न चन्द्र कहा गया है। सतत उदित के कारण अधिक ताद्रूप्य है।

(२) **दुइ भुज के हरि रघुबर सुंदर भेस।**
एक जीभ के लछिमन दूसर सेस॥ —तुलसी

इसमे लक्ष्मण को दूसरा शेषनाग कहकर एक जिह्वा वाला बताकर न्यूनता भी दिखा दी गयी है।

आचार्य भिखारीदास ने न्यून ताद्रूप्य का निम्न उदाहरण दिया है—

(३) **कुज के सपुट हैं ये खरे हिय में गड़ि जात ज्यो कुत की कोर हैं।**
मेरु हैं पै हरि हाथ में आवत चक्रवती पै बड़े ही कठोर हैं।
भावती तेरे उरोजनि में गुन दास लखे सब औरहि और हैं।
सभु हैं पै उपजावै मनोज सुवृत्त हैं पै परचित्त के चोर हैं।

यहाँ शभु आदि का आरोप करके उरोजो का विलक्षण वैधर्म्य दिखाकर विरोध किया गया हैं जिसकी पुष्टि सभी आरोप करते हैं। अस्तु इसमे न्यून ताद्रूप्य रूपक न होकर विरोधाभास अलकार का प्राधान्य है।

अनन्वय (Comparison of an object with its own ideal)—इसमे एक ही वस्तु को उपमेय और उपमान रूप से कथन किया जाता है। अनन्वय का अर्थ है अन्वय (सबध) न होना। यथा—

(१) सागर है सागर सदृश गगन-गगन सम जानु ।
है रन रावन राम को रावन राम समानु ।।

(२) साहि तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुंदभि बाजै ।
भूषन भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढि मौजनि साजै ।।
राजन को गन, राजन ! को गनै ? साहिन मैं न इती छवि छाजै ।
आजु गरीब नेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै ।।

यहाँ 'तो सो तुही' मे उपमेय का उपमान उपमेय ही कहा गया है । इस अलकार मे स्वयं उपमेय ही अपना उपमान इसीलिये कहा जाता है कि उसके योग्य उपमान का अभाव होता है ।

(३) नारियो की महिमा-सतियो की गुण गरिमा में–
जिनके समान जिन्हें छोड कोई और नहीं, माता है मेरी वे ।

उत्प्रेक्षा–(Poetical Fancy), (सभावना) । इसमे प्रस्तुत (उपमेय) का निषेध करके अप्रस्तुत (उपमान) मे उसकी सम्भावना की जाती है । इस अलकार द्वारा उपमान का उत्कटता से ज्ञान होता है तथा नवीन उपमानो की योजना का इसमे सबसे अधिक अवसर रहता है । हिंदी साहित्य मे जायसी की उत्प्रेक्षाये दर्शनीय हैं ।

उत्प्रेक्षा चार प्रकार की होती हैं–

१ *वस्तूत्प्रेक्षा*–जिसमे एक वस्तु की दूसरी वस्तु मे सभावना की जाती है । यथा–

(१) सोहत ओढे पीत पट श्याम सलोने गात ।
मनो नीलमणि सैल पर आतप पर्‌यो प्रभात ।।

यहाँ कृष्ण के सलोने श्याम गात पर शोभित पीताम्बर के सौंदर्य पर नीले माणिक्य के पर्वत पर प्रभातकालीन सूर्य-प्रभा पडने की उत्प्रेक्षा की गई है ।

(२) मानहुँ नाल खंड दुइ भए । दुहुँ बिच लक तार रहि गए ।
हिय के मुरे मुरै वह तागा । पैग देत कित सहि सक लागा ।।

इसमे पद्मिनी की कटि की सूक्ष्मता का दिग्दर्शन कराने के लिए जायसी ने तारो से जुडी हुई कमल-नाल की उत्प्रेक्षा की है ।

(३) जुरे जघ सोभा अति पाए । केरा खंभ फेरि जनु लाए ।।

२. *हेतूत्प्रेक्षा*–इसमे अहेतु मे हेतु की सभावना की जाती है ।

सहस किरिन जो सुरुज दिपाई ।
देखि लिलार सोउ छपि जाई ।।

सूर्य के अस्त होने का प्राकृतिक कारण है किन्तु पद्मावती के दैदीप्यमान

ललाट के सौन्दर्य व तेज के सम्मुख उसके अस्त होने की सभावना जायसी ने अहेतु मे हेतु के माध्यम से की है।

हँसत दसन अस चमके पाहृन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरक्कि।।

दाडिम के विदीर्ण होने का स्वाभाविक कारण है किन्तु पद्मावती के दाँतों की काति और सौन्दर्य को देखकर स्पर्द्धा मे हीन ठहरने के कारण कवि ने उसके हृदय का विदीर्ण होना बताया है।

३ *फलोत्प्रेक्षा*–जहाँ पर अफल मे फल (result) की सभावना की जाती है। यथा–

पहुप सुगध करहिं एहि आसा।
मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा।।

प्रकृति मे पुष्पो की सुगधि का फल यह होता है कि अपनी सृष्टि के प्रजनन हेतु उनकी सुगधि तितली आदि कीटाणुओ को समीप ले आये। यहाँ पर जायसी ने पुष्पो की सुगधि विकीर्ण करने का फल यह बतलाया है कि पद्मावती उन्हे अपनी नासिका से लगा ले। इस प्रकार अफल मे फल की सभावना की गई है।

४. *गम्योत्प्रेक्षा*–जिसमे उत्प्रेक्षा वाचक शब्दो का प्रयोग नही होता है। इसका अन्य नाम प्रतीयमाना भी है। यथा–

(१) **नित्य ही नहाता क्षीर सिंधु में कलाधर है।**
सुन्दर तव आनन की समता की इच्छा से।।

समता की इच्छास्वरूप यहाँ जो फल की कामना है उसकी उत्प्रेक्षा की गई है परन्तु उत्प्रेक्षावाचक शब्द मनु, जनु आदि नही प्रयुक्त हुए है।

(२) **चरणे चामीकर तणा चन्द्राणणि सजि नूपुर घूघरा सजि।**
पीला भमर किया पहराइत कमल तणा मकरद कजि।।

चद्रमुखी राजकुमारी रुक्मिणी ने सुवर्ण के नूपुर धारण करके उन पर घुँघुरू सजाये (मानो) कमलो के पराग की भ्रमरो से रक्षा के लिये पीली वर्दी वाले पहरेदार नियुक्त किये। यहाँ उत्प्रेक्षावाचक मनु, जनु नही लाये गये हैं।

गम्योत्प्रेक्षा केवल हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा ही हो सकती है वस्तूत्प्रेक्षा नही, क्योकि उत्प्रेक्षावाचक शब्दो के प्रयोग के बिना वस्तूत्प्रेक्षा सभव नही है।

सापह्नवोत्प्रेक्षा–जहाँ अपह्नुति सहित उत्प्रेक्षा की जाती है। उत्प्रेक्षा जब अन्य अलंकारो द्वारा उत्थापित होती है तब वह अधिक चमत्कारक हो जाती है जैसे श्लेषमूला उत्प्रेक्षा, सापह्नव-उत्प्रेक्षा आदि।

(१) **आता है चल के प्रवाह गिरि से पा वेग की तर्जना,**
होती है ध्वनि सो न, किंतु करती मानो वही गर्जना।

वीची-क्षोभ-खिली सुदन्त-अवली ये फेन आभास हैं,
श्री गंगा कलि-काल का कर रहीं मानो बड़ा हास हैं ।।

इस छद मे गगा के प्रवाह के फेनो का निषेध करके उसमे कलिकाल की हँसी करने की उत्प्रेक्षा की गई है अस्तु यह अपह्नुति द्वारा उत्थापित उत्प्रेक्षा है।

(२) **जन प्राची जननी ने शशि शिशु को जो दिया डिठौना है,**
उसको कलक कहना यह भी मानो कठोर टौना है ।

यहाँ कलक का निषेध करके माँ के डिठौना के रूप मे कह कर उसकी उत्प्रेक्षा की गई है ।

उत्प्रेक्षा मे वस्तु के सत्य-स्वरूप का ज्ञान होने से वह भ्रातिमान अलकार नही होती, ज्ञान की एक कोटि की प्रबलता के कारण वह सदेह अलकार नही होती तथा अध्यवसाय साध्य होने या उपमान का अनिश्चित रूप से कथन होने के कारण वह अतिशयोक्ति नही हो सकती ।

प्रतीप–(Converse) इस अलकार मे उपमान को उपमेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता होती है । इसके पाँच प्रकार है ।

प्रथम प्रतीप–प्रसिद्ध उपमान को उपमेय के रूप मे कल्पित किया जाता है । यथा—

ए सखि देखलि एक अपरुप ।
सुनइत मानबि सपन-सरूप ।।
कमल जुगल पर चाँदक माला ।
तापर उपजल तरुन तमाला ।।
तापर बेढ़लि बिजुरी-लता ।
कालिंदी तट धीरे चलि जाता ।।
साखा-सिखर सुधाकर पाँति ।
ताहि नव पल्लव अरुनक भाँति ।।
विमल बिम्बफल जुगल विकास ।
तापर कीर थीर करु वास ।।
तापर चचल खजन-जोर ।
तापर साँपिनि झाँपल मोर ।।

इस छद मे प्रसिद्ध उपमानो को उपमेय रूप मे कल्पित करके कृष्ण का रूप वर्णित है ।

द्वितीय प्रतीप–प्रसिद्ध उपमान की उपमेय रूप मे कल्पना करके (वर्णनीय) उपमेय का अनादर किया जाता है । यथा–

१– करती तू निज रूप का गर्व किंतु अविवेक।
रमा, उमा, शचि, शारदा तेरे सदृश अनेक॥

यहाँ नायका (वर्णनीय) उपमेय है, रमा, उमा, शचि आदि उपमानो को इसमे उपमेय बताकर उसका गर्व दूर किया गया है–

२– का घूँघट मुँह मूदहु अबला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥

यहाँ भी नायिका उपमेय है तथा उपमान चद को उपमेय बताकर उसका अहकार दूर किया गया है।

तृतीय प्रतीप–उपमान रूप मे उपमेय की कल्पना करके प्रसिद्ध उपमान का निरादर किया जाता है। यथा–

१– पदमिनि गवन हस गय दूरी। कुजर लाज मेल सिर धूरी।

यहाँ पर पद्मिनी की चाल उपमेय है जिसको उपमान कल्पना करके प्रसिद्ध उपमान हस और गजराज की चाले निरादृत की गई है।

२– मृगियो ने दृग मूद लिये दृग देख सिया के बाँके।
गमन देख हँसी ने छोडा चलना चाल बना के॥

इसमे उपमेय सीता जी के नेत्र और चाल को उपमान कल्पित करके प्रसिद्ध उपमान मृगियो के नेत्र और हृमिनी की चाल आदि का निरादर किया गया है।

चतुर्थ प्रतीप–उपमान को उपमेय की उपमा के अयोग्य बताया जाता है। यथा–

तेरे मुख सा पक सुत या शशांक यह बात।
कहते है कवि झूठ वे बुद्धि-रक विख्यात॥

इसमे पक सुत (कमल) या शशाक-उपमानो को उपमेय (नायिका के मुख) के अयोग्य ठहराया गया है।

पचम प्रतीप–जहाँ उपमान का कार्य उपमेय ही भलीभाँति करने मे समर्थ हो वहाँ उपमान की क्या आवश्यकता–ऐसा वर्णन करके उपमान का तिरस्कार किया जाता है। यथा–

कुद कहा पय वृ द कहा अरु चंद कहा सरजा जस आगे?
भूषन भानु कृसानु कहाऽब खुमान प्रताप महीतल पागे।
राम कहा द्विजराम कहा बलराम कहा रन मे अनुरागे।
बाज कहा मृगराज कहा अति साहस मे सिवराज के आगे॥

यहाँ उपमेय सरजा के यश के सम्मुख उपमान कुद, पय और चद का तिरस्कार है। खुमान के प्रताप के सामने उपमान भानु और कृसानु की अवज्ञा है। उपमेय रण-अनुरक्ति की तुलना मे राम, परशुराम और बलराम की उपेक्षा

है तथा उपमेय शिवाजी के साहस के आगे बाज और सिंह के साहस की अवहेलना है।

अपह्नुति–(Concealment) यहाँ पर उपमेय (प्रकृत) का निषेध करके (छिपाकर) उपमान (अप्रकृत) का आरोप (स्थापन) किया जाता है। अपह्नुति का अर्थ है छिपाना या निषेध। इसके प्रकारो को हम निम्न ढग से समझ सकते है–

हेत्वापह्नुति –उपमेय के निषेध का कारण दिखाते हुए उपमान की स्थापना। यथा–

सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान।
भुज भुजगेस भुजंगिनी भखति पौन अरि प्रान॥

यहाँ 'न होय किरवान' से सत्य छिपाकर 'पौन अरि प्रान' खाने रूप कारण से तलवार को नागिन रूप सिद्ध किया गया है।

पर्यस्तापह्नुति–किसी वस्तु मे किसी अन्य वस्तु के धर्म की स्थापना करने के लिए उस दूसरी वस्तु के धर्म का निषेध किया जाना। यथा–

१– **है न सुधा यह किंतु हे सुधा रूप सत्सग,**
विष हलाहल है न यह हालाहल दु:सग।

इसमे सत्सग मे साधन-धर्म की स्थापना करने के लिए सुधा के सुधा-धर्म का निषेध किया गया है।

२– **काल करत कलिकाल मैं, नहिं तुरकन को काल।**
काल करत तुरकान को, सिव सरजा करवाल॥

'कलिकाल मे मुसलमानो को मृत्यु नही मारती, शिवाजी की तलवार

. मारती है। यहाँ कलियुग से 'काल करने' धर्म का निषेध करके उसे शिवाजी की करवाल मे स्थापित किया गया है।

भ्रांतापह्नुत –सत्य बात प्रकट करके शका निर्मूल करना। इसमे कही संभव भ्राति और कही कल्पित भ्राति होती है। यथा–

१– एक समै सजि कै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए।
'आवत है सरजा सम्हरौ' एक ओर तें लोगन बोल जनाए।
भूषन भो भ्रम औरंग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए।
धाय कै सिह कह्यौ समुझाय करौलनि आय अचेत उठाये।

औरगजेब ने 'सरजा' का अर्थ शिवाजी समझा इसलिए भयग्रस्त होकर मूर्च्छित हो गया। तदुपरान्त हाँका देने वालो ने सिंह कहकर उसे उठाया। यहाँ 'सरजा' शब्द से जो शिवाजी का भ्रम हो गया था उसे सिंह कहकर दूर किया गया।

छेकापह्नुति–अपनी गुप्त बात प्रकट होने पर मिथ्या समाधान द्वारा उसे छिपाना। यथा–

१– भयो निपट मो मन मगन सखी लखत घनश्याम।
लख्यौ कहाँ नंदलाल, नहिं जलधर दीपति धाम।

नायिका ने अपनी सहेली से कहा कि घनश्याम को देखकर मेरा मन मग्न हो गया। स्वभावतः ही सखी ने जिज्ञासा की कि नँदलाल को कहाँ देखा। इस पर नायिका ने अपना रहस्य खुलते देख कर कहा कि मैं तो जलधर (काले बादल) की चर्चा कर रही हूँ तथा इस असत्य उत्तर से उसने सत्य को छिपाया।

२– रहि न सकत कोउ अपतिता यहि पावस रितु माँय।
कहा भई उत्कंठिता? नहिं पथ फिसलत पाँय॥

नायिका ने अपनी सखी से कहा कि इस वर्षा ऋतु मे कोई पतित (अमर्य्यादित, गिरे) हुए बिना नही रह सकता। सखी ने पूछा कि क्या तुम प्रिय से मिलने के लिए उत्कठित हो रही हो। नायिका ने अपना भेद खुलते देखकर कहा कि नही मैं तो इस वर्षा ऋतु मे पैरो के फिसलने की बात कह रही हूँ।

कैतवापह्नुति या आर्थापह्नुति–इसमे उपमेय का निषेध नही किया जाता वरन् कैतव, मिस, व्याज आदि शब्दो द्वारा निषेध का बोध कराया जाता है। यथा–

१– सिणगार करे मन कीधौ स्यामा देवि तण देहरा दिसि।
छोडि छंडि चरणे लागा हँस मोती लगि पाणही मिसि॥

श्रृंगार करके राजकुमारी रुक्मिणी ने देवी के मदिर की ओर जाने का मन किया। उस समय मोतियों से जड़ी हुई जूतियो के मिस हस स्पर्द्धा छोड़कर

उनके चरणो मे लोटने लगे। यहाँ उपमेय रुक्मिणी की चाल का बोध उपमान हंस गति का स्थापन करके कराया गया है।

व्यतिरेक—जहाँ पर उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन होता है। इसके २४ भेद है।

१ राधा मुख को चंद सा कहते है मतिरंक।
निष्कलंक है यह सदा शशि में प्रगट कलंक॥

२. दहन करती चिता तन जीवन-रहित।
दुख का अनुभव अतः होता नही॥
रात दिन करती दहन जीवन सहित।
हे न चिता ज्वाल की सीमा कही॥

३ का सरवरि तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी वह निकलंकू॥

४. रितु किहि दिवस सरस राति किहि सरस,
किहि रस सन्ध्या सुकवि कहन्त।
वे पक्ख सूधति बिहूँ मास बे,
बसन्त ताइ सारिखौ वहन्त॥

५. जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधु माया में॥

भ्रम (भ्रांति) (Mistake or Error)—अप्रकृत (उपनाम) के सदृश प्रकृत (उपमेय) को देखने पर अप्रकृत की भ्राति होने से भ्रातिमान अलकार होता है। एक वस्तु के भ्रम के कारण दूसरी वस्तु समझ लेना ही भ्राति है। यह सादृश्यमूलक चमत्कारक भ्राति कवि-कल्पित होती है और इस भ्रम की उत्पादक उसकी प्रतिभा है। यथा--

१. दुग्ध समझ कर रजत पात्र को लगे चाटने जिन्हें बिडाल।
तरु छिद्रो से गिरी देख गज लगे मानने जिन्हें मृनाल॥
रमणी जन रति अंत तल्प से लेने लगी वस्त्र निज जान।
प्रभामत्त शशि किरण सभी को भ्रमित बनाने लगी महान॥

२ तसु रंग वास तसु वास रग तण कर पल्लव कोमल कुसुम।
वणि-वणि मालणि केसर वीणति भूली नख प्रतिबिंब भ्रम॥

३ कुसुम जानि शुक चोंच पर भ्रमर गिर्‌यौ मँडराय।
सोहू तेहि चाहत धरन जामुन फल ठहराय॥

संदेह (Doubt)—किसी वस्तु के विषय मे सादृश्यमूलक सशय होने मे सदेह अलकार होता है। इसमे प्रायः उपमेय मे उपमान का सदेह होता है।

१. तारे आसमान के हैं आये मेहमान बन,
याकि, कमला ही आज आके मुसकाई है।
आई अप्सरायें है अलक्षित कहीं क्या जो कि,
उनके विभूषणो की ऐसी ज्योति छाई है।
चन्द्र ही क्या बिखर गया है चूर-चूर होके,
क्योंकि आज नभ में न पड़ता दिखाई है।
चमक रही है चपला ही एक साथ याकि,
केशो में निशा के मुकुतावली सजाई है ।।

२ सम्प्रति अे किना-किना अे सुहिणो आयौ कि हूँ अमरावती।
जाइ पूछियौ तिणि इम जम्पियौ देव सु आ दुआरामती ।।

३. निद्रा के उस अलक्षित वन में,
वह क्या भावी की छाया।
दृग पलको में विचर रही या,
वन्य देवियो की माया ।।

उल्लेख (Representation)-एक वस्तु का निमित्त भेद से (ज्ञाताओ के भेद के कारण अथवा विषय भेद के कारण) अनेक प्रकार से उल्लेख (वर्णन) किये जाने को उल्लेख अलंकार कहते हैं। यथा–

१. मल्लानामशनिर्नृणा नरवर स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुः।
मृत्युर्भोजपते विराडविदुषा तत्व पर योगिनाम्,
वृष्णीना परदेवतेति विदितो रंग गतः साग्रज ।।

श्रीमद्भागवत् के इस श्लोक की छाया पर बना हुआ हिन्दी का निम्न सवैया है—

अति उत्सुक हो जन दर्शक ने हरि को अपने मन रंजन जाना।
शिशु वृंद ने आनँद कंद तथा पितु नंदक ने निज नंदन जाना।
युवती जन ने मन मोहन को रति के पति का मद गंजन जाना।
भुवि रंग में कंस ने शकित हो जग वदन को निज कदन जाना ।।

२. कामाणि कहि काम काल कहि केवी नाराइण कहि अवर नर।
वेदारथ इम कहै वेदवंत जोग तत्त जोगेसवर ।।

कृष्ण को कुडनपुरी मे कामिनियो ने कन्दर्प कहा, किसी ने काल कहा, दूसरे जनो ने उन्हे नारायण कहा, वेदज्ञो ने उन्हे वेदार्थ कहा तथा योग के तत्वदर्शियो ने उन्हे योगेश्वर कहा।

अतिशयोक्ति (Hyperbole)—'अतिशयत. अतिक्राते' (शब्द

चितामणि) अर्थात् उल्लघन । लोकमर्यादा का उल्लघन करने वाली उक्ति मे अतिशयोक्ति अलकार होता है । शब्द और अर्थ की विचित्रता अतिशयोक्ति के ही आश्रित है । आचार्य दडी का कथन है कि अतिशयोक्ति के बिना कोई अलकार हो ही नही सकता और उन्होने सदेह, निश्चय, मीलित आदि अलकारो को पृथक् न लिखकर अतिशयोक्ति के अन्तर्गत ही लिखा है । इसके निम्न पॉच भेद है—

रूपकातिशयोक्ति—(भेदेप्यभेद , अर्थात् भेद मे अभेद देखना)—उपमान द्वारा निगरण किये हुए उपमेय का अध्यवसान ही इस शैली का चमत्कार है । यहाँ केवल उपमान द्वारा ही उपमेय का वर्णन किया जाता है । यथा—

रतनारे नेत्रो के बीच घूमती हुई पुतलियो की शोभा का वर्णन जायसी ने इस प्रकार किया है —

१. **राते कँवल करहिं अलि भवाँ ।**
घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ[1] ।।

२. **बलदेव महाबल तासु भुजावलि पिड़ि पहरन्तै नवी परि ।**
बिजड़ा मुहे वेड़तै बलिभद्रि सिरां पुंज कीआ समरि ।

—पृथ्वीराज (वेलि)

३. **बाँधा था विधु को किसने इन काली जजीरो से ।**
मणि वाले फणियो का मुख क्यों भरा हुआ हीरो से ।।

—प्रसाद

भेदकातिशयोक्ति—(अभेद मे भेद) उपमेय का अन्यत्व वर्णन । इस प्रणाली मे वास्तव मे भेद न होने पर भी भेद वर्णन किया जाता है । यथा—

आनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरे कछू जिहि बस होत सुजान ।।

यहाँ सुन्दरी के अन्य साधारण कटाक्षो मे 'औरे' पद के द्वारा भेद बताया गया है ।

सम्बन्धातिशयोक्ति—असबध मे सबध की कल्पना का किया जाना । यथा—

१ **नित गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू ।**
नाहिं त होइ बाजि रथ चूरू ।। —जायसी

सिंहलगढ़ के दुर्ग की ऊँचाई का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि सूर्य और चद्र प्रतिदिन अपने घोडो (एव हरिणो) और रथो को उधर से निकलते हुए बचाकर चलते हैं, नही तो वे नष्ट भ्रष्ट हो जावे ।

---

[1]—उडकर भागना ।

(२) विशेष का सामान्य से साधर्म्य से समर्थन,

(३) सामान्य का विशेष से वैधर्म्य से ममर्थन, तथा

(४) विशेष का सामान्य से वैधर्म्य से समर्थन । यथा–

१. पैंज काज पारथ्थ, नाथ दुरजोधन भज्यौ ।
पैंज काज श्रीराम, लंक दसकधर गंज्यौ ॥
पैंज काज श्रीकृष्ण, कस मथुरा महि मार्‌यौ ।
पैंज काज बलि राय, रूप वामन करि गाह्यौ ॥
हूँ पैंज काज बंधन सहिस, तुम बधन चष्षे नहीं ।
ज्यों तेल नीबु बपु तिलछही, ते साहि इसी बत्ती कही ॥ –चद

यहॉ पार्थ, राम, श्रीकृष्ण, वामन आदि की पैज (प्रतिज्ञा) अर्थात् विशेष-वृत्तात द्वारा धीर पुडीर अपनी पैज अर्थात् सामान्य वृत्तात का समर्थन करता है । इसके अतिम चरण मे आये ज्यो से उदाहरण अलकार का भ्रम न होना चाहिये क्योकि पूर्व चरणो के वर्णनो से यह असम्बद्ध है ।

२. गरज आपनी आपसो, रहिमन कही न जाय ।
जैसे कुल की कुलबधू, पर घर जात लजाय ॥

यहॉ कुलवधू की चर्या के विशेष वृत्तात से पूर्वार्द्ध वर्णित सामान्य वृत्तात अपनी गरज के कथन का ममर्थन किया गया है ।

परिसंख्या (Special mention)–जहॉ प्रश्नपूर्वक अथवा बिना ही प्रश्न के कुछ कहा जाय वह उसी के समान किसी वस्तु के निषेध करने के लिए हो वहॉ परिसख्या अलकार होता है । यथा–

१. दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतिअ मनहिं सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ॥

इसमे कहा गया है कि राम-राज्य मे दंड केवल यतियो (दडी सन्यासियो) के हाथ मे और भेद केवल नर्तको के समाज मे सगीत मे दिखाई पड़ता था । राज्य-दड और भेद-नीति के निषेध व्यजना द्वारा प्रतीत होते है। यहाँ श्लेष भी मिश्रित है ।

निदर्शना (Illustration)—दृष्टातकरण अर्थात् करके दिखाना । निदर्शना अलकार मे दृष्टात रूप मे अपना कार्य उपमा द्वारा दिखाया जाता है । इसके तीन प्रकार होते है—

प्रथम निदर्शना, द्वितीय निदर्शना और तृतीय निदर्शना । यथा–

१. धरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ देहिं सब साखी ।

यहॉ पद्‌मावती की पलको की बरौनियो द्वारा धरती को बाणो से बेधने के सम्बन्ध की असंभव कल्पना के कारण प्रथम निदर्शना है ।

२ मधुप त्रिभंगी हम तजी प्रगट परम करि प्रीति ।
प्रगट करत सब जगत में कटु कुटिलन की रीति ।।

त्रिभगी कृष्ण ने प्रेम करके गोपियो को त्याग दिया और इस प्रकार उन्होने कुटिल व्यक्तियो की प्रणाली ससार मे प्रकट कर दी । इसमें गोपियो का स्वरूप कृष्ण के प्रीति-त्यागने के कारण का सबध जगत मे कुटिलो की क्रिया से दिखाने के फलस्वरूप द्वितीय निदर्शना है ।

३ वह सुजोति हीरा उपराही ।
हीरा जाति सो तेहि परछाहीं ।।

यहाँ दाँत उपमेय का गुण उपमान हीरा मे आरोपित होने से तृतीय निदर्शना है ।

पर्यायोक्ति (Periphrasis)–मे अपनी बात सीधी तरह से न कहकर दूसरी तरह से कही जाती है । इसके दो प्रकार है ।

महाराज सिवराज, तेरे बैर देखियतु,
घन-बन ह्वै रहे हरम हबसीन के ।
भूषन भनत राम नगर जवारि तेरे,
बैर परवाह परे रुधिर नदीन के ।
सरजा समत्थ बीर तेरे बैर बीजापुर,
बैरि बैयरनि कर चीन्ह न चुरीन के ।
तेरे बैर देखियतु आगरे दिली के बीच,
सिंदुर के बिंदु मुख इंदु जमनीन के ।।

यहाँ बीजापुर की स्त्रियो के विधवा होने और यवनियो का अपने को छिपाने का वर्णन घुमा-फिरा कर किया गया है । यह प्रथम पर्यायोक्ति है । दूसरी पर्यायोक्ति मे बहाने से कार्य साधन किया जाता है । यथा—

नाथ लखन पुर देखन चहहीं । प्रभु संकोच उर प्रगट न कहहीं ।
जो राउर अनुशासन पाऊँ । नगर दिखाय तुरत लै आऊँ ।।

इसमे रामचद्र जी की नगर देखने की अभिलाषा लक्ष्मण जी की इच्छा बताकर पूरी हुई है ।

व्याजस्तुति—(Artful praise)—निंदा के वचनो द्वारा स्तुति को व्याज स्तुति कहते है । स्तुति के वचनो द्वारा निंदा को व्याजनिंदा कहते हैं । यथा निम्न छद मे भूषण ने श्लिष्ट शब्दो मे शिवाजी के दान को साधारण बताकर निंदा की है परन्तु वास्तविक अर्थ ग्रहण करने पर स्तुति स्पष्ट हो जाती है । यथा—

१. पीरी पीरी हुन्नें तुम देत हौ मँगाय हमैं,
सुबरन हम सो परखि कर लेत हौ।
एक पल ही में लाख रूखन सों लेत लोग,
तुम राजा ह्वै कै लाख दीबे कों सचेत हौ।
भूषन भनत महाराज सिवराज बड़े,
दानी दुनी ऊपर कहाए केहि हेत हौ।
रीझि हँसि हाथी हमैं सब कोऊ देत,
कहा रीझि हँसि हाथी एक तुमहियैं देत हौ।

२. मोहि करि नगा अग अगन भुजगा बाँधै।
ऐरी मेरी गगा तेरी अदभुत लहर है ।।

इसमे गगा जी की निदा तो प्रत्यक्ष है परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रशसा की गई है कि उनकी कृपा से ही शिव को अपने अगो पर भुजग बाँधने की शक्ति प्राप्त हुई है।

निम्न छद मे भूषण ने शिवाजी के शत्रुओ की स्तुति करते हुए उनकी निंदा की है—

तू तो रातो दिन जग जागत रहत बेऊ,
जागत रहत रातौ दिन बन-रत हैं।
भूषन भनत तू बिराजै रज भरो बेऊ,
रज भरी देहिन दरी में विचरत हैं।
तू तौ सूर गन कौ विदारि विहरत सूर-
मंडलै विदारि वेऊ सुर लोक रत है।
काहे तें सिवाजी गाजी तेरोई सुजस होत,
तो सों अरिवर सरिवर सी करत हैं।।

मुद्रा—मुद्रा का अर्थ है मुहर या पेटी। मुद्रा-न्याय के आधार पर इस अलकार का नाम मुद्रा हुआ है। जिस प्रकार नाम अकित मुहर या पेटी किसी व्यक्ति विशेष से सबधित होने के कारण उसकी सूचना देती है उसी प्रकार मुद्रा अलकार मे वर्णन के प्रसग मे सूचनीय अर्थ का सूचन किया जाता है। यथा—

करुणे क्यों रोती है ?
'उत्तर' में और अधिक तू रोई,
मेरी विभूति है जो,
उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई।

यहाँ करुणा का वर्णन करते हुए 'उत्तर' एव 'भवभूति' शब्दों द्वारा महाकवि भवभूति के 'उत्तररामचरित' नाटक की सूचना दी गई है।

अधिक—(Exceeding) बडे आधेय (जो वस्तु किसी दूसरी वस्तु मे रखी जाय) और आधारो (जिनमे दूसरी वस्तु रखी जाय) की अपेक्षा छोटे आधारो और आधेय का क्रमश. बडा वर्णन किया जाता है।

यथा— **सिव प्रचंड कोदड को तानत प्रभु भुजदंड।**
भयो खंड तब चड-रव नहिं मायो ब्रह्मंड॥

इसमे वडे आधार ब्रह्माड की अपेक्षा आधेय धनुष भग का शब्द वस्तुत. कम होने पर भी (नहिं मायो) पद द्वारा बडा बताया गया है।

अल्प— (Smallness) छोटे आधेय की अपेक्षा वस्तुत बडा आधार भी छोटा वर्णन किया जाता है। यथा—

१ **अब जीवन की हे कपि आस न मोहिं।**
कनगुरिया की मुंदरी कंकन मोहिं॥ —तुलसी

२ **तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होति यह नाम।**
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम॥ —केशव

३ **सुनहु स्याम ब्रज मे जगी दसम दसा की जोति।**
जहँ मुंदरी अंगुरीन की कर में ढीली होति॥

इन सब उद्धरणो मे आधेय अँगूठी की अपेक्षा आधार हाथ छोटा बताया गया है।

अप्रस्तुतप्रशंसा—(Indirect description) या उपमान की प्रशसा। इस अलकार मे अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराई जाती है।

राधिका को बदन सँवारि बिधि धोये हाथ।
ताते भयो चंद कर झारे भए तारे हैं।

यहाँ प्रकृति मे अनिर्वचनीय सुषमा उत्पन्न करने वाले चद्र और तारो की उत्पत्ति सृष्टि चित्रकार विधाता के राधा का मुख बनाने के उपरात क्रमश: अपने हाथ धोने और झिटकने से बतलाकर वास्तव में राधा के सौंदर्य की अनन्यता और अपरूपता की चर्चा की गई है।

इस अलकार के निम्न पाँच भेद हैं—

(१) कारण निवन्धना—प्रस्तुत कार्य का ज्ञान कराने के लिए अप्रस्तुत कारण का कथन।

(२) कार्य-निबन्धना—प्रस्तुत कारण का ज्ञान कराने के लिए अप्रस्तुत कार्य का कथन।

(३) विशेष-निबन्धना—साधारण उपमेय होने पर वहाँ असाधारण उपमान का कथन।

(४) सामान्य-निबन्धना—असाधारण उपमेय होने पर वहाँ साधारण उपमान का कथन ।

(५) सारूप्य-निबन्धना—उपमेय का कथन न करके उसके समानान्तर स्थिति वाले उपमान का वर्णन ।

समासोक्ति, रूपकातिशयोक्ति और अप्रस्तुतप्रशसा मे परस्पर भ्रम नही करना चाहिए ।

विभावना—(Peculiai causation) कारणान्तर (अन्य कारण) की कल्पना का किया जाना । कारण न होने पर कार्य नही हो सकता अस्तु प्रसिद्ध कारण के अभाव मे जिस कार्य का सम्पादन होना बताया जाता है, उसके दूसरे कारण की कल्पना इस असम्भवता को मिटाने के लिए की जाती है ।

विभावना के निम्न छः भेद हैं–

१ पहली विभावना—प्रसिद्ध कारण के अभाव मे कार्य की उत्पत्ति । यथा—

(१) **जीभ नाहिं पै सब किछु बोला । तन नाहीं सब ठाहर डोला ।**
—जायसी

(२) **बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु कर्म करै विधि नाना**
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।

२. दूसरी विभावना—कारण के अपूर्ण होने पर भी कार्य की उत्पत्ति । यथा–

मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्व ।
महामन्त्र गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्व ।

ब्रह्मा आदि सब देवताओ और मदाध गज को वशीभूत करने के दुष्कर कार्य हेतु मत्र तथा अकुश सदृश लघु और खर्व कारण बताया गया है ।

३. तीसरी विभावना—कार्य में बाधाये होने पर भी कार्य की उत्पत्ति । यथा—

तुव बेनी ब्याली रहै बांधी गुनन्ह बनाइ ।
तऊ वाम ब्रज चद कों बदाबदी डसि जाइ ।

(राधा की) वेणी रूपी सर्पिणी के गुणो (डोरों) से बँधी होने के कारग डसने मे बाधाये हैं, फिर भी वह बदाबदी से कृष्ण को डस जाती है ।

४. चौथी विभावना—अन्य कारण से कार्य की उत्पत्ति । यथा—

ता दिन अखिल खलभलै खल खलक में ,
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं ।

सुनत नगारन अगार तजि अरिन की ,
　　　　　　दारगन भाजत न बार परखत हैं ।
छूटे बार, बार छूटे, बारन तें लाल देखि ,
　　　　　　भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं ।
क्यो न उतपात होहि बैरिन के झुंडन मं ,
　　　　　　कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं ।

बादल अग्नि की उत्पत्ति का कारण नही है परन्तु यहाँ उससे आग उत्पन्न कराई गई है ।

५. *पाँचवीं विभावना*–विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति । यथा–

१ निय नाम सीत जालै वण नीला,
　　जालै नलणी थकी जलि ।
२ साँझ सोचि कुदण पुरि सूतौ जागियौ परभाति जगति ।

६. *छठी विभावना*–कार्य द्वारा कारण उत्पन्न होना । यथा–

अचरज भूषण मन बढ़यौ, श्री सिवराज खुमान ।
तव कृपान धुव धूम तें, भयो प्रताप-कृसान ॥

अग्नि से धुये की उत्पत्ति होती है परन्तु यहाँ शिवाजी के कृपाण रूपी दृढ धुये से प्रताप रूपी अग्नि की उत्पत्ति बताई गई है ।

अध्याय | ४

छन्द या वृत्त

''साधारणत: भारतीय छन्दो को दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है। (१) सस्कृत तथा (२) प्राकृत। प्रथम कोटि के छन्दो मे वर्ण-गणना प्रधान होती है तथा द्वितीय मे मात्रा-गणना।

'सस्कृत' छन्दो से भी प्राचीन वैदिक छद है जिनमे वर्ण विचार की प्रमुखता रहती है। उन छन्दो मे केवल वर्णो की सख्या ही प्रधान है तथा उनमे ह्रस्व अथवा दीर्घ मात्राये लगाने से कोई अन्तर नही माना जाता जबकि 'वैदिक' छन्दो से विकसित 'सस्कृत' छन्दो मे वर्ण विचार की तो प्रमुखता है ही साथ ही उनमें मात्रिक विचार भी समाविष्ट हो गये है।

'प्राकृत' छन्द प्रारम्भ से ही मात्रिक रहे है। इनमे सबसे प्राचीन 'गाथा' है तो अपने संस्कृत रूप मे 'आर्या' नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे छन्दो मे मात्रिक गणना ही प्रधान होती है किन्तु कवि अपनी इच्छा एवं आवश्यकतानुसार 'प्राकृत' छन्दो के वर्णों को ह्रस्व अथवा दीर्घ कर सकता है। कभी-कभी दीर्घ वर्ण (ए और ओ) मे केवल एक ही मात्रा की गणना की जाती है। वर्ण वृत्तो की अपेक्षा मात्रा वृत्तो मे कवि को अधिक स्वच्छन्दता का अवसर रहता है तथा साथ ही वे सगीत के लिए भी उपयुक्त होते है। संगीत मे ताल का निदान प्रधान है। तथा ताल का विचार मात्राओ पर अवलम्बित है न कि वर्णों पर। सम्भवत इन्ही दो प्रमुख कारणो से 'प्राकृत' काव्य की आदि अवस्था मे साधारण वर्ग से आने वाले, प्राकृत काव्य रचयिताओ ने मात्रा वृत्तो को अपनाया था। सगीत जनसाधारण पर प्रभाव डालने वाली कला है तथा सस्कृत नाटको के अवलोकन से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि नाटक के प्रारम्भ

मे नटी द्वारा गाये जाने वाले गीतो में प्राचीन मात्रा वृत्त 'गाथा' अथवा आर्या छन्द का ही प्रयोग किया गया है। इस बात से कौन अपरचित है कि प्राकृत काल मे शैल्यूष तथा मागधो ने जनसाधारण का मनोविनोद करने के लिए डफली पर गाये जाने योग्य अधिकाश मात्रिक छन्दो को जन्म दिया था जिनमे कुछ कालकवलित हो गये, कुछ सगीत मे पहुँच गये, कुछ नृत्य मे विशेष रूप से प्रयोग मे लाये जाने लगे तथा कुछ अपने उन्ही प्रारम्भिक रूपो मे आज भी चले आ रहे है।

'प्राकृत' छन्दो के निर्माण का श्रेय केवल लोक कवियो को ही नही है। जब प्राकृतो ने साहित्यिक तथा लौकिक रूप धारण कर लिये तब महान् विद्वानो ने भी इन भाषाओ मे साहित्य सर्जन किया तथा सम्भवत. यही एक प्रमुख कारण है कि मध्ययुगीन प्राकृत रचनाये सगीत विहीन है। किन्तु अपभ्रंशयुगीन रचनाओं का अवलोकन करते ही स्पष्ट हो जाता है कि ये कृतियाँ जिनका सृजन सर्वसाधारण के लिए हुआ था तथा जिनके रचयिता सदैव साधारण 'भाट' ही नही थे, सगीतमय है तथा इन्हे एक डफली पर गा सकने योग्य बना दिया गया है। 'पज्झटिका' छन्द एक ऐसा ही छन्द है। अपभ्रंश काव्य मे इसके प्रयोग की भरमार है। इस छन्द मे मात्राओ के उपरान्त स्वभावत· ही ताल लगने लगती है।

अपभ्रंश छन्दो मे कुछ ऐसे भी छन्द हैं। जिनका प्रयोग नृत्य मे किया जाता है। 'घत्ता' तथा 'मदनगृह' ऐसे ही छन्द हैं, जिनके गाये जाने पर नर्तक के एक विशेष क्षण पर गति परिवर्तन का रहस्य भली भाँति समझ मे आ जाता है।

छन्द प्रयोग वास्तव मे कवि की प्रतिभा पर अवलम्बित है। जैसे श्रेष्ठ खराद करने वाले के हाथो मे जाकर हीरे की चमक द्विगुणित हो जाती है बहुत कुछ वही हाल छन्द का भी है। छन्द के नियम पालन के अतिरिक्त कवि की प्रतिभा, विषय के अनुकूल छन्द चुनकर रस तथा अलकारो का वास्तविक अभिव्यजन करके छन्द की महत्ता को बहुत कुछ गौरवपूर्ण पद पर पहुँचा सकती है। वर्णन को दृष्टि मे रखकर ही छन्द का चुनाव होना चाहिए। प्रत्येक छन्द हर प्रकार के वर्णन करने के लिए उपयुक्त नही होता। जैसे वर्णनात्मक काव्य के लिए सूफी कवि उसमान एव जायसी ने चौपाई छन्द को अपनाया तथा कालान्तर मे तुलसी ने भी उसकी शक्ति देखकर अपना राम-चरित मानस लिखा। चौपाई छन्द मे अन्य प्रतिभासम्पन्न कवियो ने भी काव्य-सृजन किया किन्तु ठेठ अवधी की जो मिठास जायसी ला सके अथवा जो मजुलता तुलसी ने पैदा की है, उस तक अन्य कवि नहीं पहुँच सके। छन्द का चुनाव भाषा को देखकर करना अभीष्ट है। अवधी भाषा मे चौपाई छन्द

को जो सफलता प्राप्त हुई है। वह व्रज भाषा मे सम्भव न थी। फिर प्रत्येक छन्द प्रत्येक रस के अनुरूप भी नही होता। यद्यपि छन्द शास्त्राकारो ने ऐसे नियमो का निर्देश नही किया है फिर भी यह बात प्रकाशित काव्यो के अवलोकन से स्पष्ट हो जाती है"[1]

छन्द—वर्ण और मात्रा गणना, यति (विराम) और गति का नियम तथा चरणात मे समता जिस काव्य मे हो उसे छन्द कहते है। जर्मन विद्वान मैक्समूलर वे पहले व्यक्ति है जिन्होने सस्कृत वृत्त और ग्रीक Versus शब्द मे साम्य देखा था। अग्रेजी मे छन्द को Meter और कभी-कभी Verse भी कहते है।

वर्ण—वर्ण दो प्रकार के होते है–(१) ह्रस्व (लघु) और (२) दीर्घ (गुरु)।

(१) ह्रस्व—पिगल मे ह्रस्वाक्षर को लघु कहते है। लघु का चिन्ह '।' है। यथा—अ, इ, उ, क, कि, कु। लघु वर्ण का साकेतिक नाम 'ल' है। लघु वर्ण एक मात्रिक होता है।

(२) **दीर्घ**–पिगल मे दीर्घाक्षर को गुरु कहते है। गुरु का चिन्ह 'ऽ' है। यथा–

(१) आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ ,

(२) का, की, कू, के, कै, को, कौ, क, कः

गुरु वर्ण द्विमात्रिक होते है।

(१) सयुक्ताक्षर के पूर्व का लघु वर्ण गुरु माना जाता है। यथा 'अक्षर' इसमे 'क्ष' सयुक्ताक्षर है अत. पूर्वाक्षर 'अ' पर अधिक भार पडने के कारण उसे द्विमात्रिक अथवा गुरु माना जाता है।

(२) सयुक्ताक्षर के पूर्व का लघु वर्ण जिस पर भार नही पडता लघु ही रहता है। यथा–कन्हैया, जुन्हैया

(३) सानुस्वार एव सविसर्ग वर्ण दीर्घ अथवा गुरु माने जाते है। यथा–बक, दुःख। इसमे 'ब' तथा 'दु' गुरु वर्ण है।

(४) सानुस्वार एव सविसर्ग वर्ण यदि स्वय दीर्घ हो तो उनकी मात्राओ

---

१. चद वरदायी और उनका काव्य, (छद-समीक्षा, पृ० २१३–१४), डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, सन् १९५१ ई०।

मे कोई वृद्धि नही होती। यथा—गागये, हा हाः। इसमे 'गा' और 'हा' स्वय दीर्घ वर्ण है। अनुस्वार एव विसर्ग के कारण इन पर कोई अन्य प्रभाव नही पडता।

(५) अर्धचन्द्र ' ँ ' वाले वर्ण लघु या एक ही मात्रा के माने जाते हैं। यथा–हँसना, फँसना आदि।

(६) कभी-कभी पदान्त का लघु वर्ण विकल्प रूप से (प्रयोगानुसार) गुरु मान लिया जाता है। यथा–'लीला तुम्हारी अति ही त्रिचित्र' मे 'त्र'।

(७) कुछ दीर्घ वर्ण विकल्प से लघु पढे जाते है। यथा–'करत जो बन सुर नर मुनि भा॰न' मे 'जो'।

(८) कुछ लघु वर्ण विकल्प से दीर्घ पढे जाते है। यथा–(६) सदृश।

मात्रा—वर्ण के उच्चारण मे जो समय व्यतीत होता है उसे मात्रा कहते है। लघु वर्ण के उच्चारण मे जो समय लगता है यह उतना ही काल होता है जितना एक चुटकी बजाने मे लगता है। लघु वर्ण की एक मात्रा मानी जाती है। गुरु वर्ण के उच्चारण मे लघु से दुगुना समय लगता है अत. उसकी दो मात्राये मानी जाती हैं। मात्रा के अन्य नाम कला, कल, मत्ता, मत भी मिलते हैं।

मात्रिक छंद—(क्रम हत मत्ता) जिन छदो मे मात्राओं की सख्या तथा उनकी व्यवस्था का ध्यान रखा जाता है अर्थात् जहाँ मात्रिक संख्या समान होती है, वर्णों की संख्या और व्यवस्था उपेक्षणीय होती है, उन्हे मात्रिक छद कहते हैं।

वर्णिक वृत्त—(क्रम गत वृत्ता) जिन छन्दों मे मात्राओ की सख्या पर विचार न रखते हुए गुरु तथा लघु की व्यवस्था का सर्वत्र निरतर ध्यान रखा जाता है उन्हे वर्णिक वृत्त कहते हैं। इन वृत्तों मे वर्ण क्रम तथा उनकी संख्या भी समान होती है। हम इस प्रकार भी कह सकते है कि जिस छद के चारो चरणो

मे वर्ण क्रम एक सा हो और उनकी सख्या भी समान हो वह वर्णिक छद है। इस प्रकार के छंद गणो द्वारा क्रमबद्ध होते है।

मुक्तक छंद्—मात्रा और गणो के वन्धन से मुक्त छद मुक्तक कहे जाते हैं।

मात्रिक तथा वार्णिक दोनो प्रकार के भेदो के तीन-तीन उपभेद होते है।

१. **सम**—जिसके चारो चरणो के लक्षण एक से हो अर्थात् जिन छदो मे मात्राओ अथवा वर्णो की सख्या चारो चरणो में समान रहती हो उसे सम छद कहते है।

२. **अर्द्धसम**—जिसके प्रथम और तृतीय (विषम) तथा द्वितीय और चतुर्थ (सम) चरणो की मात्राओ अथवा वर्णों की सख्या समान हो उन्हे अर्द्धसम छद कहते है। दो चरणो वाले छदो का प्रत्येक चरण दल कहलाता है।

३. **विषम**—जिसके चारो चरणो मे क्रम अलग-अलग हो उन्हे विषम छन्द कहते है। अथवा जो न सम होते है और न अर्द्धसम।

सम छन्द दो प्रकार के होते है—

साधारण—मात्रिक मे ३२ मात्राओ तक साधारण छद तथा वर्णिक मे २६ वर्ण तक साधारण वृत्त कहे जाते है।

दण्डक—मात्रिक मे ३२ से अधिक मात्रा वाले दडक छद तथा वर्णिक मे २६ से अधिक वर्ण वाले दडक वृत्त कहे जाते हैं।

अक्षर (वर्ण)—ये दो प्रकार के होते है-

१ शुभाक्षर—ये १५ होते है। यथा–क, ख, ग, घ, च, छ, ज, द, ध, न, य, श, स, क्ष, ज्ञ।

२ अशुभाक्षर—इन्हें दग्धाक्षर कहते है। ये १९ होते है। यथा-ङ, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष, ह।

दग्धाक्षरो को कविता के प्रारम्भ या आदि मे नही रखना चाहिए यद्यपि इनके परिहार का भी विधान है।

वर्णिक गण—तीन-तीन वर्णों के एक समूह को वर्णिक गण कहते है। वर्णों की गुरुता और लघुता के विचार से तथा लघु और गुरु वर्णों की व्यवस्था क्रम एव स्थान के विचार से गणो के आठ प्रकार होते है।

(१) मगण (२) नगण (३) भगण (४) यगण (५) जगण (६) रगण (७) सगण (८) तगण।

वर्णिक गण कोष्टक

नाम	लघुसज्ञा	रेखारूप	वर्णरूप	उदाहरण
मगण	म	SSS	मागाना	राजाज्ञा, माधाता
नगण	न	।।।	नगन	कमल, सरल
भगण	भ	S।।	भागन	भारत, नीरज
यगण	य	।SS	यगाना	यशोदा, भरोसा
जगण	ज	।S।	जगान	मराल, नवीन
रगण	स	S।S	रागना	भारती, सारथी
सगण	र	।।S	सगना	कमला, अबला
तगण	त	SS।	तागान	आकाश, पीयूष

पिंगल के दशात्तर–वर्णिक गणो के आठ अक्षर म, न, भ, य, ज, र, स, त तथा ग (गुरु) ल (लघु) के दो अक्षर मिलकर पिंगल के दशाक्षर कहे जाते है। सम्पूर्ण काव्य सृष्टि मे ये दशाक्षर उसी भॉति व्याप्त है जिस प्रकार विश्व मे भगवान् विष्णु।

मात्रिक छंद

चौपाई–चौपाई मात्रिक छद है और छद:प्रभाकर मे १६ मात्राओ वाले सस्कारी समूह के अतर्गत वर्णित है। इसकी १६ मात्राओ में गुरु लघु का अथवा चौकलो का कोई क्रम नही होता, अत मे जगए (।S।) या तगण (SS।) न होना चाहिए अर्थात गुरु लघु (S।) न हो। इसमे चार पद होते है। उदाहरणस्वरूप देखिए—

> तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।
> सो मन रहत सदा तुव पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं।

छद कोश. (छ० ३७) तथा प्राकृतपैंगलम (छद ९७-८) का चउपइया छंद प्रति चरण मे ३० मात्राओ के क्रम से कुल १२० मात्राओ वाला वर्णित है। छद: कोश का लघु चउपइआ (छद ४०) तथा रूपदीपपिंगल का चौपाई (छद ४०) प्रत्येक चरण मे १५ मात्राओ वाला कहा गया है।

छद: प्रभाकर मे इसे १५ मात्राओ वाले तैंथिक समूह के अन्तर्गत रखा गया है।

चौपाइयाँ कई प्रकार की होती हैं। चौपाई के एक पद को पाई, दो पद दो पाई या अर्द्धाली, तीनपद तीन पाई और चारपद चौपाई कहे जाते है। चौपाई और पादाकुलक छंदो की गति लगभग समान होने से एक का दूसरे में भ्रम होता है। इन दोनो मे इतना अंतर ध्यान मे रखना चाहिए कि पादा-

कुलक के प्रत्येक चरण मे चार-चार चौकल होते है परन्तु चौपाई मे इनकी आवश्यकता नही होती। जिस चौपाई के चारो चरणो मे ४-४ चौकलो की व्यवस्था हो उसे पादाकुलक ही कहना चाहिए।

रोला–रोला छद २४ मात्राओ वाले अवतारी समूह के अन्तर्गत है। इसके सम पदो मे १३ (=३+२+४+४ या ३+२+३+३+२) और विषम पदो ११ (=४+४+३ या ३+३+२+३) मात्राओ का क्रम होता है। इसमे चार चरण होते है। यथा–

शुभ सूरज-कुल-कलश नृपति दशरथ भये भूपति।
तिनके सुत भये चारि चतुर चित चारु चारुमति।
रामचन्द्र भुवचन्द्र भरत भारत-भुव-भूषण।
लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषण।

भिखारीदास ने छदार्णवपिगल मे रोला छद मे २४ मात्राये मानी है और उसकी गति अनियमित लिखी है किन्तु उनके उदाहरणो मे १२, १२ मात्राओ मे विश्राम मिलता है।

गीतिका[१]–गीतिका छद २६ मात्राओ वाले 'महाभागवत' समूह के अतर्गत है। उसमे १४-१२ की यति से २६ मात्रायें होती है। अत मे ।ऽ का नियम है। इस छंद की ३ री, १० वी, १७ वी और २४ वी मात्रायें सदा लघु रहती है। यथा–

मुख एक है नत लोक लोचन लोल लोचन को हरे।
जनु जानकी सँग सोभिजै सुभ लाज देहन को धरे।
तहँ एक फूलन के बिभूखन एक मोतिन के किये।
जनु छीरसागर देवता तन छीर छीटनि को छिये॥

हरिगीतिका–हरिगीतिका छद २८ मात्राओ वाले 'यौगिक' समूह के अंतर्गत है। इसमे १६-१२ की यति से २८ मात्राये होती है। छद के अत मे ।ऽ का नियम है। इसकी रचना की योजना २, ३, ४, ३, ४, ३, ४, ५=२८ है। यथा–

शुभ द्रोणागिरिगण शिखर ऊपर उदित औषधि सी गनौ।
बहुवायु वश वारिद होरहि अरुझि दामिनि द्युति मनौ॥
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुर पुर को चली।
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिबि खेलति भली॥

सरसी[२]—सरसी छद २७ मात्राओं वाले 'नाक्षत्रिक' समूह के अतर्गत है।

---

१. गीतिका–यह मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार का होता है। यहाँ पर मात्रिक छद के लक्षण दिये जा रहे है।

२. सरसी

इस मे १६, ११ की यति से २७ मात्रायें होती हैं। अंत ऽ। का नियम है। इस के अन्य नाम 'कबीर' तथा 'सुमन्दर' भी मिलते है। कबीरदास की वाणी के पलटे होली मे जो कबीर नाम से गाये जाते है इसी छद लिखे जाते है।

यथा—

कोई नचावै रडी मुडी, कथक भाँड़ धन खोय।
आप नचाइय विद्या देवी, मुलुक मुलुक जस होय॥
(भला यह रीति तुम्हारे कुल की है)

आपस में न करें मुकदमा, घूस हजारो देयें।
डिगरी पावें खरचा जोड़ें, लबी साँसें लेयें॥
(भला पचाइत को नहिं मानेंगे)

बहू बेटियाँ मातु पिता की कही न मानें बात।
पढ़े गुने बिन यही फजीहत दाऊजी अकुलात॥
(भला बिन नारि पढाये मत रहियो)

दोहा—सस्कृत द्विपथक से द्विपथा और प्राकृत दुवहअ होकर दोहा शब्द की व्युत्पत्ति है। ९-१०वी शताब्दी के विरहाङ्क रचित वृत्तजातिसमुच्चय' तथा १० वी शताब्दी के स्वयभू रचित श्री स्वयम्भूःच्छन्द.' मे हमे 'दुवहअ' रूप मिलता है जिससे द्विपथक से दुवहअ होने की शका का समाधान हो जाता है।

दोहा छद मे २४/२४ मात्राओ के दो चरण होते हैं तथा १३/११ मात्राओ पर यति का नियम है। अर्थात् विषम चरणो मे १३ और सम चरणो मे ११ मात्राये होती है। इस प्रकार चारो चरणो मे ४८ मात्राये होती हैं। उदाहरण-स्वरूप देखिये—

राम नाम मणि दीप धरि, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जौ चाहसि उजियार॥

कविदर्पणम् भाग २ (अवदोहक या दोहक) छ० १५, छद कोश. छ० २१ प्राकृतपैङ्गलम् भाग १ छ० ७८-९, रूपदीपपिगल (दोहाक) छ० ३६ और छद प्रभाकर पृ० ८४-६ मे उपर्युक्त योजना स्वीकार की गई है तथा यह (६+४+३, ६+४+१) गण विस्तार माना गया है। परन्तु नन्दिताढ्य रचित 'गाथा लक्षणम्' छ० ८४, वृत्तजातिसमुच्च्य: द्विपथक (दुवहअ = ४+४+४+ऽ/४+४+ऽऽ) छ० २७, श्रीस्वयम्भू.च्छन्द (दुवहअ) छ० ७ और हेम चन्द्राचार्य रचित छदोऽनुशासनम् (दोहक) छ० १०० मे पादात की मात्रा

---

१. तुलसी की छद साधना, डा० विपिन विहारी त्रिवेदी, जनभारती, भा० १, पृ० २१–२६, बगीय हिंदी परिषद, १९४९ ई०

सदैव दीर्घ निर्धारित करने के कारण प्रति चरण मे १४–१२ के विश्राम से २६ मात्राओ का नियम कहा गया है।

जिस प्रकार प्राकृत काल मे गाहा या गाथा छन्द का अत्यधिक प्रयोग किया जाता था उसी प्रकार अपभ्रंश काल मे दोहा का प्रयोग पाया जाता है।[1] प्राकृत के जर्मन विद्वान Dr. Hermann Jacobi तथा Dr. L. Alsdorf दोहा छद की महिमा से पर्याप्त प्रभावित हुए थे। उनके सम्पादित (जर्मन सस्करण) कुमारपाल प्रतिबोध और हरिवश पुराण मे उनकी लगन और गम्भीर शोध के परिणाम देखे जा सकते है। दोहा के २३ भेद होते है।

सोरठा– इसके सम चरणो मे १३ और विषम चरणो मे ११ मात्राये होती है। यथा–

(१) **जौ चाहसि उजियार, राम नाम मणि दीप धरु।**
जीह देहरी द्वार, तुलसी भीतर बाहिरो॥

(२) **जो सुमिरत सिधि होय, गननायक करिवर वदन।**
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

(३) **कुंद इंदु सम देह, उमा रमन करुना अयन।**
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन॥

छप्पय[२]– छप्पय सयुक्त वृत्त छन्द है। छप्पय शब्द की व्युत्पित्ति इस प्रकार से है—स० षट्पद > प्रा० षटपअ > अप० छप्पअ > हि० छप्पय। इस छद मे ६ पद (चरण) होते है। पहले चरण रोला के होते है जिनमे २४ मात्राओ का नियम होता है और अतिम दो चरण उल्लाला के। उल्लाला मे कही २६ और कही २८ मात्राये होती है। छप्पय के ७१ भेद होते है, उनके नाम निम्न दो छप्पयो मे 'भानु' ने अपने छदः प्रभाकर मे दिये है। यथा–

(१) **अजय विजय बल कर्ण वीर बेताल विहकर।**
मर्कट हरि हर ब्रह्म इन्दु चंदन जु शुभंकर।
श्वान सिंह शार्दूल कच्छ कोकिल खर कुंजर।
मदन मत्स्य ताटंक शेष सारंग पयोधर।

---

1 This is the most current metre of the Apabhramsa gnomic didactic poetry and its position can be well described by calling it the Apabhramsa counterpart to the Prakrit गाथा।'

२ अधिक विस्तार के लिए देखिये–छप्पय छंद (एक समीक्षा), डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, विशाल भारत, अक्टूबर सन् १६५० ई० तथा भारतेंदु की भारतीय छद योजना, डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, भारतेंदु–कला, पृ० ३८–४२, बंगीय हिंदी परिषद्, सं० २००७ वि०।

शुभ कमल कन्द वारन शलभ भवन अजगम सर सरस।
गणि समर सु सारस मेरु कहि मकर अली सिद्धिहि सरस ॥ १ ॥

(२)
बुद्धि सु करतल और सु कमलाकार धवल वर।
मलय सुध्रुवगनि कनक कृष्ण रंजन मेघाभर।
गिद्ध गरुड़ शशि सूर्य शल्य मुनि नवल मनोहर।
गगन रच्छ नर हीर भ्रमर शेखर शुभ गौहर।
जानियै सुकुसुमाकर पतिहि दीप शंख बसु शब्द मुनि।
छप्पय सु भेद शशि मुनि वरन गुरु लघु घट वढ़।
रीति गुनि ॥ २ ॥

चल्यौ दरद जेहि करद रच्यो विधि मित्र दरद हर।
सरद सरोरुह वदन जाचकन वरद मरद वर।
लसतसिंह सम दुरद नरद दिसि दुरद अरद कर।
निरखि होत अरि सरद हरद सम जरद काति धर।
कर करद करत बेपरद जब, गरद मिलत वपु गाज को।
रन-जुआ-नरद वित नृप लस्यो करद मगध-महाराजको।

श्री स्वयम्भू च्छन्द. भाग ४ छद ३२ और कविदर्पणम् भाग २ छ० ३३ मे षट्पद छन्द के नियमो का उल्लेख है। कविदर्पणम् मे इसे वस्तुवदन और उल्लाल के मेल से बना बताया गया है। छन्द कोश छ० १२ और प्राकृतपैङ्गलम् छ० १०५-१०८ मे छप्पय छद ११,१३ मात्राओ के विश्राम से पहले ४ चरण तदुपरात उल्लाला के दो चरणो के मेल से बना निर्धारित किया गया है तथा उल्लाला के प्रत्येक चरण मे २८ मात्राओ की योजना दी गई है।

भिखारीदास ने अपने छन्दार्णव-पिंगल मे रोला की ११ वी मात्रा लघु होने पर उसे काव्य बतलाकर काव्य और उल्लाला के योग से छप्पय छंद का निर्माण बतलाया है। यथा—

रोला में लघु रुद्र पर 'काव्य' कहावै छन्द।
ता आगे उल्लाल दै, जानहु छप्पै बन्द ॥ ३४ ॥ सातवीं तरग

'भानु' ने अपने छद. प्रभाकर (९वी आवृत्ति, वि० स० १९९६, पृ० ९८-९९) मे छप्पय को रोला और उल्लाला के योग से बना बताया गया है तथा उल्लाला मे कही २६ और कही २८ मात्राओ का उल्लेख किया है।

मध्यकालीन शताब्दियो मे राजस्थान आदि कतिपय प्रदेशो मे छप्पय छद कवित्त नाम से भी प्रसिद्ध रहा है। पृथ्वीराजरासो, मछकृत रघुनाथरूपक प्रभृति ग्रन्थो मे छप्पय को कवित्त संज्ञा दी गई मिलती है।

काव्य दर्पणकार के वर्णन से ज्ञात होता है कि १३ वी शताब्दी तक इस छद की प्रतिष्ठा और प्रचार बढ़ चले थे और प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओ मे

इसका बहुतायत से प्रयोग किया गया है। हिंदी काल मे छप्पय छद अपने गौरव और गरिमा सहित समादृत हुआ। वैसे परवर्ती हिन्दी रचनाओ मे भी छप्पय का आदर रहा परन्तु उसकी विशेष प्रतिष्ठा रासो काल मे दृष्टिगोचर होती है। पृथ्वीराजरासो ने इस छन्द को विशेष रूप से महिमान्वित किया। वीर रसात्मक रासो कालीन रचनाओ मे इस छद ने एक शैली विशेष प्राप्त कर ली थी जिसका अनुसरण तुलसी, भूषण आदि ने भी किया। चौपाई के लिये जिस प्रकार जायसी और तुलसी विख्यात है तथा कुडलियो के लिए जिस प्रकार गिरधर उसी प्रकार छप्पय के लिए नरहरि और नाभादास के नाम उल्लेखनीय है।

कुंडलिया—**दोहा रोला जोरि कै छै पद चौबिस मत्त।**
आदि अत पद एक सो, कर कुँडलिया सत्त॥

कुडलिया छद दोहा और रोला के योग से बनता है। इसके प्रति चरण मे २४ मात्राये होती है। यथा—

(१) **रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं में सोय।**
छाँह न वाकी बैठिए जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि टूटि सब तर से जैहै।
कह गिरधर कविराय छाँह मोटे की गहिए।
पाता सब झरि जाय तऊ छाया में रहिये॥

(२) **कज नयनि मज्जन किए बैठी ब्योरति बार।**
कच अँगुरिनि बिच दीठि दै निरखत नद कुमार॥
निरखति नदकुमार सखिन की दीठ बचाये।
एक पथ है काज करति मुख अलक छिपाये।
छिप्यौ चन्द हरिचन्द सघन घन देइ लुकज्जन।
तहँ सो ह्वै उड़गन निरखत करि ढिग जुग कज्जन।

छद कोश. छ० ३१ और प्राकृतपैंगलम् [छद १४६] मे कुडलिया छद को दोहा और उल्लाला के सयोग से बना हुआ, कुल १४४ मात्राओ का विशुद्ध यमक सहित, आदि मे समान पद वाला बतलाया गया है। पहले 'दोहा' होता है और फिर 'उल्लाला'।

छन्द प्रभाकर (पृ० ९७) मे इसे दोहा और रोला के योग से बना बताया गया है, प्रति चरण मे २४ मात्राये और आदि अन्त का शब्द एक सा कहा गया है।

वर्णिक छद

वर्णिक छद वैदिक या सस्कृत थे और मात्रिक छद लौकिक अर्थात् लोक भाषाओं—प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओ के जन-कवियो द्वारा प्रणीत हुए थे।

वर्णिक छदो की प्रकृति और प्रवाह सस्कृत भाषा मे अपूर्व पाये जाते। परन्तु जन-भाषाओ मे उनमे वैसा प्रवाह और सौदर्य नही पाया जाता। तुलसी छदो की इस प्रवृत्ति से भलीभाँति अभिज्ञ थे। अपने मानस मे उन्होने जो कुछ भाषा मे लिखा उसमे मात्रिक छद प्रयुक्त किये परतु सस्कृत मे लिखने पर उन्होने वर्णिक वृत्तो का ही प्रयोग किया। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी ने खडी बोली की शक्ति और सामर्थ्य दिखाने के प्रयास मे अपने युग विशेष की आलोचना कर मुँह बद करने के लिये भले ही वर्णिक वृत्तो का प्रयोग 'प्रियप्रवास' मे कर दिखाया है परन्तु सस्कृत भाषा मे प्रयुक्त छदो की तुलना मे वे नि सन्देह शिथिल प्राण और गति वाले ठहरते है।

वंशस्थ–वशस्थ वर्णिक छद १२ वर्णों की आवृत्ति वाले 'जगती' समूह के अतर्गत है। इसके प्रत्येक चरण मे १२ वर्ण और (ज, त, ज, र अथवा ।ऽ। + ऽऽ। + ।ऽ। + ऽ।ऽ) गण योजना है।

१– **सुतं पतंतं प्रसमीक्ष्य पावके, न बोधयामास पतिं पतिव्रता।**
पतिव्रता शाप भयेन पीड़ितो, हुताशनश्चंदन पंक शीतल: ॥

२– **अनेक आकार प्रकार रग के।**
सुधा समोये फल पुंज से सजा।
विराजता अस्य रसाल तुल्य था।
समोदकारी अमरुद रोदसी। –हरिऔध

३– **मुकुन्द चाहे यदुवंश के बने।**
रहें सदा या वह गोप वंश के।
न तो सकेंगे व्रजभूमि भूलि वे।
न भूल देगी व्रज मोदिनी उन्हें। –हरिऔध

वसंततिलका–वसततिलका वर्णिक छद १४ वर्णो की आवृत्ति वाले 'शर्करी' समूह के अन्तर्गत है। इसके प्रत्येक चरण मे १४ वर्ण, (त भ ज ज ग ग अथवा ऽऽ। + ऽ।। + ।ऽ। + ।ऽ। + ऽऽ गण योजना) और अत मे २ गुरु होते हैं। इसके अन्य नाम उद्धर्षिणी, सिंहोन्नता, वसत-तिलक प्रभृति भी हैं।

१– **यां चितयामि सतत मयिसा विरक्ता।**
साप्यन्यमिच्छति जन सजनोऽन्य सक्त: ॥
अस्मत्कृतेतु परितुष्यति काचिदन्या।
धिक तांचतंच मदनंच इमांच मांच ॥

२– **बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे।**
सीता समेत रघुनाथ सबन्धु पूजे ॥

जाके मिमित्त यज्ञ यज्यो सो पायो।
ब्रह्मांडमडन स्वरूप जो वेदगायो॥

—रामचंद्रिका, केशव

३— नाना पुराण निगमागम सम्मतंय—
द्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तस्सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
भाषा निबंधमति मंजुलमातनोति॥

—बालकांड, तुलसी

४— रोना अशुभजान प्रयाण काल।
रोये बिना न छन भी मन मानता था।
आँसू न ढाल सकतीं निज नेत्र से थीं।
डूबी द्विधा जलधि में जन मंडली थी।

—प्रियप्रवास, हरिऔध

५— कुजें वही थल वही यमुना वही है।
बेलें वही बन वही विटपी वही है।
हैं पुष्प पल्लव वही व्रज भी वही है।
थे किन्तु श्याम बिन है न वही जनाते।

—प्रियप्रवास, हरिऔध

मालिनी—मालिनी छंद १५ वर्णों की आवृत्ति वाले, अतिशर्करी, समूह के अतर्गत है। इसके प्रत्येक चरण मे ८-७ की यति से १५ वर्ण, १२ मात्राये और (न न म य य अथवा ।।। + ।।। + SSS + ।SS + ।SS) गण योजना है। उदाहरण—

१— अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभ देहं।
दनुज बन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगन्य।
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं।
रघुपति वरदूत वातजात नमामि॥

—सुन्दरकांड, तुलसी

२— प्रमुदित मथुरा के मानवों को बना के।
सकुशल रह के औ विघ्न बाधा बचा के।
निज प्रिय सुत दोनो साथ लेके सुखी हो।
जिस दिन पलटेंगे गेह स्वामी हमारे॥

—प्रियप्रवास, हरिऔध

शिखरिणी—शिखरिणी छद १७ वर्णो की आवृत्ति वाले 'अथात्यष्टि' समूह के अतर्गत है।

इसके प्रत्येक चरण मे ६-११ की यति से १७ वर्ण, २५ मात्रायें, और (य म न स भ ल ग अथवा ।ऽऽ + ऽऽऽ+।।। + ।।ऽ + ऽ।। + ।ऽ) गण योजना है। उदाहरणस्वरूप—

(१) क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यंक शयन।
क्वचिद् शाकाहार: क्वचिदपि च शाल्योदन रुचि।
क्वचित् कथाहारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो।
मनस्वीकार्य्यार्थी न गणयति दुखं न च सुखम्॥

(२) अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरस से।
बना जो देती थी बहुगुणमयी भू विपिन को।
निराले फूलो की विविध दल वाली अनुपमा।
जड़ी बूटी हो हो बहु फलवतीं थीं विलसती॥

—प्रियप्रवास, हरिऔध

मन्दाक्रांता—मदाक्राता छद १७ वर्णों की आवृत्ति वाले 'अथात्यष्टि' समूह के अतर्गत है। इसके प्रत्येक चरण मे ४, ६, ७ की यति से १७ वर्ण, २७ मात्रायें और (म, भ, न, त, त ग, ग अथवा ऽऽऽ+ऽ।। + ।।। + ऽऽ। + ऽऽ। + ऽऽ गण योजना है। मदाक्राता शब्द का अर्थ है धीरे-धीरे खीचने वाली।

(१) धन्याऽयोध्या दशरथ नृपस्याप माता च धन्या।
धन्योवंशो रघुकुल भवो यत्र रामावतार:।
धन्यावाणी कविवर मुखे राम नाम प्रपन्ना।
धन्योलोके प्रतिदिन मसौ रामनाम शृणोति॥

(२) तारे टूटे तम टल गया छा गयी व्योम लाली।
पंछी बोले तमचुर जगे ज्योति फैली दिशा में।
शाखा डोली तरु निचय की कंजफूले सरो में।
धीरे धीरे दिनकर कढ़े तामसी रात बीती॥

—प्रियप्रवास, हरिऔध

शार्दूलविक्रीड़ित—शार्दूलविक्रीडित वर्णिक छद १९ वर्णों की आवृत्ति वाले 'धृति' समूह के अतर्गत हैं। इसके प्रत्येक चरण मे १२, ७ की यति से १९ वर्ण और (म स ज स त त ग अथवा ऽऽऽ + ।।ऽ + ।ऽ। + ।।ऽ + ऽऽ। + ऽऽ। + ऽ) गणयोजना है।

(१) मूल धर्मतरोर्विवेकजलधें: पूर्णेन्दुमानन्दद।
वैराग्याम्बुजभास्कर ह्यघघंन ध्वान्तापह तापहं।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्व. सम्भवं शंकरं।
वन्दे ब्रह्मकुल कलंक शमन श्री रामभूपप्रियम्॥१॥

—अरण्यकाण्ड, तुलसी

(२) **काले कुत्सित कीट का कुसुम में कोई नहीं काम था।**
काँटे से कमनीय कंज कृति में क्या है न कोई कमी।
पोरो में कब ईख की विपुलता ग्रंथियों की भली।
हा दुर्दैव प्रगल्भते ! अपटुता तूने कहाँ की नहीं।।
—प्रियप्रवास, हरिऔध

सवैया।—इसके कई भेद है जिनके प्रत्येक चरण मे २२ से लेकर २६ वर्ण तक होते हैं। इनके नाम है मदिरा (भ ७ + ग), मत्तगयद (भ ७ + ग ग), सुमुखी (ज ७ + ल ग), चकोर (भ ७ + ग ल), वाम (ज ७ + य), किरीट (भ ८), (सुन्दरी स ७ + ग), अरविद (स ८ + ग), सुख (स ८ + ल ल) आदि। इनके अतिरिक्त मात्रिक सवैया भी होता है। सवैया के चारो चरणो के अत के वर्ण समान होने आवश्यक है। मत्तगयद सवैया का एक उदाहरण दृष्टव्य होगा—

उत्तम गाय सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण से गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो।
ऐंचो जहीं तवहीं कियो सयुत तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सो शंभु को साँचो शरासन कीनो।।

मुक्तक छंद

मुक्तक छद वे है जिनके प्रत्येक चरण मे केवल वर्णों की सख्या का ही प्रमाण रहना है अथवा कही-कही गुरु लघु का नियम पाया जाता है। यह मुक्तक इसलिए कहलाता है कि यह गणो के बधन से मुक्त होता है अर्थात् यह कवियो को मात्रा और गणो के बधन से मुक्ति प्रदान करता है। इसके नौ भेद है—मनहर (३१ वर्ण), जनहरण (३० ल + १ ग = ३१ वर्ण), कलाधर (गुरु लघु १५ + ग = ३१ वर्ण), रूपघनाक्षरी (३२ वर्ण अन्त्य लघु), जलहरण (३२ वर्ण), डमरू (३२ वर्ण परन्तु सब लघु), कृपाण या किरपान (आठ-आठ की यति से २१ वर्ण और अत मे नकार श्रुति मधुर होती है), विजया (८-८ वर्ण की चार चौकड़ियाँ और चरणांत मे लघु गुरु अथवा नगण भी होता है) तथा देवघनाक्षरी (३३ वर्ण, ८-८-८-९ पर यति होती है और अतिम तीनो वर्ण लघु होते हैं।)

मन हरण—इस छद के प्रत्येक चरण मे ३१ वर्ण होते है और १५-१६ वर्णो पर यति का नियम है। इसमें चरणात का वर्ण गुरु होता है परतु शेष के लिये गुरु लघु का नियम नही होता। इसे कवित्त, घनाक्षरी और मनहर भी कहते हैं।

(१) सुंदर सुजान पर, मंद मुस्कान पर;
बाँसुरी की तान पर, ठौरन ठगी रहै।

मूरति विशाल पर, कंचन सी माल पर,
हसन सी चाल पर खोरन खगी रहै।
भौंहें धनु मैन पर, लोने जुग नैन पर,
शुद्ध रस बैन पर वाहिद एगी रहै।
चचल से तन पर, सांवरे बदन पर,
नंद के नँदन पर लगन लगी रहै॥
दानिन के शील पर दान के प्रहारी दिन,
दातदारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के।
दीप दीप हूँ के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के।
आनद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदारप्रिय साधु मन वच काय के।
देह धर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दसरथ राय के॥

घनाक्षरी—इस छद के दो भेद हैं—

(१) **रूप घनाक्षरी और**

(२) **देव घनाक्षरी**

रूपघनाक्षरी–इस छद के प्रत्येक चरण मे ३२ वर्ण होते हैं और १६-१६ वर्णो पर यति का नियम है। चरणात का वर्ण लघु होता है—

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु,
रसिक बिहारी देत बंधु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाषें यह वाहू ते महान मीठो
लेहु तो लखन यों बखानत हैं हेर हेर।
बेर बेर देवै सबरी सुबेर बेर
तऊ रघुबीर बेर बेर तेहि टेर टेर।
बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ
बेर बेर जनि लावौ बेर लाबौ कहैं बेर बेर॥

देवघनाक्षरी–देवघनाक्षरी के प्रत्येक चरण मे ३३ वर्ण होते हैं। ८,८, ८,९ पर यति का नियम होता है तथा अन्त के तीनो वर्ण लघु होते हैं।

यथा—

झिल्ली झनकारैं पिक चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारैं उठैं जुगनू चमकि चमकि।

घोर घन घोर भारे धुरवा धुरारे धाम,
  धूमनि मचावें नाचें दामिनी दमकि दमकि।
भूकनि बयारि बहै लूकनि लगावें अंक,
  हूकनि भभूकनि की उर में खमकि खमकि।
कैसे करि राखों प्रान प्यारे 'जसवन्त' बिन,
  नान्हीं नान्हीं बूंद झरें मेघवा झमकि झमकि।।

* समाप्त *